भक्तामर प्रणतमौलि–मणिप्रभाणा–
मुद्योतकं दलित पापतमोवितानम् ।
सम्यक्प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा–
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ।।1।।

सर्वोपद्रव विनाशक यंत्र–1

ऋद्धि — ॐ ॐीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो जिणाणं ॐां ॐीं ॐू ॐौं ॐः अ सि आ उ स ा
अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं नमः स्वाहा ।

मन्त्र — ॐ ॐां ॐीं ॐू श्रीं क्लीं ब्लूं क्रौं ॐ ॐीं नमः स्वाहा।

विधि — सफेद वस्त्र पहनकर, सफेद आसनपर पूर्वाभिमुख बैठकर पवित्र भावों के साथ प्रतिदिन प्रातः 108 बार प्रथम काव्य ऋद्धि तथा मंत्र का आराधन

यह ऐतिहासिक घटना मध्यकाल की है, जबकि देश छोटे–छोटे गणराज्यों में बंटा था। सुदत्त नामक चोर चोरी करने की कला में इतना कुशल तथा सिद्धहस्त था कि राज्य–शासन के सभी प्रयासों के बावजूद भी पकड़ में नहीं आता था। शासक परेशान भी था व चिन्तित भी। किन्तु अशुभ कर्म आता है तो कभी–कभी होनी भी अनहोनी बन जाती है। शायद ऐसी ही अनहोनी के कारण सुदत्त चोर भी एक दिन राजमहल में रंगे हाथों पकड़ा गया रक्षकों ने चोर को राजदरबार में उपस्थित किया। राजा प्रसन्न तथा गर्वोन्नत थे। राजा ने चोर से पूछा–''वर्षों से परेशान करने के बाद आखिर आज पकड़ में आ ही गये। शरीर पर तो तुम वस्त्र भी फटे पहने हो, चुरा–चुराकर आखिर धन रखते कहाँ हो ?'' किन्तु सुदत्त चोर केवल चोरी करने की कला में ही सिद्धहस्त नहीं था, बल्कि पकड़े जाने पर झूठ तथा मायाचार द्वारा बच निकलने की कला में भी पूर्ण पारंगत था। राजा के प्रश्न के उत्तर में तुरन्त बोला –''सेठ हेमदत्त के पास रखता हूँ महाराज।'' इस उत्तर से राजा तथा हेमदत्त सेठ दोनों ही चकित रह गये। सेठ ने तुरन्त प्रतिवाद किया कि ''राजन् मैंने तो इसकी शक्ल ही आज देखी है। हम जैन लोग तो हिंसादि पाँच पापों व चार कषायों के त्यागी तथा जीवन में फूंक–फूंक कर कदम रखने वाले होते हैं। मेरा इससे क्या सम्बन्ध ? यह चोर झूठ बोलकर बचना चाहता है।'' सेठ की सत्यवादिता का राजा पर प्रभाव होता देख चोर ने नया नाटक शुरू कर दिया। गहरी सिसकियाँ भरते हुए चोर बोला– ''सेठ जी ! धर्म का भी डर नही रहा आपको ? आप भले ही डूबो, मुझ गरीब को क्यो डुबाते हो ? मैंने चोरी का सारा धन आपके पास ही तो जमा किया था। जैसा आपने कहा, वैसा किया। क्या यह उसी का इनाम है ? जो आप स्वयं बचकर मुझे बरबाद कर रहे हैं। मेरा तो परिवार ही भूखा मर जायेगा। ऐसा अन्याय करते हुए तुम भगवान से भी नहीं डरते...?'' चोर अपनी बात पूरी कह भी न पाया था कि उससे प्रभावित होकर राजा ने आज्ञा दी– ''कोटपाल यह सेठ राजद्रोही है, चोरों का सरदार है। इसे नगर के बाहर बियावान जंगल के घोर अन्धकार वाले कुएँ में हाथ–पैर बांधकर डाल दो।'' रक्षकों ने राजा की आज्ञा का पालन किया। अन्धकूप में पड़े–पड़े भूख–प्यास और बन्धन के कष्टों से दुःखी सेठ को तीन दिन हो गये। पर, सेठ सम्यक्दृष्टि थे, अतः अशुभ कर्म का उदय जानकर वे शारीरिक वेदना को भूल आत्मध्यान में लीन हो गये। प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ की भव्य मूर्ति उनकी आंखों में झूलने लगी। अटूट श्रद्धावश उन्होंने भक्तामर स्तोत्र के प्रथम शुगल श्लोक का पाठ पूर्ण भक्ति से ऋद्धि और मन्त्र सहित किया। थोड़ी देर बाद ही वहाँ फैले दिव्य प्रकाश से उनकी आंखे खुली तो स्वयं को बंधन मुक्त तथा रत्नजड़ित सिंहासन पर पाया तथा सामने एक देवी को पाया। पूछने पर वह बोली–''मैं शासन देवी विजया हूँ तुम्हारे युगल श्लोक की ऋद्धि एवं मंत्र मोहिनी के वशीभूत होकर मैं यहाँ आई थी।'' इतना कहते ही वह आंखों से दूर हो गयी। थोड़ी दूर पर पहरा दे रहे रक्षकों ने अन्धकूप में प्रकाश और सेठ की स्थिति को देखा तो जंगल में मंगल करने वाले इस चमत्कार की खबर राजा को दी। राजा समझ गये कि हेमदत्त निर्दोष थे। वे स्वयं आकर सेठ जी को सम्मान सहित राजदरबार में ले गये और उनसे क्षमायाचना की। मानतुंगाचार्य द्वारा रचित भक्तामर स्तोत्र के प्रथम युगल श्लोक की भक्ति से प्रभावित होकर राजा तथा हजारों प्रजाननों ने जैन धर्म को अंगीकार किया। भक्तामर के प्रभाव से आखिरकार असत्य की हार हुई और सत्य की जयजयकार हुई तथा जंगल में मंगल हो गया। राजा ने भी न्याय करते हुए दोषी चोर को दण्ड दिया।

भावार्थ

मणि जड़ित मुकुटों से देवगण जब भक्ति पूर्वक इस युग के धर्म प्रवर्तक प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ के चरणों में नमस्कार करते हैं तब उनके मुकुट मणियों की कान्ति और भी अधिक दैदीप्यमान हो जाती है।

प्रभु के चरण युगम का सहारा ही प्राणियों के पापों का नाश करता है और प्रभु भक्ति में लीन भक्त संसार से पार हो जाता है।

युग सृष्टा आद्य धर्म प्रणेता प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ के चरण युगल में अच्छी तरह नमस्कार करके।

MEANING

Oh ! The mankind and all creatures are helplessly sinking into the ocean of worldly attachments…!

Who can be the saviour, and save them from sinking ?

We are all engrossed in the darkness of sins and ignorance. What can absolve them; within no time ?

While the deities with their gem-clad crowns on their heads offer their prayers and bow down, the bright and dazzling rays of gems spread all over. What can brighten even such rays ?

There is only one answer : Jina-Pada Yuga:

The lotus-like feet of Bhagwan Adinatha.

शब्दार्थ

भक्त = भक्ति करनेवाले, अमर = देवता, प्रणत = विशेष रुप से झुके हुए, मौलि = मुकुट, मणि = रत्न, प्रभाणाम् = कांति के, उद्योतकम् = प्रकाश को करने वाले, दलित = नष्ट करने वाले, तमः = अंधकार, वितानम् = विस्तार को, आदौ = युग के प्रारंभ में, भवजले = संसार समुद्र में, पतताम् = गिरते हुए, जनानाम् = व्यक्तियों को, आलम्बनम् = सहारा देने वाले, जिन = जिनेन्द्र देव के, पाद युगं = चरण युगल को, सम्यक् = अच्छी तरह से, प्रणम्य = नमस्कार करके ।

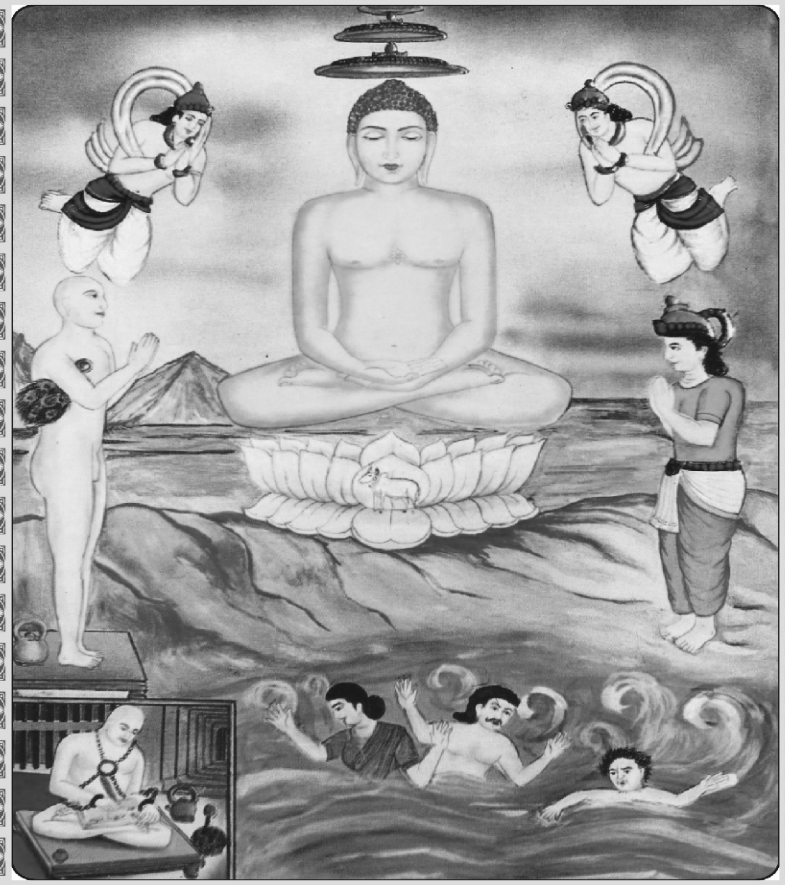

यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा–
दुद्भूतबुद्धि पटुभिः सुरलोकनाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरै रुदारैः,
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्।।2।।

सर्वविघ्न विनाशक यंत्र–2

ऋद्धि — ॐ ठीं अर्हं णमो ओहि–जिणाणं (Ãीं Ãीं नमः स्वाहा ?)

मन्त्र — ॐ ठीं श्रीं क्लीं ब्लूं नमः। (सकलार्थ सिद्धिणं)।

विधि — काले वस्त्र पहनकर, काली माला लेकर, काले–आसन पर पूर्वाभिमुख दंडासन से बैठकर, पूर्वान्ह के समय 21 या 30 दिन तक प्रतिदिन 108 बार अथवा सात दिन तक प्रतिदिन 1000 बार ऋद्धि तथा मंत्र का स्मरण करना चाहिए।

लोहे की जंजीरों से जिनका समस्त शरीर जकड़ा गया है, ऐसे श्री मानतुंगाचार्य अंधकारपूर्ण पाताल तुल्य काल कोठरी में समासीन अपने इष्टदेव श्री आदिनाथ भगवान का स्तोत्र रचने हेतू उद्यत हैं। उस समय भाव मंगल की प्राप्ति के लिये वे मन–वचन–काय के प्रणिधानपूर्वक उनको नमस्कार करते हैं और फिर विशद अर्थ वाले गंभीर पदों द्वारा उनकी स्तुति करने का संकल्प करते हैं। अंजुलिबद्ध दोनों हाथ मस्तक से लगाकर पंचांग पूर्वक नमन क्रिया होती है। किन्तु यदि उसमें श्रद्धा, आस्था, आदर बहुमान की लगन तथा भक्ति भावना न हो तो वह द्रव्य नमस्कार कहलाता है और तब वह उद्देश्य की सिद्धि तथा विघ्न निवारण का निमित्त नहीं बनता। इसी से स्तुतिकार ने मन, वचन, काय के योग से भक्ति भावना पूर्वक श्री आदिनाथ भगवान को नमस्कार किया है। स्तोत्रकर्ता आचार्य मानतुंगजी जिन श्री आदिनाथ भगवान के युगल चरणाम्बुजों में नमस्कार करते हैं, वे चरण–कमल कैसे हैं ? इसकी व्याख्या उन्होंने निम्नलिखित विशेषणों द्वारा स्पष्ट की है। प्रथम तो उन्होंने नतमस्तक भक्त देवों को श्री चरणों में नमस्कार करते हुए दर्शाया है जिसके फलस्वरूप मस्तक के मुकुट–मणियों की कांति इतनी अधिक जग–मगाने लगती है कि एक प्रकार का अलौकिक आलोक ही चतुर्दिक् फैल जाता है अथवा श्री जिनेश्वर के देव के पद–नख इतने अधिक तेजवन्त हैं कि उनसे निःस्रंत प्रखर रश्मियों के कारण नतमस्तक मुकुट की मणियां अत्यधिक कांति से झिलमिलाने लगती है। नख–प्रकाश के इस परावर्तन से एक अद्भुत तेजोमय वातावरण का निर्माण होता है। श्री जिनेश्वर देव के सानिध्य में एक कोटि देवता निरन्तर उनकी सेवा भक्ति करते रहते हैं। यहां भक्त देवों से तात्पर्य इसी कोटि के देवों से है अथवा अन्य सम्यक्त्वी देव भी भक्तिवश प्रभु के पास आकर अत्यन्त विनयपूर्वक नमस्कार करते हैं, उनको भी भक्त देव समझना चाहिये। द्वितीय श्री जिन चरण युगल पाप–तिमिर के पुंज को नाश करने वाले हैं। इसका अर्थ यह है कि नमस्कार करते ही हृदय में स्थित पापान्धकार का पलायन अति शीघ्र हो जाता है। मन को पवित्र करने के लिये जिन–चरण की सेवा समान अन्य कोई सुन्दर सुलभ साधन नहीं है। तृतीय ये चरण युगल संसार रूपी सागर में डूबे हुए प्राणियों के लिये आलम्बन रूप हैं अर्थात् जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक इनकी चरण शरण में आते हैं तो उनको किसी प्रकार के भव–भ्रमण का भय नहीं रहता। अन्य शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि चरण–युगल भव–सागर पार करने के लिये सुन्दर सुदृढ़ नौका तुल्य हैं। उनका आश्रय लेने से भक्तजन संसार–समुद्र को सरलता से पार कर जाते हैं और अक्षय अनन्त सुखों के अधिकारी होते हैं। इन विशेषणों से स्तोत्रकर्त्ता आचार्यश्री यह भी कहना चाहते हैं कि जिनको अचित्य शक्ति प्राप्त है ऐसे देव भी जब श्री जिनेश्वर देव को परम भक्ति से नित्य नमस्कार करते हैं तो फिर हमारी क्या गिनती ? हम जैसी भव भीरू आत्माओं को तो उनकी प्रणामादिक के द्वारा निरन्तर ही भक्ति करनी चाहिये। मैं जो यहाँ श्री आदिनाथ भगवान के युगल चरणों में सम्यक् नमन कर रहा हूं वह भक्त देव देवेन्द्रों का अनुकरण मात्र है, उत्तम अनुकरण करना गतांनुगतिकता नहीं प्रत्युत् विशिष्ट पुरुषों द्वारा प्रवर्तित एक प्रशंसनीय आचार है। भक्त परम पद का इच्छुक होता है और वह परम पद (अमर पद) क्या है ? परम पद प्राप्त किये हुए अरहंत देवों की भक्ति करना ही है। इस भक्ति में प्रणाम या नमस्कार का स्थान पहला है यह विस्मरण नहीं करना चाहिए। दूसरे पद में स्तोत्रकर्त्ता ने अपने इष्टदेव प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ भगवान की स्तुति की है। ये भगवान देवाधिदेव हैं। देव तथा देवियां भी उनका स्तवन करते हैं। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिये उन्होंने 'यः संस्तुतः...' आदि पद रखे हैं ।।।

भावार्थ

समस्त शास्त्र के तत्वज्ञान से जिनकी बुद्धि अत्यन्त विचक्षण हो गई है, ऐसे देव लोक के इन्द्रों द्वारा जगत के प्राणियों के मन को आनन्द उत्पन्न करनेवाले स्तोत्रों से भगवान ऋषभदेव की स्तुति की है ।

उन प्रथम जिनेन्द्र आदिनाथकी मैं (आचार्य मानतुंग) भी स्तुति करुँगा ।

MEANING

Shree Manatunga soorishwarjee's heart is in great decisive delight. He says, "I will positively compose a Stavan of Lord Adideva, the first Jain Tirthankara, who existed in the beginning of this age".

There is a definite reason behind his decision. The leaders pave the way to be followed by common men.

Lord Rishabhadeva is worshipped by the Indras. These Indras have mastered the secrets of all the shashtras. They are highly intelligent. They have worshipped him with their generous and spell binding Stotras.

Therefore only, Manatunga soorishwarjee Maharaj, with his highest perseverance, energy and confidence decides to pray Bhagwan Adideva through this extra-ordinary verse-The Bhaktamara Stotra.

शब्दार्थ

यः=जो ऋषभ देव, सकल=समस्त, वाङ्मय=शास्त्र के तत्व, बोधात्=तत्वों के ज्ञान से, उद्भूत=उत्पन्न, बुद्धि पदुभिः = बुद्धि की कुशलता वाले, सुर लोक नाथै = देव लोक के स्वामी इन्द्रों द्वारा, जगत् त्रितय = तीन जगत के, चित्त हरैः = मन को हरण करने वाले, उदारैः = महान, स्तोत्रै = स्तोत्रों से, संस्तुतः=अच्छी तरह स्तुत्य हुये, तम्=उन, प्रथमम्=प्रथम आदिनाथ, जिनेन्द्रम्= जिनेन्द्र तीर्थंकर को, किल = निश्चय से, अहम् = मैं (मानतुंग), अपि = भी, स्तोष्ये = स्तुति करुँगा ।

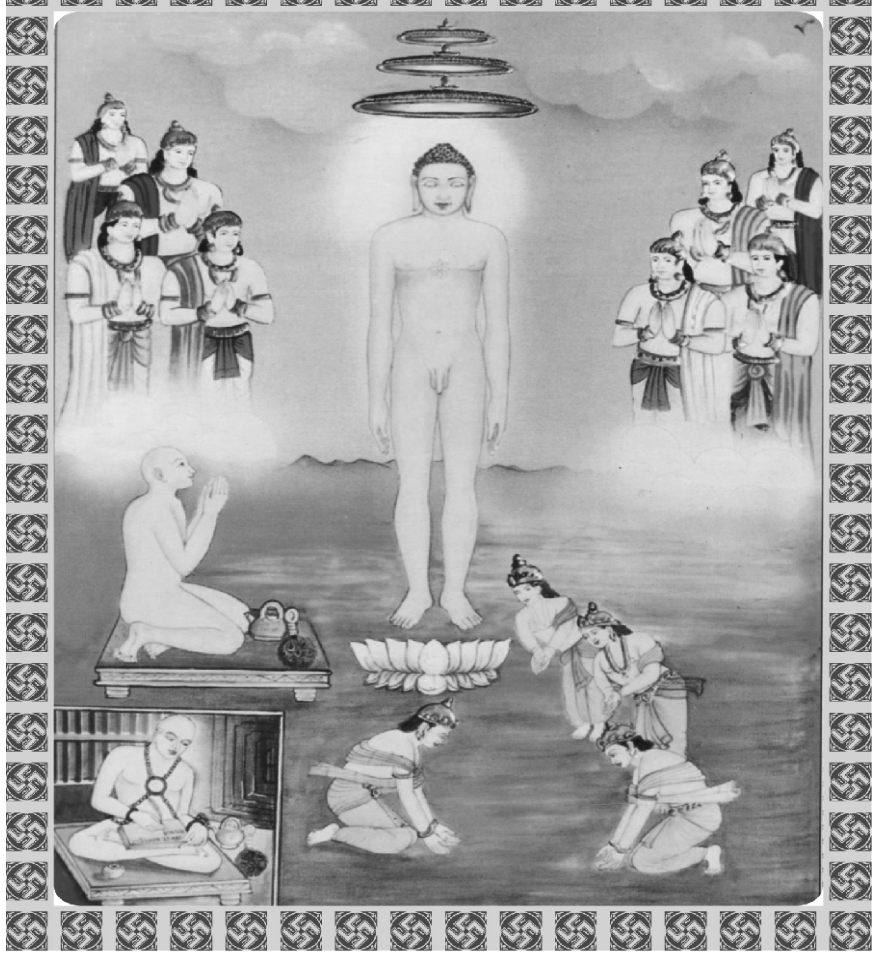

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादपीठ,
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम्।
बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्बम्–
अन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्।।3।।

शत्रुदृष्टि बन्धक यंत्र–3

ऋद्धि — ॐ ॐ अर्हं णमो परमोहि–जिणाणं (Ãं Ãं नमः स्वाहा ?)

मन्त्र — ॐ ॐ श्रीं क्लीं सिद्धेभ्यो बुद्धेभ्यः सर्वसिद्धिदायकेभ्यः नमः स्वाहा।

विधि — श्वेत वस्त्र पहनकर, वायव्य दिशा की ओर मुख करके, पद्मासन से दर्भा के आसन पर बैठकर, सामने पाटै पर घी का दीपक जलाकर, अग्नि में दशांग धूप खेते हुये, अर्ध रात्री में, कमलगट्टे की माला से, गुलाब के फूल चढ़ाते हुये सात दिन तक प्रतिदिन 108 बार तीसरा काव्य, ऋद्धि जाप्य एवं मन्त्र जाप की साधना करना चाहिये।

यह कथा भी मध्ययुग की है। पीले वस्त्र पहने तथा हाथ जोड़े वणिक् पुत्र सुदत्त श्रेष्ठि म"लकलश गृहीता पत्नी के साथ अपने गृहद्वार पर खड़े निम्न शब्दों के मधुर उच्चारण द्वारा अपने गुरुवर परम दिगम्बर मुनि का आ ान कर रहे थे – ''हे स्वामिन् ! नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, अत्रो, अत्रो, तिष्ठः तिष्ठ, आहार–जल शुद्ध है।'' वैसे तो आज भी हम दिगम्बर मुनियों को आहार देते हैं, परन्तु आज न तो वह संख्या दिगम्बर साधुओं की है और न आहार देने वाले श्रावक–श्राविकाओं की। किन्तु उस युग के वातावरण में इस युवा दम्पत्ति के मधुर कण्ठों से निकला उपर्युक्त आह्वान वायुमण्ल में आनन्द बिखेर रहा था। क्योंकि नवदम्पत्ति के उक्त आह्वान में केवल जड़ शब्द ही नहीं थे, बल्कि उनमें उनकी हार्दिक श्रद्धा, भक्ति, विनय और उपासना आदि की मधुर महक थी। तभी उस मार्ग से विहार करने वाले भाव–पारखी मुनि उन स्वरों को सुन भोजन शाला में प्रविष्ट हुए और यथाविधि निरन्तराय आहार ग्रहण किया। इसके उपरांत उस दम्पत्ति ने मुनिश्री से कुछ तत्त्व ज्ञान देने की विनयपूर्वक प्रार्थना की। जैन साधु भी समय और पात्र को देखकर ही उपदेश करते हैं। उस समय मध्ययुग के भक्तिकाल का समय था। अन्य धर्मों व सम्प्रदायों के लोग मन्त्रों के बल पर चमत्कार प्रकट कर अपने अपने धर्म की महत्ता बताने की होड़ में संलग्न थे। वैसे जैन धर्म चमत्कार करने का नहीं, अपितु साधना करने का धर्म है, किन्तु जैन साधु चूंकि समय की हवा को पहचानते थे अतः उन परम दिगम्बर मुनि ने नवदम्पति को महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र के द्वितीय युगल काव्य (तृतीय तथा चतुर्थ श्लोक) और उनकी मन्त्र–ऋद्धि–साधना विधि आदि मौखिक रूप से रटाकर याद करा दी और स्वयं जंगल की ओर विहार कर गये। सुदत्त श्रेष्ठि वणिक्–पुत्र था। वणिक् का सिद्धान्त होता है – ''व्यापारे वसति लक्ष्मी'' अतः जहाजों में माल लादकर सुदूर समुद्र में रत्नद्वीप की ओर चल दिया। जहाज समुद्र की छाती को चीरते हुए बढ़े चले जा रहे थे और उनमें बैठे हुए मानो उस अगाध जल पर विजय पाकर गर्व व अहंकार से अट्टहास कर रहे हों। उन्हें क्या पता था कि जहाजों द्वारा पानी पर बनाई रेखाओं से भी बड़ी तथा भारी कर्म की रेखाएँ होती हैं। तभी सायंकाल के समय समुद्र में जोरों का तूफान आया। घटाएँ घिर आईं तथा प्रचण्ड वायु चलने लगी। समुद्र की चौड़ी छाती पर पर्व से चलने वाले जहाज ऐसे डगमगाने लगे कि मानों डूबने को तैयार। जहाज के यात्री मृत्यु को निकट जानकर रोने चिल्लाने लगे। बचाओ–बचाओ का क्रंदन गूंजने लगा। इस क्रन्दन से सामायिक में लीन बैठे वणिक् पुत्र सुदत्त श्रेष्ठि का ध्यान भंग हुआ और उन्हें संकट–स्थिति को समझते देर न लगी। वे तुरन्त भक्तामर स्तोत्र के गुरू मुनि श्री द्वारा कंठस्थ कराये गये तीसरे व चौथे श्लोक का उच्चारण ऋद्धि व मन्त्र सहित जोर–जोर से करने लगे। शुद्धोच्चारण के एक–एक शब्द ने अपना प्रभाव दिखाया और वहाँ एक सुंदर सजीव प्रतिमा प्रकट हुई दैवी आभा वाली उस प्रतिमा ने अपना नाम 'प्रभावती बताया और उनको चंद्रकान्तमणि देकर ज्यों हि अन्तर्ध्यान हुई त्यों ही तूफान रुकने सा लगा। बादल छंटने लगे, आसमान साफ हो गया, चन्द्रमा निकल आया और जानलेवा संकट टल गया। प्रातःकाल ज्यों ही जहाज रत्नद्वीप के तट पर पहुँचे, द्वीप के निवासियों व जहाज के यात्रियों के चेहरे प्रसन्नता से खिले हुए थे। शायद दोनों को ही आश्चर्य था कि ऐसे भयंकर तूफान से बचकर जहाज कैसे सुरक्षित आ गये। फिर जब उन्हें आहार–दान द्वारा प्राप्त भक्तामर स्तोत्र के श्लोक के चमत्कार के कारण सुरक्षित बचने की जानकारी प्राप्त हुई तो उनमें भक्तामर स्तोत्र तथा जैनधर्म के प्रति सभी को ही अगाध श्रद्धा हो गयी। सत्य ही कहा है कि आहार दान करने से पुण्य तीव्र वेग से बढ़ता है। भगवान भी दानवीर के सामने छोटे हो जाते हैं। राजा श्रेयांस के समक्ष आदिनाथ भी आहार के वक्त छोटे थे। श्रेयांस के दान की प्रशंसा देवों ने की और 12 करोड़ रत्नो की वर्षा कर पंचाश्चर्य किया। यह आहारदान की महिमा है।

भावार्थ

देवों द्वारा पूजित, हे जिनेश्वर देव ! जैसे जल में दृश्यमान चन्द्रमा के बिम्ब को शीघ्र ही पकड़ने का साहस एक नादान बालक करता है, वैसे मैं (मानतुंग आचार्य) भी बुद्धि रहित होने पर भी आपकी स्तुति करने को तैयार हुआ हूँ। क्या यह मेरी निर्लज्जता एवं धृष्टता नहीं है ? अर्थात है ।

MEANING

Oh Lord ! The Devas have bowed down and rubbed their heads in your pious feet and Padapeetha, in adoration.

Oh Lord! You are great. Lord, allow me to worship you. Please shower your blessings on me. You know that I have no wisdom: But in spite of that, I have decided to compose a verse of prayer on you. I have a burning desire to feel you in my physique and mind; and rightly so, I have no reservations at all. Lord! I am your child. I am innocent.

A lovely full moon in the sky is reflected in the lake. How cute does it seem! A child will crave and even dare to pick the moon up from the lake !

Many bigger and elderly people may not do so. However, I am your kid; and so not ashamed to pray you.

शब्दार्थ

विबुध = देवो के द्वारा, आर्चित = पूजित हैं, पादपीठ = चरण रखने का आसन जिनका ऐसे जिनेन्द्र देव की, बुद्धया = बुद्धि के, विनाऽपि = बिना भी, विगतत्रपः = लज्जा रहित, अहम् = मैं, स्तोतुम् = स्तुति करने के लिये, समुद्यतमति = तैयार हुआ हूं, जल संस्थितम् = पानी में स्थित, इन्दुबिम्बम् = चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को, बालम् = बालक को, विहाय = छोडकर, कः = कौन, जनः = मनुष्य, सहसा = शीघ्र ही, ग्रहीतुम = पकडने के लीये, इच्छति = इच्छा करता है ।

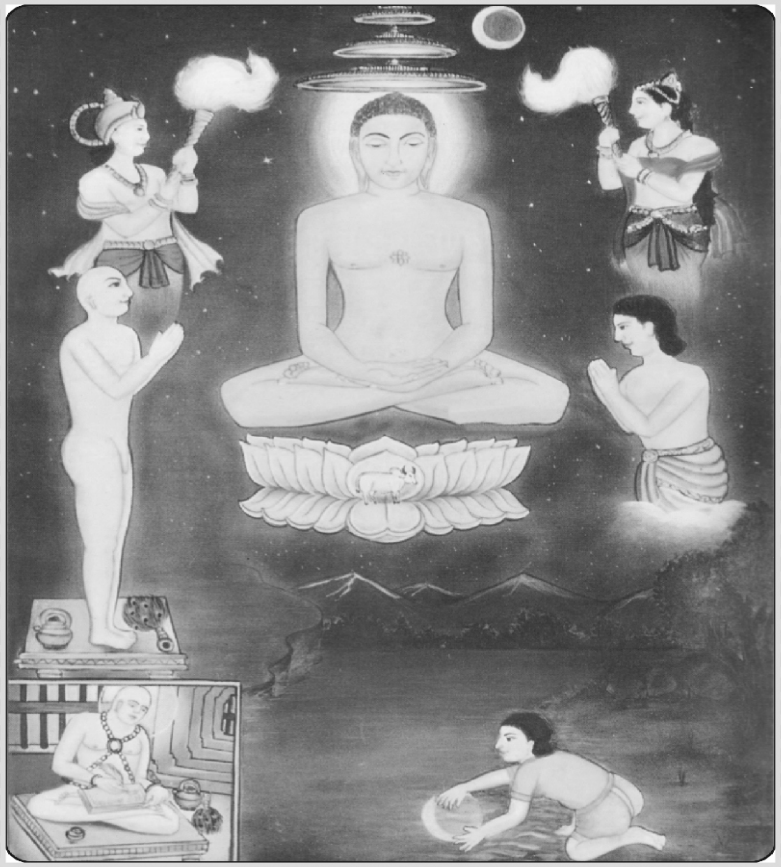

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र शशांककान्तान्।
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या।
कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्।।4।।

जलजन्तु अभय–प्रदायक यंत्र–4

ऋद्धि — ॐ ॐ अर्हं णमो सव्वोहि–जिणाणं ÃÃ ÃÃ नमः स्वाहा

मन्त्र — ॐ ॐ श्रीं क्लीं सागरसिद्धदेवताभ्यो नमः स्वाहा।

विधि — स्नान करके स्वच्छ सफेद वस्त्र पहिन कर यंत्र स्थापित करें तथा यंत्र की पूजा करे पश्चात् स्फटिक मणि की माला द्वारा 7 दिन तक प्रतिदिन 1000 बार ऋद्धि तथा मंत्र का जाप जपते हुए हर रोज 108 सफेद फूल चढ़ाना चाहिये, दिन में एक बार भोजन और रात्रि में पृथ्वी पर शयन करना चाहिये।

स्तोत्र रचना की प्रतिज्ञा करने के पश्चात् मुनिवर श्री मानतुंग आचार्य कहते हैं कि हे जिनेन्द्र देव! आप परम पूज्य देवाधिदेव हैं तभी तो देवगण आपके पावन चरणों की भक्तिपूर्वक अर्चना करते हैं। यही नहीं, वरन् आपके पादपीठ अर्थात् पद विन्यास के आसन को भी पूजते हें। कहाँ वे, कहाँ हम ? आपकी स्तुति हम किस प्रकार करें ? तद्रूप बुद्धि हमारे पास तो है नहीं। लोक व्यवहार तो ऐसा है कि जिस कार्य में अपनी बुद्धि की पहुँच हो वही करना सर्वथा योग्य है। जो कार्य शक्ति के बिना किया जाता है वह बीच में ही छोड़ना पड़ता है। अतः उसके हास्यास्पद होने का अवसर भी आता है। परन्तु आपकी स्तुति करने का अदम्य उत्साह हमारे हृदय में इतना प्रबल है कि अपनी शक्ति की मर्यादा तोड़कर भी मैं इस बृहत्तर कार्य के करने को तत्पर हुआ हूँ। आगे के पदों में अपने विधान का समर्थन करने के लिए जिन–जिन उपमानों का प्रयोग वे यहां करते हैं, उनके दृष्टान्त निम्न प्रकार हैं – जल में चन्द्रमा का लुभावना प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, परन्तु ऐसी सुन्दर वस्तु को पकड़ने का प्रयत्न कोई भी बुद्धिमान मनुष्य नहीं करता, क्योंकि उसमें उसे सफलता मिलने का विश्वास ही नहीं होता। हाँ, नादान और अबोध बालक अवश्य ही उस प्रतिबिम्ब को पकड़ने का असफल प्रयास करता है। आपकी स्तुति के लिए मेरी तत्परता ठीक बालक के प्रयत्न की तरह ही है। अर्थात मात्र बाल–चेष्टा है। इसी पद में आचार्यश्री का कर्तृत्व बुद्धि रहित अपनी लघुता का भी प्रदर्शन पाया जाता है। यद्यपि वे एक समर्थ और वर्चस्वी प्रतिमा सम्पन्न चारित्र्यनिष्ट विद्वान सुकवि हैं तथापि अपनी गिनती अबोध बालकों में ही करते हैं। निश्चयतः जो महान् होते हैं वे कभी भी बड़े बोल नहीं बोलते। क्योंकि 'लघुता से प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभू देर' लोकोक्ति प्रसिद्ध है। स्तोत्र रचना में तत्पर आचार्य श्री कहते हैं कि हे आदीश्वर देव! आप तो गुणों के महासागर सदृश शान्त हैं अर्थात् आप अनन्त गुणों से परिपूर्ण हैं और फिर प्रत्येक गुण चन्द्रमा की भांति उज्ज्वल हैं। इन सब गुणों की यथार्थ वन्दना वृहस्पति तुल्य प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति भी जब नहीं कर सकता तब फिर भला मेरी तो क्या सामर्थ्य, जो आपके गुणों का वर्णन कर सकूं। आपके यथार्थ गुणों का वर्णन करने के लिए कितना ही प्रयास करें, किंतु नहीं कर सकते। विशेष स्पष्टीकरण देते हुए वह कहते हैं कि जहां प्रलयकाल की पवन जैसी आंधी चल रही हो और मगरमच्छ घड़ियाल आदि जलचर प्राणी जिसमें उछल रहे हों ऐसे महासागर को दोनों भुजाओं से तर कर सकने में कौन सा मनुष्य समर्थ हो सकता है ? तात्पर्य यह है कि ऐसा कोई नहीं कर सकता। इसी प्रकार कोई मनुष्य कितना ही बुद्धिमान, विद्वान हो, महापंडित की ख्याति से विभूषित हो, तो भी आपके गुणों का यथावत् वर्णन नहीं कर सकता। यहां यह समझने योग्य वस्तु है कि गुण अनंत हैं और वाणी क्रमवर्ती है तथा गुण चैतन्यमय हैं तथा वाणी जड़ शब्दमयी है, इसलिए वाणी द्वारा जिनेश्वरदेव के सब गुणों का यथावत् वर्णन किसी भी प्रकार नहीं हो सकता। फिर तीर्थंकर भगवन्त के एक ही गुण का वर्णन करना होता तो वह भी वाणी के द्वारा संभव नहीं था क्योंकि शब्दशक्ति मर्यादित है अतएव सम्पूर्ण गुणों का वर्णन वाणी में नहीं आ सकता। भक्ति का मूल रूप स्तवन है। वह उसका प्रारंभिक रूप भी है, और शाश्वत भी। उसका महत्व एवं उपयोगिता समय की गति के साथ न कम हुई है और न होगी। अपनी प्रारंभिक अवस्था में जब साधक शुभ राग में प्रवृत्त होता है तो परावलम्बी ध्यान के रूप में वह अपने इष्टदेव के गुणों का गुणगान करता है।।

भावार्थ

हे गुण सागर ! चंद्रमा के तुल्य उज्ज्वल निर्मल, अनंत गुणों को कहने के लिये बृहस्पति जैसा बुद्धिमान भी समर्थ नहीं है, तब फिर कौन ऐसा है जो आपके अनन्त गुणों को कह सकेगा ? अर्थात् कोई नहीं ।

प्रलयकाल की तुफानी वायु से उछाल मारते हुये मगर-मच्छों से सहित समुद्र को, कौन मनुष्य अपनी भुजाओं से तैरने में समर्थ है ? अर्थात् कोई नहीं ।

MEANING

Oh, the ocean of virtues !

Where is the question of sharp intelligence for praying your virtues!. Even the Guru of Devas is not capable of assessing your pious attributes, charming like the moon. And so, if I do not know how to pray you, why should I be ashamed of it ?

Oh, look at that ocean; at the time of Pralaya it thunders. The wild and mountainous gigantic waves and dangerous crocodiles make it impossible to swim.

Oh my God! What would happen if someone asks to swim across his horrifying sea…? Who can do so…?

Oh Lord! Oh Lord! Who can narrate your qualities?

Lord! Your attributes are infinite! I am finite.

शब्दार्थ

गुण समुद्र = हे गुणों के सागर, ते = तुम्हारे, शशांक कांतान् = चन्द्रमा की कान्ति के समान उज्ज्वल, गुणान् = गुणों को, वक्तुं = कहने के लिये, बुद्धया = बुद्धि से, सुरगुरु = देवों के गुरु, प्रतिमः = समान, अपि = भी, कः = कौन, क्षमः = समर्थ है, कल्पान्त काल = प्रलय काल की, पवन = प्रचण्ड वायु से, उद्धत = उछलते हुये, नक्र चक्रं = मगर-मच्छों से सहित, अम्बुनिधिम् = समुद्र को, भुजाभ्याम् = दो भुजाओं से, तरीतुम् = तैरने के लिये, को-वा = कौन पुरुष, अलम् = समर्थ है । (अर्थात कोई भी नहीं)

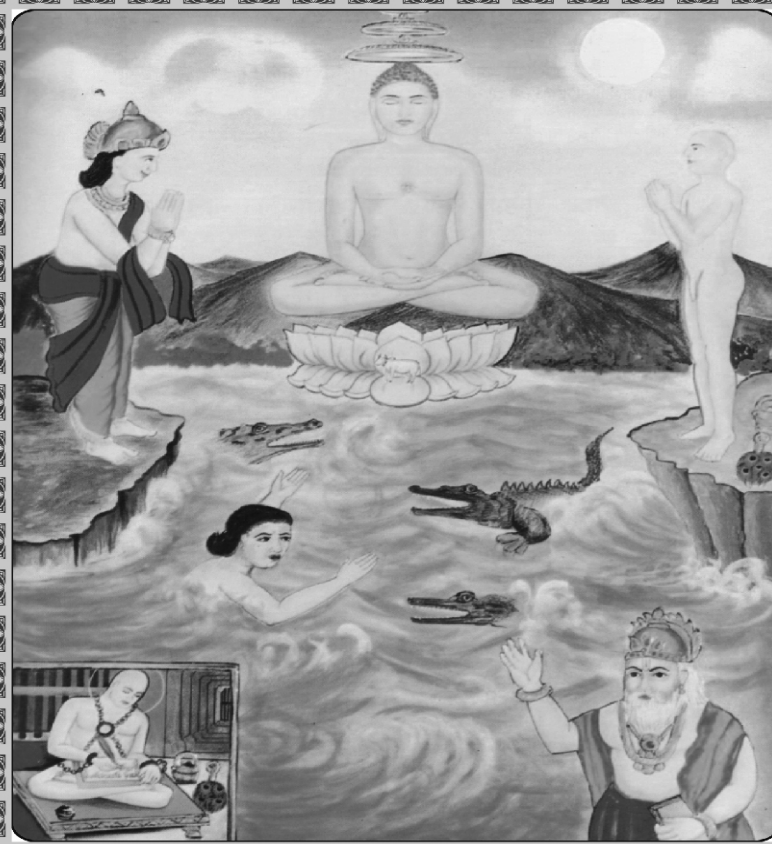

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश।
कर्त्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रं,
नाऽभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ।।5।।

लोचनकष्ट मोचक यंत्र–5

ऋद्धि – ॐ ह्रीं अर्हं णमो अणंतोहि–जिणाणं ह्रीं ह्रीं नमः स्वाहा

मन्त्र – ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं क्रौं सर्व संकट निवारणेभ्यः सुपार्श्व यक्षेभ्यो नमो नमः स्वाहा।

विधि – पवित्र होकर पीले वस्त्र पहिने, यंत्र, स्थापित कर पूजा करें पश्चात् पीले आसन पर बैठकर पीले रंग के फूलों द्वारा 7 दिन तक प्रतिदिन 1000 बार ऋद्धि तथा मंत्र का शुद्ध भाव से जाप जपे और हर बार कुंदरू की धूप खेवे।

दक्षिण भारत के कोंकण प्रदेश की सुभद्रावती नगरी में 'देवल' नामक एक गरीब बढ़ई रहता था। उन दिनों कोंकण प्रदेश तथा सुभद्रावती नगरी की गली गली में देवल बढ़ई के दिन फिरने की ही चर्चा थी कि आखिर देवल अचानक इतनी सम्पत्ति कैसे पा गया ? कुछ दिनों पूर्व तो फटा कुर्ता–धोती पहने दिन भर लकड़ी चीरता तथा लकड़ी के सामान की मरम्मत करता था, बच्चे एक–एक रोटी को तरसते थे। स्त्री ताने मार–मारकर स्वयं मजदूरी करने के लिये कहती थी..। और अचानक इतना अद्भुत परिवर्तन कि उसने भगवान आदिनाथ का एक विशाल मंदिर बना दिया, साथ ही अपना विशाल गृह–भवन भी बनवा लिया। यह कायापलट हुई तो हुई कैसे ? अधिकांश व्यक्तियों का स्वभाव होता है कि वे अपने दुःख से इतने दुःखी नहीं होते, जितने पड़ौसी के सुख से दुःखी होते हैं। अतः देवल के पड़ौसियों की छाती पर तो सांप लोट रहे थे, वे ईर्ष्या की आग में जले जा रहे थे, दांतो तले उंगली दबा रहे थे। साथ ही अनेक लोग, जो कल तक देवल से सीधे मुँह बात नहीं करते थे, आज उसकी खुशामदों में लगे थे। कैसे गिरगिट जैसे रंग बदलती है यह दुनिया। इन लोगों के अलावा, नगर में कुछ विचारशील एवं धार्मिक प्रकृति के लोग भी थे, जो सोचते थे कि देवल के चमत्कारी भाग्य परिवर्तन का कारण जरूर कोई धार्मिक क्रिया या मंत्र आदि होगा। वे देवल के पास जिज्ञासावश आए और पूछा कि किस मंत्र या धार्मिक अनुष्ठान की साधना से आपका जीवन बदला है, और वह मंत्र आपको कहाँ से प्राप्त हुआ ? क्या आप हमें बतलाने की कृपा करेंगे ? देवल बड़ा ही सरल व सीधी प्रकृति का मनुष्य था, छल–कपट तो उसे छू भी न पाया था, धनी हो जाने पर भी उसका अन्तरंग अभी भी उतना ही निर्मल था। अहंकार तो उसमें नाममात्र को भी न था अतः वह अपनी सब आपबीती बताने को तैयार हो गया, विनम्रता से कहने लगा – ''श्रीमान् जी ! आप शायद विश्वास न करेंगे कि छोटे बच्चों के गिल्ली–डंडे जैसे साधारण खेल से मेरे जीवन में यह चमत्कारी परिवर्तन आया है। अभी कुछ दिन पहले इस सामने वाले मैदान में कुछ बच्चे गिल्ली–डंडा खेल रहे थे। मैं अपनी दुकान पर बैठा उन्हें देख रहा था। इतने में घूमता–घामता एक 7–8 वर्ष का बालक भी वहां आ गया वह बगल में एक छोटी पुस्तक दबाए था, शायद पाठशाला से पढ़कर आ रहा था। किन्तु उसके पास डंडा न होने के कारण वह खेल नहीं पा रहा था। तभी एक दयालु बालक ने उसे खेलने को डंडा दे दिया, वह खेलने लगा। अभी वह दिल खोलकर खेल भी न पाया था कि डंडा टूट गया। डंडा क्या टूटा, उसका दिल टूट गया। वह अधिक न खेल पाने से दुःखी नहीं था, बल्कि इसलिये था कि डंडे के मामले में वह दूसरे का ऋणी हो गया था। शायद सोच रहा था कि अब कहाँ से वापिस दूंगा उसका डंडा ?'' भाई जी, सच पूछिये तो उसका दुःख मुझसे देखा न गया मैंने उसे पास बुलाकर उसका परिचय पूछा। वह सुधन श्रेष्ठी का पुत्र सोमक्रान्ति था। मैंने उससे पूछा –'तुम्हारे पास कौन सी पुस्तक है ?' बालक तुरन्त बोला – ''नहीं–नहीं, बिना स्नान किये इसे नहीं छूने दूंगा, यह जैन धर्म का पवित्र ग्रन्थ 'भक्तामर स्तोत्र है, इसे श्रद्धावान श्रावक ही छू सकते हैं।'' बालक के मुख से निकलते जा रहे शब्दों और उसके भोलेपन पर मुग्ध होकर मैंने उसे दो डंडे बनाकर दिये और कहा–एक से स्वयं खेलना और एक दूसरे बालक को लौटा देना। बालक डंडे पाकर बड़ा खुश हुआ और मुझे पुस्तक थमाकर खेलने चला गया। मुझे उस पुस्तक के बारे में बड़ी उत्सुकता थी। जीवन में थोड़ा पढ़ा लिखा होना काम आया और मैंने पुस्तक के पन्ने पलटे तो उस ग्रन्थ के पाँचवे श्लोक पर मेरी नजर ठहर गयी। मुझे उसे पढ़कर ऐसी श्रद्धा जागी कि मैंने वह श्लोक ऋद्धि व मन्त्र सहित पाठ कर लिया और साधना–विधि पढ़ ली। थोड़ी देर में वह बालक अपनी पुस्तक ले गया। श्रद्धा से भरा मैं पास के पर्वत की एक निर्जन गुफा में जाकर उस श्लोक का ऋद्धि व मंत्र सहित पाठ व ध्यान करने लगा। कई दिनों बाद एक दिन रात्रि के समय इसका पाठ करते–करते 'अजिता' नामक देवी प्रकट हुई और बोली–वत्स ! क्या चाहते हो ? मैंने बिना सोचे ही कह दिया – 'धन'। दिव्य आभा बिखेरती देवी बोली 'वत्स ! यहां से उत्तर–पूर्व के कोने में जो पीपल का वृक्ष है उसके चारों ओर की भूमि खोदो'। इतना कहकर देवी अन्तर्ध्यान हो गयी। मैंने तुरन्त फावड़ा लाकर उस वृक्ष के चारों ओर खोदा। खोदने पर मुझे करोड़ों रु. के हीरे जवाहरात मिले, मैंने प्रतिज्ञा कि, कि इस धन का उपयोग अपने लिये तब ही करूंगा, जबकि पहले भगवान आदिनाथ जी का एक भव्य मंदिर बनवाकर उसकी दीवारों पर भक्तामर स्तोत्र का पाँचवां श्लोक अर्थ व ऋद्धि–मंत्र सहित अंकित करा दूंगा। और इसी प्रतिज्ञा के अनुसार मैंने यह भव्य मन्दिर बनवाकर अपना निवास–गृह बनवाया है।'' यही कहानी थी उसकी गरीबी के दिन फिरने की। अब क्या था, भक्तामर स्तोत्र के पाँचवे श्लोक के प्रभाव की यह घटना सुनकर सभी प्रसन्न हुए और भक्तामर स्तोत्र के भक्त बन गये। लोगों ने जैन धर्म की भक्ति और शक्ति के स्वरूप की झलक साक्षात् देख ली थी तथा देवल को उपकृत होते देखा।।

भावार्थ

हे मुनीन्द्र ऋषभदेव ! मैं (मानतुंग आचार्य) सामर्थ्य रहित होने पर भी आपकी भक्ति वश ही आपकी स्तुति करने के लिये प्रवृत्त हुआ हूँ।

जैसे हिरणी प्रेमवश अपने शावक को बचाने के लिये अशक्त होने पर भी शोर का सामना करती है। वैसे ही मैं भी अपनी शक्ति और बुद्धि का विचार न कर आपकी भक्ति करने को प्रवृत्त हुआ हूँ।

MEANING

But oh Lord! Oh Leader of great sages !

May be that I have no words or ability to sing about your great qualities. Doesn't matter if I am considered a fool, may be, so am I.

In spite of my senselessness, I want to sing you sincere devotee. All of my shortcomings will be pardoned in front of my sincere and craving devotion.

Look at that deer. She has just delivered her cubs. Her children are as dearer as life to her. The lion roared to her, but the mother deer said, "Oh come on lion, I am willing to protect my children. I have accepted your supremacy till now, but today I will fight with all my Will and Valor for my children. I am willing to fight until death!"

Who can challenge the mother's love?

Who can put to test the love of a mother?

Here, ya Mantunga sorishwarjee compare the critics of poetry with Lions and hails himself and Bhaktamara Stotra with Mother Deer and her cub.

शब्दार्थ

मुनीश = हे मुनियों के ईश्वर, तथापि = तो भी, अहम् = मैं, सः = वह, शक्ति = शक्तिः, विगत = रहित होकर, अपि = भी, तव = तुम्हारी, स्तवं = स्तुति, कर्तुं = करने के लिये, भक्ति वशात् = भक्ति के वश, प्रवृत्तः = प्रवृत्त हुआ हुँ, मृगीः = हिरणी, आत्मवीर्यम् = अपनी शक्ति को, अविचार्य = विचार नहीं करके, प्रीत्याः = प्रीति वशात्, निजशिशोः = अपने शिशु को, परिपालनार्थम् = बचाने के लिये, किम् = क्या, मृगेन्द्रम् = सिंह के सम्मुख, न अभ्येति = नहीं जाती है ? अर्थात् जाती है।

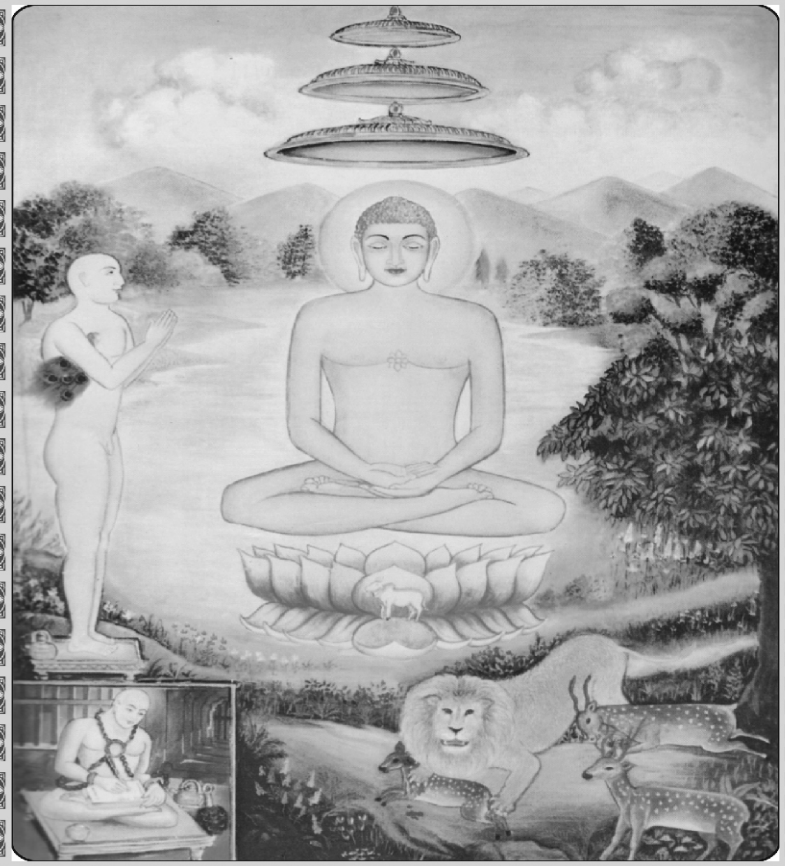

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ?
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्रचारुकलिकानिकरैकहेतुः ।।6।।

वियुक्तव्यक्ति संयोजक यंत्र–6

ऋद्धि — ॐ ह्रीं अर्हं णमो कुट्ठ–बुद्धीणं ह्रीं ह्रीं नमः स्वाहा

मन्त्र — ॐ ह्रीं श्रां श्रीं श्रूं श्रः हं सं थ थ थः ठः ठः सरस्वती भगवती विद्याप्रसादं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि — पवित्र होकर लाल वस्त्र पहिने, यंत्र सीपित कर पूजा करें पश्चात् लाल आसन पर बैठकर 21 दिन तक प्रतिदिन ऋद्धि तथा मंत्र का 1000 बार जाप करें। हर बार कुंदरू की धूप क्षेप करें। दिन में एक बार भोजन और रात में पृथ्वी पर शयन करना चाहिये।

पाठशाला अथवा स्कूलों में जो छात्र पढ़ते हैं, उनमें सभी की बुद्धि व प्रतिभा एक समान नहीं होती। पूर्व जन्म के ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के कारण कोई छात्र अत्यंत प्रतिभाशाली एवं बुद्धिमान होता है, तो ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय होने के कारण कोई छात्र अत्यन्त जड़मति, मूर्ख तथा बुद्धिमान भी पाया जाता है। परन्तु ऐसे जड़मति एवं बुद्धिहीन छात्र का जीवन कितना कष्टमय होता है, इसको तो वह भुक्तभोगी विद्यार्थी ही जान सकता है। कक्षा में अध्यापकों के समक्ष और अपने साथी एवं सहपाठियों के सामने उसे बड़ा ही अपमानजनक जीवन बिताना होता है। कक्षा में अपनी पढ़ाई में पिछड़ने तथा पाठ को कण्ठस्थ याद न कर सकने के कारण वह बात–बात में अपने अध्यापक की प्रताड़ना सहता है। पढ़ाई में अपने साथियों के साथ न चल सकने के कारण वह आत्मग्लानि से भर जाता है और वह अपने को भाग्यविहीन मानने लगता है। ऐसा नहीं है कि वह पढ़ाई–लिखाई में ऊँचा उठने के लिये प्रयास न करता हो, अथवा अपने गुरू की आज्ञा का पालन न करता हो, किन्तु पूर्व ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम न होने के कारण उसे उसमें सफलता नहीं मिलती। हो सकता है कि पूर्वजन्म में उसने किसी की ज्ञानप्राप्ति में बाधा डाली हो, किसी की पुस्तक चुराई हो अथवा अपने साथी या मित्र आदि की पुस्तक छिपाकर रख दी हो, या किसी श्रावक की स्वाध्याय की पुस्तक यथास्थान न रखकर लापरवाही या उपेक्षा भाव के कारण अन्य किसी अलमारी में रख दी हो तथा अपने ज्ञानावरणीय कर्म का बंध किया हो, जिसके कारण उसे वर्तमान् छात्र जीवन में ऐसी दयनीय स्थिति का सामना करना पड़ा हो। ऐसे ही एक जड़मति बालक के जीवन की यह लघुकथा है, जिसने महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र के छठे श्लोक का ऋद्धि व मन्त्र सहित पाठ व अनुष्ठान किया और अपने ज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से वह एक धुरंधर विद्वान बन गया। प्राचीन भारत की राजधानी में राजा हेमवाहन का शासन था। राजा हेमवाहन के दो पुत्र थे। बड़े पुत्र का नाम भूपाल और छोटे पुत्र का भुजपाल था। बड़ा भाई भूपाल बड़ा ही जड़मति एवं मंदबुद्धि वाला था, तो छोटा भाई भुजपाल बड़ा बुद्धिमान और कुशाग्रमति था। दोनों के इस अन्तर को आध्यात्मिक भाषा में ज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम होने या न होने का अन्तर, जड़ या वचन का अन्तर अथवा निश्चय और व्यवहार का अन्तर कहा जा सकता है। दोनों भाइयों को विभिन्न विधाओं और शास्त्रों के अध्ययन के लिये पं. श्रुतधर के आश्रम में भेजा गया। गुरू ने 12 वर्ष तक दोनों को तन–मन से अध्ययन कराया। हुआ क्या ? हुआ यह कि छोटा भाई भुजपाल तो इस अवधि में विभिन्न विद्याओं एवं शास्त्रों में पारंगत हो गया और उसने व्याकरण, छन्द, तर्क, न्याय, राजनीति, सामुद्रशास्त्र, वैधक, विज्ञान तथा मनोविज्ञान आदि विषयों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया। किन्तु बड़ा भाई भूपाल अपने अशुभ कर्मोदय से जड़मति एवम् मंदबुद्धि वाला था। पं. श्रुतधर ने भूपाल को भी ज्ञानी बनाने के लिये अथक परिश्रम किया। उसे पढ़ाने व समझाने में खूब माथापच्ची की, परन्तु असफल रहे। उन्हें लगा कि भूपाल के मस्तिष्क में तो शायद भूसा या गोबर ही भरा है, क्योंकि उसकी दशा कुत्ते की पूंछ जैसी हो रही जो कि 12 वर्ष तक नली में रखने के बाद भी टेढ़ी ही निकली। अंततः भूपाल को पढ़ाने में पं. श्रुतधर का पाण्डित्य जवाब दे गया और हार मान बैठा। भाग्य की या पूर्व जन्म के शुभ व अशुभ कर्मों की कैसी विडम्बना है कि एक ही पिता के दो पुत्र, एक ही गुरू के दो शिष्य; परन्तु दोनों में अन्तर जमीन और आसमान का। एक का जीवन लोकप्रियता के शिखर पर और दूसरे का लोकनिन्दा के निम्न धरातल पर। आखिर छोटे भाई से बड़े भाई का दुःख न देखा गया। उसने अपने धर्म–ज्ञान के उपयोग द्वारा बड़े भाई भूपाल को दयनीय जीवन से उबारने का निश्चय किया और उसे भक्तामर स्तोत्र की आराधना का परामर्श दिया। उधर बड़े भाई ने भी परिस्थितियों से अत्यन्त दुःखी होकर अपने अनुज भुजपाल की सम्मति के अनुसार भक्तामर स्तोत्र के छठे श्लोक का ऋद्धि व मन्त्र सहित पाठ व अनुष्ठान बड़ी भक्तिपूर्वक किया। 21 दिन के अनुष्ठान के बाद भूपाल का साक्षात्कार जिनशासन की अधिष्ठात्री 'ब्रह्मी' नाम की देवी से हुआ। उसने कहा कि वत्स ! तुम्हारी भक्तामर स्तोत्र की भक्ति व साधना सफल होगी। इस प्रकार भक्तामर स्तोत्र की भक्तिपूर्वक आराधना व साधना से भूपाल कुशाग्रमति बन गया और ऐसा धुरन्धर विद्वान हुआ कि पुराणों में भी उसने अपना विशिष्ठ एवं महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भक्तामर स्तोत्र की सच्ची भक्ति से अशुभ से अशुभ कर्मों के प्रभाव को भी क्षीण किया जा सकता है। यही है भक्तामर महिमा।

भावार्थ

मैं अल्पज्ञानी, विद्वानों की हंसी का पात्र होता हुआ भी आपकी भक्ति वश ही आपकी स्तुति करने को तत्पर हुआ हूँ।

जैसे वसंत ऋतु में कोयल आम्र मंजरी के कारण अपने आप कूजने लगती है। वैसे मैं भी आपकी भक्ति के कारण ही आपकी स्तुति करने हेतु तैयार हुआ हूँ।

MEANING

Oh Lord ! I know my limitations and I cannot vie with highly knowledgeable people. I have not even heard as much as them, my humble creation is just not to be compared with their great verses, prayers and poetry. I would ask all of them:-

"See, have I created all these prayers deliberately ? No, not at all. My small heart is overflowing with the love of God; therefore some words and stanzas have fallen here and there from it! What can I do for that ?"

Just look at that cuckoo. Just ask her if she knew the rules of music. Just ask her whether she knew about the meters and Ragãs: Tala & Laya (Rhythm) ?

She will reply that she is not singing in an orchestra. Nor she is willing to get auditioned for music.

"See! Springs have come. That mango tree smiles, In fact, it is blossoming. The atmosphere is full of fragrance and very tempting.

The blossoming mango, full of fragrance, tempts me to sing. If you want to listen, do so; and if you like, you may also sing.

You name it a poem or a pun as you like. Who cares ?"

Similarly, Acharya Manatungasoori states that whether critics consider this Bhaktamara Stotra as a beautiful poem or a mere pun, he is indifferent.

शब्दार्थ

अल्प-श्रुतं = अल्प ज्ञान वाले, श्रुतवताम् = विद्वानों की, परिहासधाम = हंसी का पात्र, माम् = मुझको, त्वद्भक्तिः = आपकी भक्ति, एव = ही, बलात् = बलपूर्वक, मुखरी = वाचाल (प्रेरित), कुरुते = कर रही है। कोकिलः = कोयल, किल = निश्चय से, मधौ = वसन्त ऋतु में, मधुरम् = मीठा, विरौति = कूकती है, त तूच = उसमें, आम्र = आम की, चारु = सुन्दर, कलिका = मंजरी का, निकर = समुदाय ही, एक = मात्र, हेतुः = कारण है।

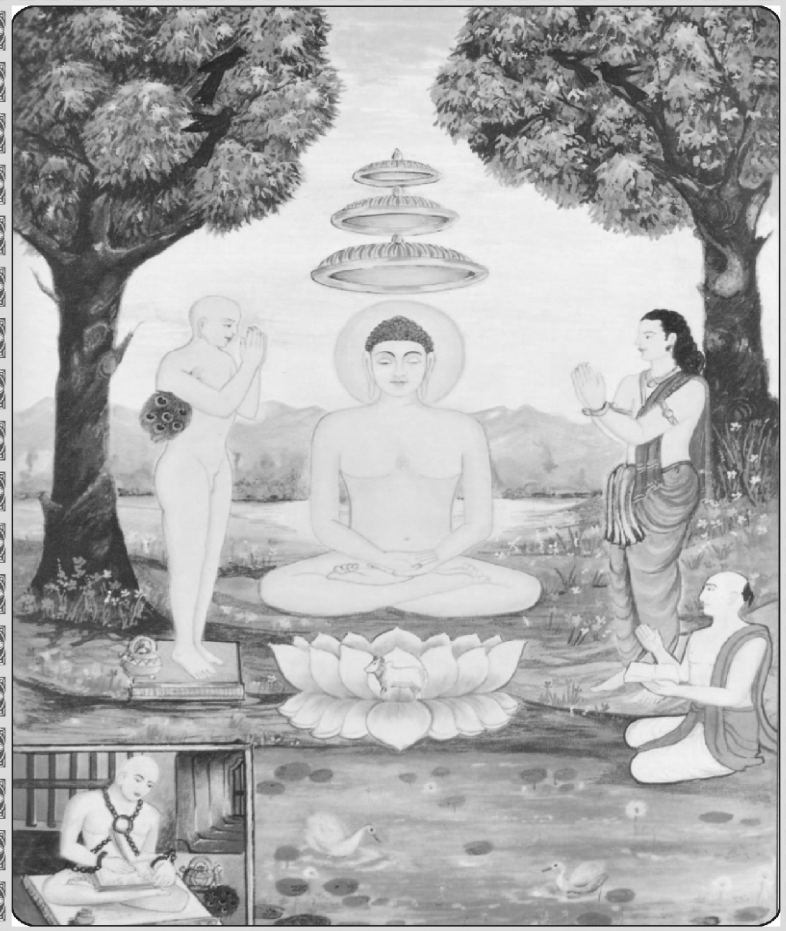

त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धं
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।
आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु
सुर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम्।।7।।

भुजंगविष उपशमक यंत्र–7

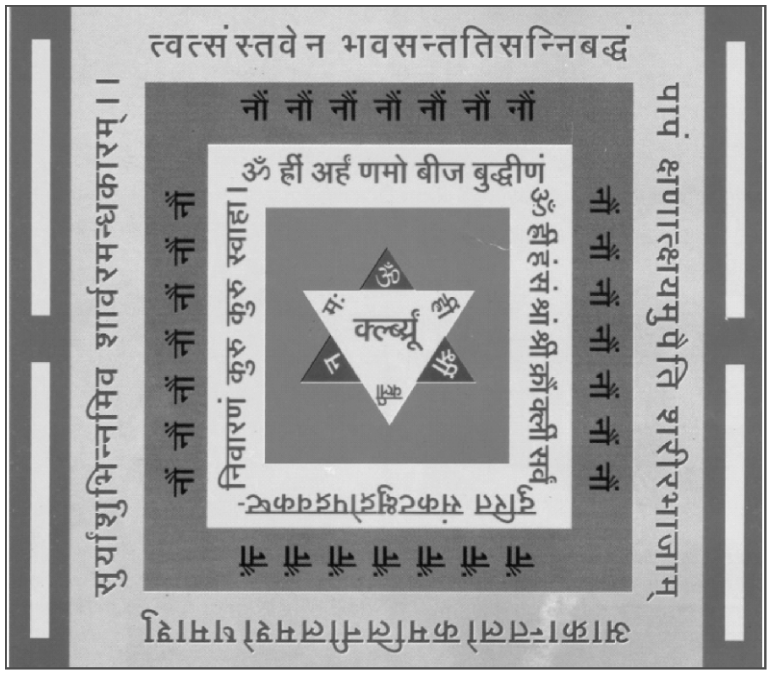

ऋद्धि — ॐ ॐीं अर्हं णमो बीज बुद्धीणं Ãौं Ãौं नमः स्वाहा

मन्त्र — ॐ ॐीं हं सं श्रां श्रीं क्रौं क्लीं सर्व दुरित संकट क्षुद्रोपद्रवकष्टनिवारणं कुरु कुरु स्वाहा। ॐ ॐीं श्रीं क्लीं नमः।

विधि — पवित्र होकर हरे रंग के वस्त्र धारण कर हरे रंग की आसन पर बैठकर हरी माला से 21 दिन तक प्रतिदिन 108 बार सातवां काव्य, ऋद्धि तथा मंत्र की जाप जपते हुए लोभान की धूप क्षेपण करना चाहिये।

यह घटना भक्तिकाल के मध्ययुग की है, जब कि पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) में राजा धर्मपाल का शासन था। इस युग में मन्त्र–तन्त्रों द्वारा लौकिक चमत्कार को करने की होड़ सी लगी थी और मिथ्यात्व के मार्ग पर चलने वाले अनेक तपस्वी अपने मिथ्या एवं रागद्वेष भरे चमत्कारों से जनता को भ्रमित करते रहते थे। उस समय 'धूलिया' नाम का ऐसा ही एक मायाचारी कुतापसी था जो झूठ, ढोंग और पाखण्ड का जाल बिछाकर भोली–भाली जनता को उसमें फंसाकर ठगता था। वास्तव में उसको वैताली विद्या सिद्ध हो गयी थी। यह एक ऐसी विद्या है जिसे चरित्रभ्रष्ट मनुष्य भी बिना आत्मज्ञान के ही सिद्ध कर लेते हैं और कुछ काल तक जनता के बीच अपना आतंक जमाने और मिथ्यात्व का प्रचार करने में सफल हो जाते हैं। पाटलीपुत्र में मायाचारी धूलिया तथा उसके शिष्यों ने इस वैताली विद्या के बल पर ही कुछ ऐसा आतंक जमाया कि वहाँ आम जनता तो क्या, राजा धर्मपाल तक उसकी चरण–रज लेने आने लगे। लगता था कि लौकिक चमत्कारों की चकाचौंध ने उनके विवेक की आँखों पर पट्टी बांध दी हो। किन्तु मिथ्याचारी तपस्वियों के कुतप का ऐसा आतंक थोड़े ही समय रहता है। केवल तब तक ही, जब तक कि उनका सामना किसी सम्यग्दृष्टि, गुरू से नहीं होता। जिनशासन के सच्चे भक्त ऐसे बहुरूपी मायाचारियों की नस पकड़ना तथा उनके ढोल की पोल खोलना अच्छी तरह जानते हैं। इनके सामने आते ही मायाचारियों का आतंक सूर्य पर छाई काली घटाओं के समान छिन्न–भिन्न हो जाता है। यही हुआ भी। जिनेन्द्र प्रभु का एक सम्यग्दृष्टि भक्त 'रतिशेखर' पाखंडी धूलिया के इन सब प्रपंचपूर्ण कृत्यों एवं रागद्वेष भरे ढोंगी चमत्कारों को देखता था और उनका भण्डाफोड़ करने के अवसर की तलाश में रहता था। वैसे रतिशेखर कोई तपस्वी नहीं था, वह तो केवल जैनधर्म का सम्यग्दृष्टि एवं जिनेन्द्र प्रभु का भक्त था। हाँ, उसे कुछ अंशों में आत्मज्ञान था तथा मंत्र–तंत्र आदि में भी उसकी पहुँच थी। एक दिन रतिशेखर विद्यामंदिर की अध्ययनशाला में बैठा हुआ अध्ययन में लीन था, तभी पाखंडी धूलिया का एक प्रमुख शिष्य उसके पास जानबूझकर इस उद्देश्य से आकर बैठ गया कि रतिशेखर उसे विनयपूर्वक नमस्कार करे। परन्तु क्या सम्यक्त्वी भी कभी किसी मायाचारी तथा मिथ्यात्वी के चरणों में झुक सकता है ? कदापि नहीं। पास में कौन बैठा है, उसे नहीं मालूम, वह तो अपने अध्ययन में एकाग्रचित्त से व्यस्त था। बैठे–बैठे चेलाराम जब उकता गये तो अपना सा मुँह लेकर चल दिये और आकर अपने गुरू धूलिया को एक–एक की चार–चार लगाकर भड़काया। फिर क्या था ? अभिमानी व पाखंडी धूलिया की आँखें क्रोध से चढ़ गयीं। उसने वैताली विद्या की अनुगामिनी देवी का स्मरण किया, देवी हाथ बांधे सामने आकर खड़ी हो गयी और बोली –'क्या कार्य है तापस ?' 'अट्टहास करते हुए धूलिया ने कहा – 'रतिशेखर के प्राणहरण। 'देवी बोली–' पर वह तो दृढ़निश्चयी सम्यग्दृष्टि है, उसका सर्वनाश तो असंभव है। हाँ उसके बढ़ते प्रभाव को कम करने के लिए धूल अवश्य बरसाई जा सकती है। इस प्रकार आपके प्रभाव को कायम रखा जा सकता है।' धूलिया –'तो जाओ, तत्काल ऐसा ही कराओ देवी !' अब क्या था ? धूल की तीव्र आंधी चलने लगी। तेज आंधी तथा धूलि–वर्षा से आसमान दिखाई देना बन्द हो गया, मकान हिलने लगे, जनता में त्राहि–त्राहि मच गई। रतिशेखर का विशाल गृहभवन भी धूल के समुद्र में डूब सा गया रतिशेखर उस समय घर पर नहीं था। मन्दिर की अध्ययनशाला में पठन में लीन था। उसने सुना तो संकट–निवारण के लिए महाप्रभावक भक्ताम स्तोत्र के सातवें श्लोक (त्वत्संस्तवेन भवसन्तति सन्निबद्धं...) का पाठ ऋद्धि व मंत्र सहित करने लगा। ध्यानस्थ अवस्था में ही उसने देखा कि जिनशासन की अधिष्ठात्री देवी 'जृम्भ' वैताली विद्या की अनुचरी देवी के वक्षस्थल पर सवार है और उसे धिक्कार रही है कि तूने भगवान आदिनाथ के सम्यग्दृष्टि भक्त पर बिना कारण ही यह आफत लाने का दुःसाहस कैसे किया ? आँख खुलने पर रतिशेखर ने देखा कि धूल का भयंकर चक्रवात नगर से हटकर धूर्त धूलिया की कुटी पर मंडरा रहा है। कुटी में इतनी धूल कि सांस लेना भी दूभर। धूलिया ने जो कुआँ रतिशेखर के लिये खोदा था, उसमें वह स्वयं जा गिरा। अंततः धूर्त व मिथ्यात्वी धूलिया तथा उसके चेले सम्यक्त्वी रतिशेखर की शरण में आए और उससे क्षमायाचना की तथा मिथ्यात्वी आचरण को त्यागकर सम्यग्दृष्टि बनने के प्रति श्रद्धा व्यक्त की और जैन धर्म को अंगीकार किया। जैनधर्म में कहा गया है कि कोई जीव सम्यकत्व के बिना करोड़ों वर्षों तक उग्र तप भी करे तो भी वह बोधि लाभ प्राप्त नहीं कर सकता है। देह और आत्मा का भेद जानने वाला अज्ञानी मिथ्यादृष्टि यदि घोर तपचरण भी करे तो भी मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता। यदि तप किसी आशा को लेकर अथवा तन्त्र मन्त्र आदि के लिये किया जाता है तो वह तप केवल आडम्बर मात्र माना गया है।

भावार्थ

हे प्रभो ! जिस प्रकार जगत में व्याप्त भौरे के समान काला सघन अंधकार भी सूर्य की किरणों के द्वारा क्षणभर में विनष्ट हो जाता है उसी प्रकार प्राणियों के अनेक जन्मों के संचित पाप कर्म भी, आपके कीर्तन (भक्ति) से तत्काल नष्ट हो जाते हैं ।

MEANING

Oh God ! The cycle of birth and death rules us since beginning less time, in course of which attraction of happiness and hatred to agonies have accumulated heaps and heaps of karmas, but why should I be worried about them? I will loudly sing your prayers and merge myself with you. Then?

The mountains of sins will disappear and perish within moments under the impact of your prayers.

Yes! Sins do perish; perish within seconds and there is no surprise in that. The night slowly went on gathering the darkness. She eventually sunk the whole world into her pitch darkness; but the sun will rise in the morning and melt away the entire darkness within no time.

शब्दार्थ

त्वत् = आपके, संस्तवेन = स्तवन से, शरीर भाजाम् = शरीर धारी जीवों के, भव सन्तति = जन्म-जन्मान्तर के, सन्निबद्धम् = बंधे हुये, पापं = पाप, आक्रान्त-लोकम् = लोक में फैले हुये, अलि-नीलम् = भौरे के समान काला, सूर्याशु = सूर्य की किरणों से, भिन्नम् = छिन्न-भिन्न, शार्वरम् = रात्रि का, अन्धकारम् = अन्धकार, इव = के जैसे, क्षणात् = क्षण भर में, क्षयम् = विनाश को, उपैति = प्राप्त हो जाते हैं ।

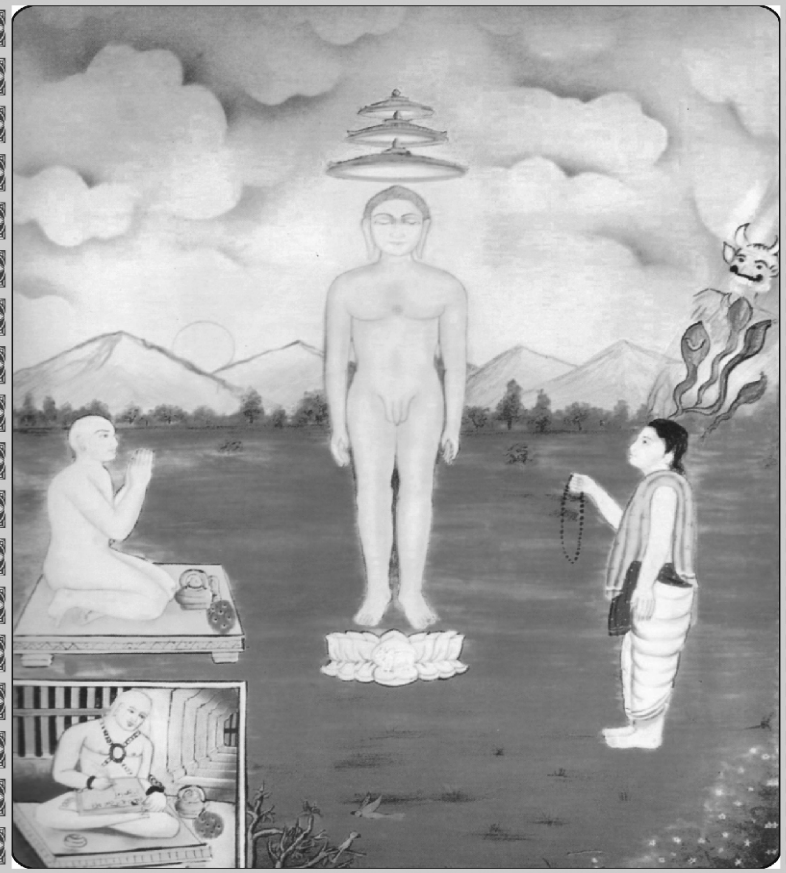

मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद,
मारभ्यते तनुधियाऽपि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु,
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः।।8।।

सर्वारिष्ट संहारक यंत्र–8

ऋद्धि — ॐ ॐीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो पादाणु सारिणं ÃÕ ÃÕ नमः स्वाहा

मन्त्र — ॐ ॐां ॐीं ॐू ॐः अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय ÃÕ ÃÕ नमः स्वाहा।
ॐ ॐीं लक्ष्मणरामचन्द्र देव्यै नमः स्वाहा।

विधि — अरिष्ट (अरीठा) के बीज की माला से 21 दिन तक प्रतिदिन 1000 बार ऋद्धि तथा मंत्र का जाप जपते हुए घृत मिश्रित गुग्गल की धूप क्षेपण

विधि की कैसी विडम्बना है कि व्यक्ति का नाम तो होता है 'नयनसुख', किन्तु होता है आँख से अन्धा। व्यक्ति का नाम तो शेरसिंह होता है, किन्तु स्वभाव से होता है बिल्कुल डरपोक व कायर। नाम तो धनपाल होता है किन्तु होता है जन्म से कंगाल। नाम कुछ भी रख लो, उससे कुछ बनता–बिगड़ता नहीं हैं बनता–बिगड़ता तो पूर्व जन्म के कर्मों के द्वारा बने भाग्य से हैं हां, अच्छा सा नाम व्यक्ति के प्रतिकूल भाग्य पर एक तीखा व्यंग्य अवश्य होता है। यह भी हो सकता है कि लोग अच्छा नाम रखकर अपने दुर्भाग्य को चुनौती देते हों, या इससे उन्हें आत्म–संतोष मिलता हो। कुछ भी हो, उन्हें आत्म–संतोष का सुख मिलेगा या आत्म वंचना का दुःख, यह तो उनके पूर्व जन्म के अशुभ कर्मों के क्षयोपशम होने या न होने पर, अथवा उनके पुरुषार्थ की सफलता या असफलता पर निर्भर करता हैं वैश्य धनपाल भी ऐसा ही भाग्य लेकर आया था। वह जैन था, वणिक् था, धर्मात्मा भी था, किन्तु भाग्य ने उसे जन्म से कंगाल ही बनाया था। वह केवल निर्धन ही नहीं था, अपितु निःसन्तान भी था। इस प्रकार उसकी स्थिति 'करेला और नीम चढ़ा' जैसी थी। यह उस समय की बात है, जबकि आज की तरह यह नहीं कहा जाता था कि गरीब लोग सन्तान की इच्छा न करें, उस समय तो गरीब भी सन्तान–प्राप्ति के लिए मिथ्या देवी–देवताओं व पीर–पैगम्बरों की दहलीज़ पर माथा रगड़ते फिरते थे। किन्तु आज की तो बात ही कुछ और है। आज तो स्थिति यह है कि जिनके यहाँ एक–एक लाल (पुत्र) के टोटे पड़े रहते हैं – उनके यहाँ लालों (रत्नों) की तिजोरियां भरी पड़ी रहती हैं, और जिनके यहाँ एक–एक दाने के लाले (टोटे) पड़े है, उनके यहां इन लालों, बालों, बच्चों की गिनती ही नहीं। सो वैश्य धनपाल भी अपने निर्धन व निःसन्तान होने की चिन्ता में सदा घुलता रहता था। धनपाल जैन था और धर्मात्मा भी, किन्तु था रूढ़िवादी, लकीर का फकीर धर्मात्मा। उसे भक्तामर स्तोत्र पूरा मौखिक रटा हुआ था। किन्तु न वह उसके श्लोकों का अर्थ जानता था और न उनके भावों को समझता था। एक प्रकार से वह भक्तामर स्तोत्र के केवल जड़ शब्दों का ही भक्त था। आखिर एक दिन उस के पूर्व–जन्म के अशुभ कर्मों के क्षयोपशम का क्षण भी आ ही पहुँचा। नगर में दो परोपकारी दिगम्बर मुनि श्री चन्द्रकीर्ति और श्री महाकीर्ति जी पधारे। धनपाल ने उनके दर्शन व वन्दना कर उनसे अपनी व्यथा व्यक्त की। दोनों मुनिराज ने कहा कि तुम भक्तामर स्तोत्र का पाठ उसका अर्थ व भाव समझ कर करो, तभी तुम्हारा अशुभकर्म क्षीण होगा। उन्होंने धनपाल को भक्तामर स्तोत्र के प्रारम्भ के कुछ श्लोकों का अर्थ, भाव, मंत्र व ऋद्धि का भी ज्ञान कराया। अब क्या था ? युगल मुनियों की अपूर्व अनुकम्पा से जब धनपाल ने भक्तामर स्तोत्र के श्लोकों के जड़ शब्दों में से अर्थ व भाव खोद–खोदकर निकाले तो उसे उनमें ज्ञान–ज्योति के दर्शन हुए, और आठवें श्लोक (मत्वेति नाथ !...) के प्रति तो उसकी श्रद्धा व भक्ति इतनी उमड़ पड़ी कि उसने इसका विधिपूर्वक शुद्धता के साथ प्रतिदिन पाठ करना शुरू कर दिया। सच्ची श्रद्धा, भक्ति तथा सच्चे भावों का तो सुपरिणाम होना ही था। एक दिन सिद्धासन में ध्यानस्थ धनपाल को 8 वें श्लोक के मन्त्र की अधिष्ठात्री देवी 'महिमा' ने दर्शन दिए और विनीत स्वर में बोली –''मैं इस श्लोक के शब्दों में वास करने वाली एक साकार शक्ति हूँ चूंकि तुमने इस पवित्र 8 वें श्लोक का निष्काम भाव से श्रद्धा के वशीभूत होकर पाठ किया है, इसलिये मुझे तुम्हारे पास आना पड़ा है। तुम्हारी दोनों चिन्ताओं को मैं जानती हूँ। अतः कहो वत्स! क्या चाहते हो ? मैं इस समय तुम्हारी केवल किसी एक चिन्ता का ही समूल नाश करूंगी।'' धनपाल असमंजस में पड़ गया। धन और सन्तान इन दोनों में से किस अभाव की पूर्ति के लिये वह प्रार्थना करे। मन ने कहा –'धनपाल, बिना पेट भरे तो तू धर्म साधना भी न कर सकेगा, फिर, सन्तान की आवश्यकता केवल वंश चलाने के लिये ही तो होती है, सो वह कार्य तो तेरा नाम ही पूरा कर देगा। जब धन न होने पर भी तू धनपाल था, अब धन हो जाने पर तथा उस धन का सदुपयोग परोपकार, सेवा, गरीबों की सहायता तथा धर्म कार्यों में करने से तो तू 'अमर धनपाल' हो जाएगा।' सो उसने धन ही मांगा। और आठवें श्लोक की सच्ची भक्ति के प्रभाव से केवल 'नाम का धनपाल' अब दाम से भी धनपाल हो गया। यह था सम्यग्दर्शन के मूल तत्त्व–श्रद्धा के चमत्कार का फल, जो इह लौकिक और पारलौकिक, दोनों ही प्रकार के लाभ प्रदान करता है। यह घटना इस बात को भी स्पष्ट करती है कि निष्काम भाव से की गयी भक्ति ही सदा प्रभावी होती है और सच्चा सुख प्रदान करती है। एक और शिक्षा, जो यह कथा देती है, यह है कि किसी भी स्तोत्र का अर्थ समझे बिना, उसके केवल जड़ शब्दों का वाचन करने से अल्प पुण्य तो मिल सकता है, किन्तु उससे जीवन को सम्यक् दिशा नहीं मिलती। पर यदि स्तोत्र के शब्दों के अर्थ तथा भाव समझकर भक्तिपूर्वक उसका पाठ किया जाए, तो उसमें प्रभु के गुणों की प्रभा झलकने लगती है। उससे मिथ्यात्व कषायें नष्ट होकर सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है, जो सच्चे व अनन्त सुख का मार्ग है।

भावार्थ

हे नाथ ! जैसे कमलिनी के पत्ते पर पड़ी हुई ओस की जलबूंदे मोती के समान चमकती हुई लोगों के चित्त को आल्हादित करती हैं । वैसे ही हे भगवान ! मुझ मंद बुद्धि के द्वारा रचा हुआ यह स्तवन (भक्ततामर स्तोत्र) आपके ही प्रभाव से सज्जन पुरुषों के चित्त को अनंदित करेगा ।

MEANING

Oh God ! I firmly believe that prayers to you will clear the sins of all my previous births and therefore I only seek your glorious impact.

My composition may be taken as a prose or poetry, a prayer or a hymn, or just anything, but, it wills be accepted and enjoyed by true devotees.

A drop of water is just a drop of water. But how nice it looks when it has fallen on the leaf of the Lotus, which looks better than the real pearl.

God ! There is no doubt that my prayer like that drop of water fallen on lotus will be a rare contribution for the Bhaktas (devotees)

शब्दार्थ

नाथ = हे स्वामिन् ! इति = ऐसा, मत्वा = मानकर, तनुधिया = अल्प बुद्धि वाले होने पर, अपि = भी, मया = मेरे द्वारा, इदं = यह, तव = तुम्हारा, संस्तवनम् = स्तवन, आरभ्यते = प्रारम्भ किया जाता है, तव = आपके, प्रभावात् = प्रभाव से, (यह स्तवन), सतां = सज्जनों के, चेतः = चित्त को, हरिष्यति = हरेगा, ननु = निश्चित ही, उदबिन्दुः = जल की बूंद, नलिनी = कमलिनी के, दलेषु = पत्तों पर, मुक्ताफल = मोती की, द्युतिम् = कान्ति को, उपैति = प्राप्त होती है ।

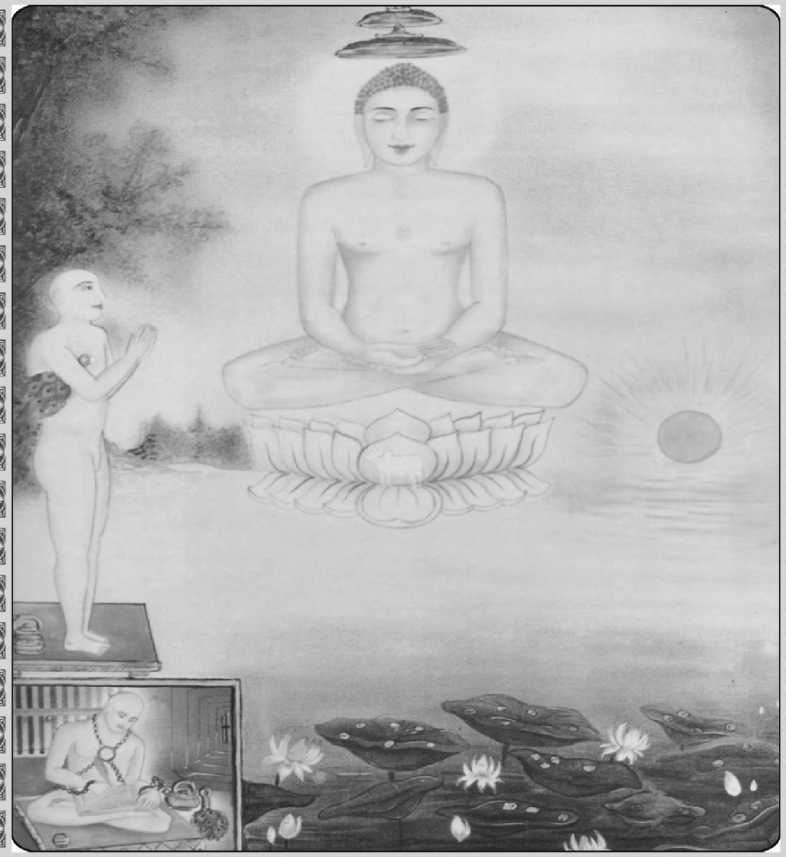

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं,
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्र किरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाÄज।।9।।

दस्युतस्कर चौरभय विवर्जक यंत्र–9

ऋद्धि — ॐ ॐीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो संभिण्णसोदराणं (Ãीं Ãीं नमः स्वाहा) ॐां ॐीं ॐू ॐः फट् स्वाहाः। ॐ ऋद्धये नमः।

मन्त्र — ॐ ॐीं श्रीं क्रौं इवीं रः रः हं हः नमः स्वाहा।
ॐ नमो भगवते जय यक्षाय ॐीं ॐू नमः स्वाहा।

विधि — शुद्ध पीले वस्त्रों को परिधान कर, पीले आसन पर, पूर्व दिशा की ओर मुख कर, सुखासन से बैठकर, दीप जलाकर दशांगी धूप खेते हुये, पूर्वान्ह के समय, सुवर्ण की माला से प्रतिदिन नौवाँ काव्य, ऋद्धि और मंत्र का प्रतिदिन 108 बार जाप जपना चाहिये।

जो नारी सौभाग्यवती होकर भी सन्ता का मुंह नहीं देख पाती, वह बंध्या या बांझ कहलाती है। गृहस्थ जीवन में आमोद–प्रमोद व भोग–विलास के सब साधन होते हुए भी यदि परिवार में कुलदीपक का जन्म न हो, तो उस नारी के बन्ध्या–जीवन के दुःखों की कोई सीमा नहीं होती। सही भी है, नन्हें से नौनिहाल बालक की जिन किलकारियों से घर का कोना–कोना गूंज उठता हो, जिसकी बालहट दुर्लभ वस्तुओं को भी सुलभ बनाने की क्षमता रखती हो, जिसके धूल भरे अंगों से भी सौन्दर्य झरता सा प्रतीत होता हो, जिसकी जरा सी मुस्कुराहट से आनंद का सागर लहरा पड़ता हो, और तो और, जिसके रोने मात्र से भी संगीत की स्वर–लहरी सी गूंजती लगती हो, जिसकी तोतली बोली साहित्य के विभिन्न रसों का आनन्द देती हो, जो घुटनों के बल चल–चलकर, मानों दिनभर घर के आंगन को नापता हो – ऐसा बालक यदि किसी घर–परिवार में नहीं है तो क्या उसका दाम्पत्य जीवन निष्फल और सूना–सूना सा नहीं लगता ? सौभाग्यवती होकर भी जो नारी बालक के मुख से 'माँ' शब्द सुनने को तरसती रहती हो, उस अभागिन के हृदय की पीड़ा को दूसरा कौन जान सकता है ? जो नौ माह उदर में रखने और उनके बाद की नरक जैसी असह्य प्रसव पीड़ा को हंसते–हंसते सहने को लालायित बनी रहती हो, वह पुत्र–विहीना नारी दिन–रात कैसे काटती होगी, उसे अन्तर्यामी के अतिरिक्त दूसरा कौन जान सकता है ? कामरूप (असम) राज्य की भद्रावती नगरी के राजा 'हेमब्रह्म' तथा उनकी धर्मात्मा पत्नी 'हेमश्री' के दाम्पत्य जीवन को शायद ऐसे ही किसी अशुभकर्म का ग्रहण लगा था, तभी तो कुदेवी व कुदेवताओं के द्वार पर भी वर्षों माथा रगड़ने के बावजूद आधी युवा–अवस्था बीतने पर भी उनका दाम्पत्य जीवन अभी भी सन्तानहीन ही था। रानी हेमश्री को सदा ही उदास व चिन्तित रहती देखकर एक दिवस राजा हेमब्रह्म उनको समझाने लगे – ''आर्ये ! मैं देखता हूं तुम पुत्र–प्राप्ति की कामना पूर्ण न होने के कारण बड़ी उदास और निराश रहती हो। निश्चित ही, यह हमारा कोई अशुभकर्म तो है, पर शुभकर्मोदय से यह स्थिति अवश्य बदलेगी। देखो, तुमने आठवें तीर्थंकर भ. चन्द्रप्रभु का जीवन–चरित्र तो पढ़ा ही है, उनकी माता को भी यौवन की ढलती आयु में ही पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई थी। उसका कारण भी कोई पूर्व–जन्म का अशुभ–कर्म ही रहा होगा, जो शुभकर्मोदय से दूर हुआ। अतः तुमको निराश व दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है।''.. और आखिरकार उनके पूर्व अशुभकर्म के क्षयोपशम का दिन आ ही पहुँचा, जबकि राजा हेमब्रह्म अपनी आज्ञाकारिणी पत्नी हेमश्री के साथ वन शोभा के मनोरम दृश्य देखने को निकले। वहां वन में एक शिलाखण्ड पर ध्यानस्थ वीतरागी दिगम्बर मुनिराज को देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए, उनके पास गये और वन्दन करके उनके चरणों के निकट बैठ गये। मुनिराज ने अपने मनःपर्यय ज्ञान द्वारा उन दोनों भव्य जीवों के मनोभावों को जानकर उनके कुछ निवेदन करने से पूर्व ही कहा – ''तुम भव्यजीव हो, जाओ, एक नवीन जैन मन्दिर का निर्माण कराकर उस पर स्वर्ण कलश चढ़ाओ और उसमें 24 तीर्थंकरों की मूर्तियां स्थापित करो। इसके अतिरिक्त सोने, चांदी या कांस्य थाली में महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र का नौवां श्लोक केशर से लिखों और उसे जल से धोकर श्रद्धा व प्रेमभावना से पी लिया करो, तुम्हारी मनोकामना अवश्य पूर्ण होगी।'' दिगम्बर जैन साधु समय की गति को पहचान कर विशेष परिस्थितियों में ही श्रावकों को उनकी मनोभावनाओं की पूर्ति एवं संकट–निवारण के उपाय बताया करते हैं। ताकि जिनधर्म पर उनकी श्रद्धा बनी रहे और वे मिथ्या कुदेवों को कुभक्ति में पड़कर अपने सच्चे वीतरागी धर्म से विचलित न हों। राजा और रानी ने ज्ञानी मुनिराज द्वारा बताई हुई विधि को श्रद्धापूर्वक स्वीकार किया और चरणों में वन्दना करके लौट आए। राजा–रानी ने मुनिश्री के मंदिर–निर्माण आदि के निर्देशों का श्रद्धापूर्वक अक्षरशः पालन किया। फिर बसन्त ऋतु में, जबकि प्रकृति अंगड़ाइयां लेती है, खिले कमलों पर भ्रमर मंडराते हैं तथा पक्षी युगल सरोवरों में कल्लोलें करते हैं, ऐसी ऋतु में बसंत पंचमी के दिवस रात्रि को रानी हेमश्री का दाम्पत्य जीवन फलीभूत हुआ और उसके नौ माह बाद उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। अब क्या था, मुनिराज के सम्यक् मार्गदर्शन और जैनधर्म के प्रति सम्यक् श्रद्धा से उनका अशुभकर्म टल गया था। राजमहल में शहनाइयाँ बजाई जा रही थीं और नगर भर में खुशी में दीप–उत्सव मनाया जा रहा था। नवजात शिशु का नाम रखा गया 'भुवनभूषण'। ऐसा दुःखी बंध्या जीवन पूर्व जन्म के अशुभकर्मोदय के कारण तो होता ही है, परन्तु उन अशुभ कर्मों का बन्ध प्राणी अज्ञानतावश ही कर बैठता है। उदाहरणार्थ अशिक्षित माताएँ पुत्र को कटु शब्द कहती हैं – 'तूने तो दुःखी कर दिया, तू मर क्यों न गया ? तेरे पैदा होने से तो मैं निःपूती ही भली थी।' ऐसी स्त्रियां आगमानुसार अगले भव के लिए बंध्या जीवन के कर्मबंध करती हैं। जो स्त्रियां दूसरों के बालक को देखकर ईर्ष्या की आग में जला करती हैं निश्चय ही वे भी इस नीच कर्म का बंध करती हैं।।

भावार्थ

हे विभो ! जिस तरह सूर्य का आगमन तो दूर किन्तु सूर्य की किरणें ही सरोवर के कमलों को विकसित कर देती हैं उसी तरह हे देव ! सम्पूर्ण दोषों से रहित आपका पवित्र स्तवन तो दूर रहा किन्तु आपके नाम की चर्चा मात्र से प्राणियों के पापों का समूल नाश हो जाता है ।

MEANING

God ! A perfect poem addressed to you and free from faults of prose and verse, words and literature, grammars and derivations, is no doubt full of power to eliminate Karmas.

Sweet and serene prayer in high esteem is one thing, but oh my Lord ! Even a small exchange or word about you repels most ably the sins of all beings.

Sun shines with thousands of his rays and wakes up the Universe. But leave him aside. Even a thin line of ray opens up silently sleeping petals of lotus within seconds.

शब्दार्थ

तव = तुम्हारा, अस्त-समस्त-दोषम् = सर्व दोषों से रहित, स्तवनं = स्तवन, दूरे = दूर, आस्ताम् = रहने दो, (किन्तु), त्वत् = आपकी, संकथा = उत्तम कथा, अपि = भी, जगताम् = जगत के प्राणियों के, दुरितानि = पापों को, हन्ति = नष्ट करती है, सहस्र किरणः = हजार किरण वाला सूर्य, दूरे = दूर, आस्तां = रहे, (किन्तु) प्रभा = उसकी प्रभा, एव = ही, पद्माकरेषु = सरोवरों में, जलजानि = कमलों को, विकास भाजि = विकसित, कुरुते = कर देती है ।

नात्यद्भुतं भुवनभूषणभूत नाथ।
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभीष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति।।10।।

उन्मत्त श्वान–विष–विनाशक यंत्र–10

ऋद्धि — ॐ ॐ अर्हं णमो सयं–बुद्धीणं ॐ ॐ नमः स्वाहा

मन्त्र — ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ श्रां श्रीं श्रूं श्रः सिद्ध–बुद्ध कृतार्थो भव–भव वषट् संपूर्ण स्वाहा।

विधि — पीले रंग के वस्त्र पहिन कर पीले रंग की माला से 7 या 10 दिन तक प्रतिदिन 108 बार दशवाँ काव्य ऋद्धि तथा मंत्र का आराधन करते हुए कुंदरू की धूप क्षेपक करना चाहिये।

जिन धर्म का भक्त भी जब कभी तीव्र अशुभ कर्मोदय के कारण सम्यक् मार्ग से भटक जाता है तो उस पर उसके अनुगामी संकट एक के बाद एक आते ही रहते हैं और उनका अन्त तभी होता है जब प्राणी धर्म के सच्चे मार्ग पर फिर लौट आता है। वाराणसी के श्रीदत्त सेठ के जीवन में भी कुछ ऐसा ही घटित हुआ। तीव्र अशुभ कर्मोदय के कारण उन का व्यापार चौपट हो गया तथा धन की भारी हानि हो गई। स्थिति यह हो गयी कि महलों में समस्त सुख–साधनों के बीच रहने वाले श्रीदत्त सेठ सड़कों पर आ बैठे और निर्धनता के पाश में जकड़ गये। श्रीदत्त जिनभक्त सम्यग्दृष्टि श्रावक थे। कठिन दिनों में भी उनकी सद्बुद्धि बनी रही। एक दिन एक दिगम्बर साधु नगर में आये। श्रीदत्त उनके दर्शनों को गए व आहार दिया। पश्चात् श्रीदत्त सेठ ने मुनिश्री से अपनी निर्धनता का जिक्र किया, मुनिश्री ने श्रीदत्त को महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र के 10 वें श्लोक (नात्यद्भुतं..) का शुद्ध उच्चारण, अर्थ, ऋद्धि व मंत्र की विधि आदि समझाई और कठिनाई के समय श्रद्धापूर्वक उसका पाठ करने का उपदेश दिया कभी–कभी शुभ और अशुभ कर्मों के उदय का ऐसा द्वंद्व छिड़ता है कि मनुष्य को कभी तो लगता है के मेरे शुभकर्म उदय में आ रहे हैं और कभी लगता है कि अशुभ कर्म मेरा पीछा ही नहीं छोड़ रहे हैं। यही स्थिति श्रीदत्त सेठ की भी थी, उसके अशुभ कर्मों का चक्र भी थमा नहीं था। एक दिन जब वह व्यापार करके परदेश से वापिस लौट रहा था तो कुछ ऐसा घटनाचक्र घटा कि वह एक ऐसे गहरे अंधकूप में जा गिरा, जहां से निकलना असंभव दिखाई देता था। श्रीदत्त को जब वहां से निकलने का कोई उपाय न सूझा तो अपना अन्त समय आया जान वह भगवद्भक्ति में लीन हो गया और भक्तामर स्तोत्र के उसी 10 वें श्लोक का ऋद्धि व मन्त्र सहित पाठ करने लगा आशा और निराशा के झूले में झूलते हुए भक्ति में कई दिन बीत गए। तभी एक दिन यकायक छम–छमा–छम की मुग्धकारी आवाज सुनकर चौंकते हुए श्रीदत्त ने आंखे खोली तो सामने दिव्य लक्ष्मी रूप देवी को देखकर खुशी और आश्चर्य में डूब गया। श्रीदत्त कुछ निवेदन करता, उससे पूर्व ही देवी बोली –''मैं जिनेन्द देव के प्रति पूर्ण श्रद्धालु 'रोहिणी' नामक देवी हूँ, मैं भक्तामर स्तोत्र के 10 वें श्लोक में भक्तिपाठ से प्रसन्न होकर तुम्हें संकट से उबारने तथा जिनेन्द्र भगवान के अहिंसक साम्यवाद (समतावाद) के सिद्धान्त को मूर्तरूप देकर तुम्हें निर्धन से पुनः लक्ष्मीपति बनाने आई हूं।'' आगे देवी ने श्रीदत्त से पूछा –''इस अंधकूप में गिरने का क्या कारण हैं ? क्या राह भटक गये थे ?'' श्रीदत्त ने कहा –''हां माते, मैं सम्यक्त्व की राह से भटककर लोभ में अटक गया था। लालच ने मेरे विवेक को नष्ट कर दिया था। मैं परदेस से व्यापार कर लौट रहा था कि रास्ते में जिनमंदिर दिखाई दिया, मैं दर्शनार्थ चला तो पास में एक जटा धारी रागी साधु अपनी तुम्बी से रस निकालकर लोगों को बांट रहा था। उस का प्रभाव ऐसा था कि जिस बर्तन में वह रस लिया जाता था, वह बर्तन स्वर्ण का हो जाता था। जनता बर्तन लेकर उमड़ पड़ रही थी। मैं भी मन्दिर जाना भूल कर रस लेने को कतार में लग गया, परन्तु मेरी बारी आते–आते रस समाप्त हो गया। मुझे देखकर उस जोगी साधु ने कहा–दुःखी मत होओ। तुम्हें रस चाहिये तो आओ मेरे साथ चलो। मैं जोगी के पीछे–पीछे इस बियावान जंगल में आ गया। उसने मुझे एक चौकी पर बैठाकर रस्सी के द्वारा इस अंधेरे कुएँ में एक खाली तुम्बी देकर उतार दिया। मैंने उसके निर्देशानुसार तुम्बी रस से भरी और उसने मुझे ऊपर खींच लिया। इस प्रकार उसने अनेक तुंबियां भरवाई भरी हुई अन्तिम तुम्बी लेते ही उसने मेरी चौकी को डोरी दुर्भावनावश पैनी छुरी से काट दी। शायद उसे भय था कि मैं इस चमत्कारी कुएँ का पता अन्य लोगों को बता दूंगा, तो उसके रहस्य का चमत्कार का भेद खुल जाएगा। जबकि स्वयं अकेला कुएँ में घुसकर वह रस ला नहीं सकता था। बस यही मेरी विपत्ति की दुःखभरी कहानी हैं देवी ! आप कृपया मेरा उद्धार कीजिए। दयालु देवी ने उसको अंधकूप से निकाला और उसकी निर्धनता दूर करने के लिये उसे अपार सम्पदा प्रदान की और बोली – 'लोभ–लालच के वश होकर आज सारा संसार ही अंधकूप में पड़ा है, तुम उसके उद्धार में सहायक हो सकते हो, तुम्हें एक कार्य करना होगा।' जिज्ञासा व उत्सुकतावश श्रीदत्त श्रेष्ठि ने पूछा –'वह क्या देवी ?' देवी बोली –'वह यह कि महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र के जिस दसवें श्लोक एवं उसके ऋद्धि व मंत्र आदि की भक्तिपूर्ण आराधना से तुमने अपने संकट को दूर किया है, उसे जनसाधारण के सामने तुम्हें प्रकट करना होगा ताकि लोग मिथ्यात्व के कुप्रभाव से बच सके। साथ ही, जिन संयमधारी वीतरागी दिगम्बर साधु महाराज की सत्कृपा से तुमने यह विद्या पाई है, उन्हें सदा स्मरण रखना।' इतना कहकर देवी अन्तर्ध्यान हो गयी। सेठ जी अंधकूप से चलकर ज्यों ही घर पहुंचे, धन–धान्य से समृद्ध अपनी नव अट्टालिका को देखकर वे ही नहीं, सभी जनसाधारण भी चकित रह गये। नगर भर में जैन–धर्म और सम्यक्त्व की महान जय–जयकार हुई और सच्चे धर्म के प्रचार से यह तथ्य जन–जन के मन में उतर गया। अतः महानुभावों आत्मा के अस्तित्व व ज्ञान एवं शान्ति को जानने के विभिन्न तरीकों को धर्म का लक्षण कहा है। जिसके द्वारा आत्मा के स्वरूप को पहचाना जा सके। सर्वप्रथम सम्यग दर्शन, श्रद्धा उत्पन्न करनी होगी। तत्काल ज्ञान व चरित्र स्वयमेव ही आ जाएगा। लेकिन सर्वप्रथम तो सर्वज्ञदेव की कही वाणी को श्रद्धापूर्वक विश्वास के साथ सही मानना दर्शन गुण है इसके बाद अशुभकर्मों का क्षय एकाग्र मन से किया जाता है।

भावार्थ

हे भुवन भूषण ! हे जगन्नाथ ! वास्तविक सत्य, शील आदि अनके गुणों के द्वारा तन्मयता पूर्वक आपकी भक्ति करने वाला भक्त आपके समान ही प्रभुता को, गुणों को प्राप्त कर लेता है । इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है । क्यों कि वैभव संपन्न श्रीमन्त सेवा करने वाले नौकर को यदि अपने ही समान समृद्धिशाली बना लेवें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

MEANING

God ! You take care of all the beings for their spiritual upliftment. You are the ornament and the whole world shines because of your light of knowledge. He who sings the songs of your virtues, if becomes like you, what is surprising in it ? A noble master (Boss) bestows his wealth on his servants to bring them on equal status. Oh Lord! Thou art the Master of Triloka. The people of the world will become egoless by singing your virtues. I will also throw away the bundles of my sins… to become Veetaraga, exactly like you.

शब्दार्थ

भुवन-भूषण = हे ! तीन जगत के भूषण, भूतनाथ = हे ! प्राणियों के स्वामी, भूतैः = वास्तविक, गुणैः = गुणों के द्वारा, भवन्तम् = आपकी, अभिष्टुवन्तः = स्तुति करने वाले पुरुष, भुवि = पृथ्वी पर, भक्तः = आपके, तुल्य = समान, भवन्ति = हो जाते हैं, इति = यह बात, अतिअद्भुतम् = अति आश्चर्यकारक, न = नहीं है । वा = अथवा, ननु = निश्चित ही, तेन = उससे, किम् = क्या (लाभ हैं), यः = जो, इह = यहाँ, आश्रितम् = अपने आश्रित जन को, भूत्या = विभूति से, आत्मसमम् = अपने समान, न = नहीं, करोति = करता है ।

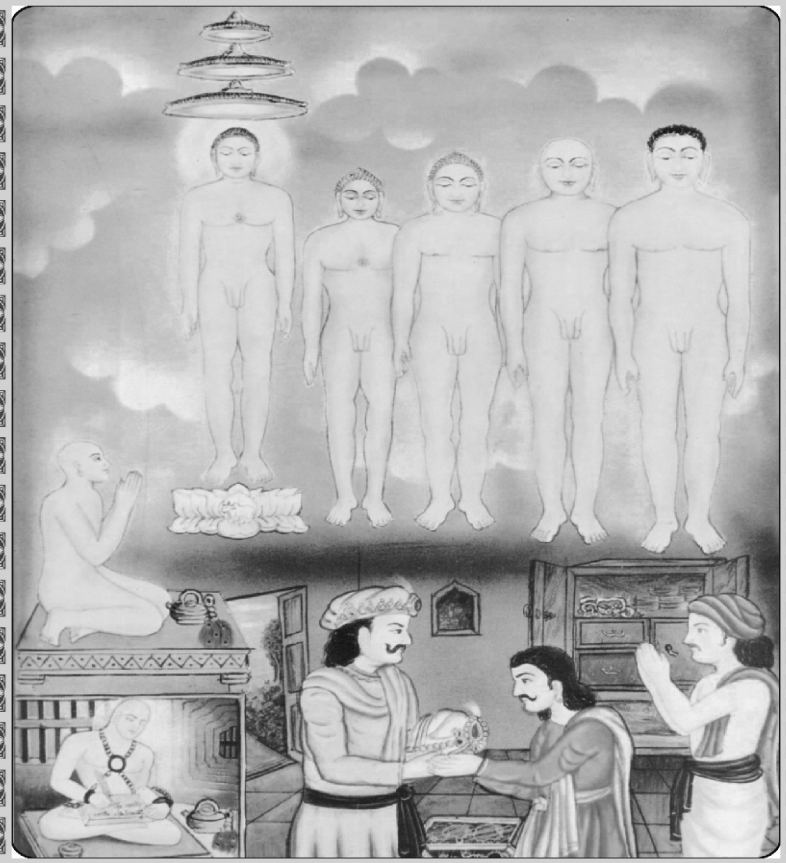

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिन्धोः
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ।।11।।

इष्टव्यक्ति आमन्त्रक यंत्र–11

ऋद्धि — ॐ ॐ अर्हं णमो पत्तेय–बुद्धीणं ॐ ॐ नमः स्वाहा ।

मन्त्र — ॐ ॐ श्रीं क्लीं श्राँ श्रीं कुमति–निवारिण्यै महामायायै नमः स्वाहा ।

विधि — पवित्र होकर सफेद वस्त्र पहिनकर मंदिर में शुद्ध भावों से पूजा करें। पश्चात् वहीं एकान्त भाग में बैठकर या खड़े होकर प्रसन्न चित्त से सफेद माला द्वारा या लाल रंग की माला से 21 दिन तक प्रतिदिन ग्यारहवाँ काव्य, ऋद्धि तथा मंत्र का 108 बार आराधन करते हुए कुंदरू की धूप क्षेपण करते रहना चाहिये।

सब जानते है कि पानी से प्यास बुझती है। किन्तु कितने यह जानते हैं कि पानी से प्यास बढ़ती भी है। इस कथन में विरोधाभास भले लगता हो, परन्तु यह सत्य है। सत्य इसलिये है कि मीठे पानी से प्यास बुझती है तो लवणयुक्त या नमकीन अथवा खारे पानी से प्यास बढ़ती है। दैनिक भोजन में भी यदि कभी हम लवण या नमक की मात्रा अधिक ले लेते हैं, तो हमें बार–बार प्यास लगती है। लवण का यह विज्ञान सम्मत गुण है। संस्कृत में जल को अमृत भी कहा गया है, परन्तु निश्चय ही जल का यह नाम मधुर जल के लिये है, खारे जल के लिये नहीं। आधुनिकतम विज्ञान ने तो खारे जल को विष जैसा सिद्ध करते हुए कहा है कि लवण (नमक) ही एक ऐसा पदार्थ है जिसके कारण सर्प का विष हम पर असर करता है। यदि बारह वर्ष तक हम लवण का प्रयोग न करें तो सर्प के विष का हम पर जरा भी असर नहीं होगा। इसके विपरीत हमें काटकर सर्प स्वयं मर सकता हैं। यही कारण है कि प्रकृति ने हमें पीने के लिये मधुर जल दिया है और अन्य उपयोगों के लिये पृथ्वी के लगभग 75 प्रतिशत भाग पर समुद्रों का खारा जल ही भर दिया है। यही नहीं धरती के अन्दर से भी कभी–कभी खारे जल के Òोत निकल पड़ते हैं। वैज्ञानिक भले ही समुद्र के खारे जल को मीठा बनाने के अपने प्रयासों में अभी सफल न हुए हों, किन्तु पुरातन पुराण बताते हैं कि दक्षिण भारत में कावेरी नदी के तट पर बसी रत्नावतीपुरी नगरी के युवराज तुरंग कुमार जैसे सम्यग्दृष्टि धर्मपुरुष ने मन्त्रों के द्वारा खारी बावड़ी के जल को मीठा बनाकर जनता का महान् उपकार किया था। घटनाक्रम कुछ इस प्रकार घटित हुआ कि रत्नावतीपुरी के राजा रूद्रसेन ने युवराज तुरंग कुमार के क्रीड़ा व मनोरंजन हेतू एक मनोरम उद्यान बनवाया। युवराज तुरंग कुमार की महाप्रभावी भक्तामर स्तोत्र के 11 वें श्लोक पर अटूट एवं दृढ़ श्रद्धा थी, और वह प्रतिदिन इसका पाठ किया करता था। युवराज ने उद्यान के बीच में नगर की जनता को मीठा जल उपलब्ध कराने के लिए एक विशाल जलबावड़ी (सरोवर) बनाने का निश्चय किया। धरती में खुदाई करके विशाल बावड़ी बनवाई गई। उसमें धरती के अन्दर से जलÒोत भी निकल आये और पानी भी भर गया। किन्तु पानी को जब चखा गया तो वह समुद्र के जल के समान खारा निकला। राजकुमार तुरंग कुमार को इससे बड़ी निराशा हुई और वह बड़े चिन्तित से रहने लगे। राजकुमार की चिन्ताओं को देख राजा रूद्रसेन ने उस बावड़ी के खारे जल को मधुर बनाने के लिये औषधि, मणि, मन्त्र, तन्त्र आदि अनेक प्रयोग किये, पर सफलता न मिली। अन्ततः राजा रूद्रसेन एक दिन निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि चन्द्रकीर्ति जी महाराज के दर्शन करने गये और धर्मतत्त्व सम्बन्धी प्रश्नों के समाधान के बाद उन्होंने मुनिराज से बावड़ी के खारे जल को मधुर बनाने का उपाय पूछा। राजा की चिन्ता को दूर करने के लिये मुनिश्री ने कहा –''पांच स्वर्ण, रजत अथवा कलई के कलशों में प्रासुक जल भरकर श्री जिनेन्द्र भगवान का वृहद् अभिषेक करिये। इसके बाद उस खाले जल का उपयोग कर शुद्ध पवित्र भोजन बनाकर किन्हीं दिगम्बर साधु को शुद्ध भावों से निरन्तराय आहार कराइये। परन्तु ध्यान रहे, जिसने बावड़ी खुदवाई हो, वही जल भरकर लाये और जल भरते समय महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र के 11वें श्लोक का ऋद्धि–मंत्र सहित भक्ति के साथ पाठ करता रहे।'' दो दिन पश्चात ही युवराज तुरंग कुमार ने उपर्युक्त विधि से सभी क्रियायें सम्पन्न करते हुए एक परम दिगम्बर मुनिराज को निरन्तराय आहार क्रिया पूर्ण किया। वे आहार दे ही रहे थे कि इतने में उद्यान के रक्षक ने आकर यह खुशखबरी सुनाई कि राजन ! बावड़ी का खारा जल अभी–अभी चमत्कारिक ढंग से मीठा हो गया है और बावड़ी के चारों ओर पनघट पर मीठा पानी घड़ों में भरकर ले जाने वालों का जमघट लगा है। बावड़ी का खारा जल मीठा होने के समाचार को सुनते ही युवराज तुरंगकुमार का हृदय भी प्रसन्नता तथा मधुरता से भर गया। उन्हें लगा कि मानों आज उन्होंने भक्तामर के प्रभाव से पथिकों व नगरवासियों के लिए क्षीर सागर के मधुर जल का द्वार खोल दिया हो। नगर में जनता खुशी से नाच उठी और उसने जैनधर्म की जय–जयकार से आकाश गुँजा दिया। इस प्रकार मीठे जल को यदि अमृत कहा जा सकता है, तो खारे जल को विष कहना भी असंगत नहीं है। आज मनुष्य के लिये विष यदि चिन्ता का विषय है तो खारा जल भी कम चिन्ता का विषय नहीं है। चिन्ता इसलिये भी, क्योंकि नदियों के मीठे जल को मनुष्य ने अपनी औद्योगिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिये प्रदूषित कर दिया है और अब समुद्र के विशाल खारे जल को मीठा पीने योग्य बनाने के प्रयासों में वह जुटा है। जीवन को सफल बनाने के लिये जो सिद्धान्त आज विज्ञान बता रहा है, वह सभी जैन दर्शन के आचार्यों ने पूर्व में ही बताए हैं।।

भावार्थ

हे भुवन भूषण ! हे जगन्नाथ ! वास्तविक सत्य, शील आदि अनके गुणों के द्वारा तन्मयता पूर्वक आपकी भक्ति करने वाला भक्त आपके समान ही प्रभुता को, गुणों को प्राप्त कर लेता है । इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है । क्यों कि वैभव संपन्न श्रीमन्त सेवा करने वाले नौकर को यदि अपने ही समान समृद्धिशाली बना लेवें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

MEANING

Oh God ! I saw you and I was lost in you. My eyes have stopped twinkling because of your majestic appearance! You are so magnanimous, that now all the fragrance and beauty of worldly objects or tantalizing deities cannot drag my attention.

God! My heart and soul cannot see any other object. It looks for you and you and you only. N Bound to be; who will prefer to drink salty and ugly waters of the sea when pure and cool milk from the Kshirasagar is ready to quench our thirst!

God, nothing is sweeter and soothing than you. For me, the entire world is sour.

शब्दार्थ

अनिमेष = बिना पलक झपकाये, विलोकनीयम् = देखने योग्य, भवन्तम् = आपको, दृष्ट्वा = देखकर, जनस्य = मनुष्य के, चक्षुः = नेत्र, अन्यत्र = और कहीं पर, तोषम् = सन्तोषको, न उपयाति = नहीं पाते है । शशि करद्युतिः = चन्द्रमा की किरणों के समान कांति वाले, दुग्ध-सिन्धोः = क्षीरसागर के, पयः = जल को, पीत्वा = पीकर, कः = कौन मनुष्य, जल निधेः = लवण समुद्र के, क्षारम् = खारे, जलम् = पानी को, असितुम् = चखने के लिये, इच्छेत् = इच्छा करेगा ।

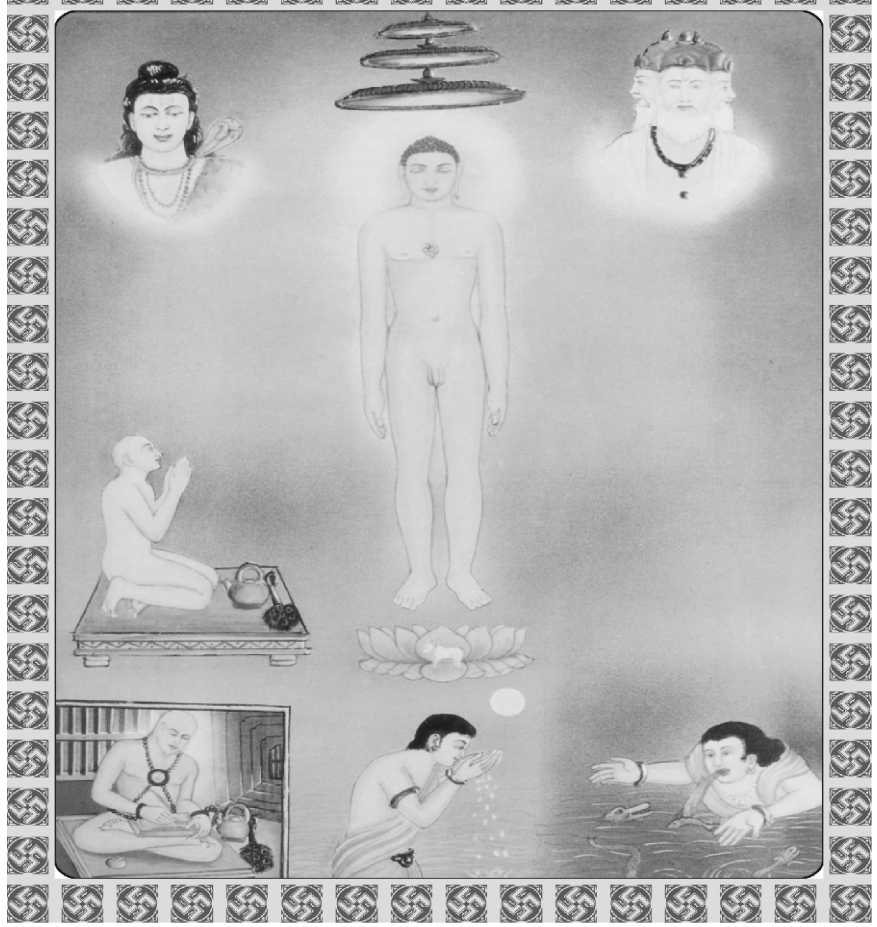

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ।।12।।

मदोन्मत्त हस्तिमद–मारक यंत्र–12

ऋद्धि — ॐ ॐीं अर्हं णमो बोहि–बुद्धीणं Ãीं Ãीं नमः स्वाहा

मन्त्र — ॐ आं आं अं अः सर्वराजा–प्रजामोहिनी सर्वजनवश्यं कुरु कुरु स्वाहा ।
ॐ नमो भगवते अतुलबलपराक्रमाय आदीश्वर यक्षाधिष्ठाय ॐां ॐीं नमः।
ॐ ॐीं श्रीं क्लीं निजधर्मचिंताय Ãीं क्रौं रं ॐीं नमः।

विधि — पवित्र होकर लाल रंग के वस्त्र पहिनकर लाल रंग की माला द्वारा 42 दिन तक प्रतिदिन 1000 बार ऋद्धि तथा मंत्र का आराधन करते हुए दशांग धूप खेना चाहिये ।

किसी विषय अथवा शास्त्र को चाहे कितनी ही अधिक बार अथवा अधिक मात्रा में पढ़ लिया जाये, परंतु उसका महत्व तभी है, जबकि उसका मनन करके उस के सारभूत तत्त्व को, भले ही आंशिक रूप से ही, समझा और अपनाया जाये। मनन द्वारा तत्त्व की गइराई में उतरे बिना पठन–पाठन की कोई सार्थकता नहीं है। मनन क्या है ? सम्यक्त्व क्या है ? आत्मा–शरीर, जड़–चेतन, सत्य–असत्य, रागी–वीतरागी जैसी मिश्रित पर्यायों में से हंस के नीर–क्षीर विवेक के समान भेद–विज्ञान द्वारा सारभूत तत्त्व को ग्रहण अथवा आत्मसात् कर लेना ही मनन है, इसी मनन को आत्मदर्शन भी कहा जा सकता है और सम्यक्त्व भी। वस्तुतः सम्यक्त्व किसी भी व्यक्ति या धर्म की बपौती नहीं है, यह तो मनन से उत्पन्न होता है। उदाहरणार्थ शास्त्र के तत्त्व को ग्रहण करने अथवा मनन करने की प्रकृति वाला एक गृहस्थ घर में रहते हुए भी शास्त्र के तत्त्व को ग्रहण कर सकता है और मनन अथवा ग्रहण न करने की आदत वाला व एकांत वन में रहने वाला योगी भी उस तत्त्व को ग्रहण करने में असमर्थ ही रहता है। यही नहीं, पोथियां घोट–घोट कर पी जाने वाला पंडित भी हो सकता है कि शास्त्र के तत्त्व को ग्रहण न कर सके, किन्तु दूसरी ओर निरामूर्ख कहा जाने वाला व्यक्ति भी हो सकता है कि शास्त्र के एक ही वाक्य में दृढ़ श्रद्धा रखकर उसकी यथार्थता तक पहुंच जाए और उसे जीवन में उतार ले। यही तो 'सम्यक्त्व' है। दृढ़ श्रद्धान व सम्यक्त्व की एक सत्य घटना है, जिसका सम्बन्ध भक्तामर स्तोत्र के बारहवें श्लोक 'यैःशान्तराग...' के पटन व दृढ़ श्रद्धान से है। भारत के मध्य प्रान्त (वर्तमान मध्य प्रदेश) की अहिल्यापुरी नगरी में कुमारपाल राजा राज्य करते थे। उनके मंत्री का नाम विलासचंद्र था। मंत्री का एक पुत्र था महीचन्द्र। महीचंद्र की घनिष्ठ मित्रता एक वैश्य पुत्र से थी। दोनों ने एक साथ एक दिगम्बर मुनिराज के पास महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र के 12 वें श्लोक का ऋद्धि व मंत्र की साधना विधि के साथ पठन किया। हुआ यह कि वणिक पुत्र ने तो केवल पढ़ने के लिये ही पढ़ा अतः उसके हाथ में तो श्लोक का केवल रटना मात्र ही आया। परंतु मंत्रीपुत्र ने उस श्लोक को पढ़ा, रटा, उसके ऋद्धि व साधना मन्त्र विधि को समझा, मनन किया और दृढ़ श्रद्धा के साथ उसे आत्मसात् किया। वह प्रतिदिन इसी दृढ़ श्रद्धान व सम्यक्त्व की भावना के साथ उसका पाठ करता। फलस्वरूप एक दिन जैन शासन की भक्त मोहिनी देवी के द्वारा उसे कामधेनु गाय की प्राप्ति हुई। उस चमत्कारी गाय के दूध को जहां भी छिड़का जाता, वहीं स्वर्ण का ढेर बन जाता अथवा अन्य कोई चमत्कार हो जाता। धर्मप्रभावना की दृष्टि से महीचन्द्र ने वही दूध अपने घर के चौके में डाल दिया, तो वहां भांति–भांति के पकवान तैयार हो गये। वहां नगर के हजारों स्त्री–पुरुषों को भोजन कराया गया, पर भण्डार भरपूर ही रहा। तात्पर्य यह है आत्मदर्शन करने वाले उस दृढ़ श्रद्धानी व सम्यग्दृष्टि के चारों ओर चमत्कार और ऋद्धि–सिद्धियां चक्कर लगाने लगीं। कन्तु उसकी दृष्टि तो मोक्षपथ पर लगी थी। सम्यक्त्व की कुछ महिमा ही ऐसी है। स्पष्ट है कि पोथियों के केवल पढ़ने मात्र से सिद्धि नहीं होती। अपितु उन शब्दों को आत्मसात करने से तथा दृढ़ श्रद्धा के साथ उन्हें अपनाने से सिद्धियां प्राप्त होती हैं। एक तिलकधारी पंडित थे, उच्चकोटि के वक्ता। उनकी वाणी के जादू से श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते, राहगीर भी चलना भूलकर उनका प्रवचन सुनने में लीन हो जाते। पंडित जी कथा के साथ–साथ बड़े तत्त्व की बातें कहते थे, परन्तु सवाल यह है कि बार–बार कहे जाने वाले उस तत्त्व के रहस्य तक क्या कभी वे स्वयं भी पहुंचे थे ? उनके प्रवचन का सार था कि 'राम भजे सो भव पार होवे।' एक कृषक की पतिव्रता पत्नी अपने पति को भोजन देने उस मार्ग से जा रही थी तो उसके कानों में पंडितजी के वचन 'राम भजे..' पड़ गये। केवल पड़ ही नहीं गये रास्ते भर वे उसे मानस में गूंजते भी रहें उसे पंडित जी और इन शब्दों पर अटूट श्रद्धा हो गई। वह उल्टे पांव लौटी और पंडित जी के पास पहुंचकर विनयपूर्वक उनसे रात्रि–भोजन के लिये न्यौता दिया तथा अपना पता बताकर घर लौट चली। इसी बीच जोरों की बारिश हुई और रास्ते की बरसाती नदी में बाढ़ आ गयी। नदी को देखकर वह ठिठकी परन्तु पंडित जी के कथन 'राम–भजे..' पर उसे अटूट श्रद्धा थी अतः सोचा जब राम भजने से भवसागर पार हो जाते हैं तो क्या मैं इस छोटी सी नदी को पार नहीं कर सकती ? वह तो इन शब्दों परदृढ़ श्रद्धानी थी, आव देखा न ताव, नदी में उतर पड़ी और बिना किसी बाधा नदी पार करके घर पहुंच गई और पंडित जी के लिये भोजन बनाकर उनके आने का इन्तजार करने लगी किंतु घंटों बीत गये, रात बीत गई, सवेरा हो गया, पर पंडित जी न आये। जब दिन के 12 बजे तब पंडितजी पधारे। उन्हें देखकर कृषकपत्नि बोली –'पंडित जी मैं कबसे आपकी बाट देख रही हूँ देखिये, भोजन भी ठंडा हो गया है।' पंडित जी बोले –'मूर्खे, तुम्हें नहीं मालूम, नदी कितनी चढ़ी हुई थी ? फिर भला मैं कैसे आता ? जब नदी का जल उतरा तब मैं नाव में बैठकर यहां आ सका हूँ।'' पर पंडित जी, मैं तो उसी समय आ गई थी। आपने ही तो कहा था कि 'जो राम भजे सो भवसागर तर जावे', फिर बेचारी यह छोटी सी नदिया क्या ? उस में दृढ़ श्रद्धान के साक्षात् दर्शन कर पंडित जी की भीतरी आंखे खुल गईं।

भावार्थ

हे त्रैलोक्य शिरोमणि भगवान ! जिन राग रहित परमाणुओं से आपके परमौदारिक सुंदर शरीर की रचना की गई है, वे शुभ परमाणु संसार में निश्चित रुप से उतने ही थे। क्योंकि इस भूमण्डल पर वे सुन्दर परमाणु इससे अधिक होते तो निश्चित ही आपसे अधिक सुन्दर रुप भी मुझे दिखाई देता। पर आपके समान सुन्दर रुप मुझे इस भूमण्डल पर दिखाई नहीं देता। अतः वे परमाणु उतने ही थे।

MEANING

Oh Tilak (auspicious mark) on the forehead of Triloka ! I roamed around the world and saw the king of kings, king of Devas and also the masters of sages the Ganadharas… but no one appeared as glorious as you. God, there is a crystal clear reason for this. The holy atoms which subside all the worldly desires have already been utilized in formation of your physical self frame. And hence there are no such atoms left from which a gorgeous personality like yours can be formed.

Obviously, the atoms left behind are not at all capable of creating a majestic personality like your physical frame.

Billions of offerings to your gorgeous and majestic personality.

शब्दार्थ

त्रिभुवनैक = हे तीनों लोकों में एक अद्वितीय, ललामभूत=सर्वश्रेष्ठ सौंदर्य के धारक भगवान ! यैः = जिन, शान्तराय = राग रहित, रुचिभिः=रुचिकर, परमाणुभिः = परमाणुओं से, त्वम् = तुम, निर्मापितः = बनाये गये हो, ते=वे, अणवः = परमाणु, अपि = भी, खलु = निश्चय से, तावन्त = उतने, एव = ही हैं, यत्=क्योंकि, पृथिव्यां = पृथ्वी पर, यत्ते समानम्=आपके समान, अपरं=दूसरा, रुपं=रुप, नहि = नहीं, अस्ति= है।

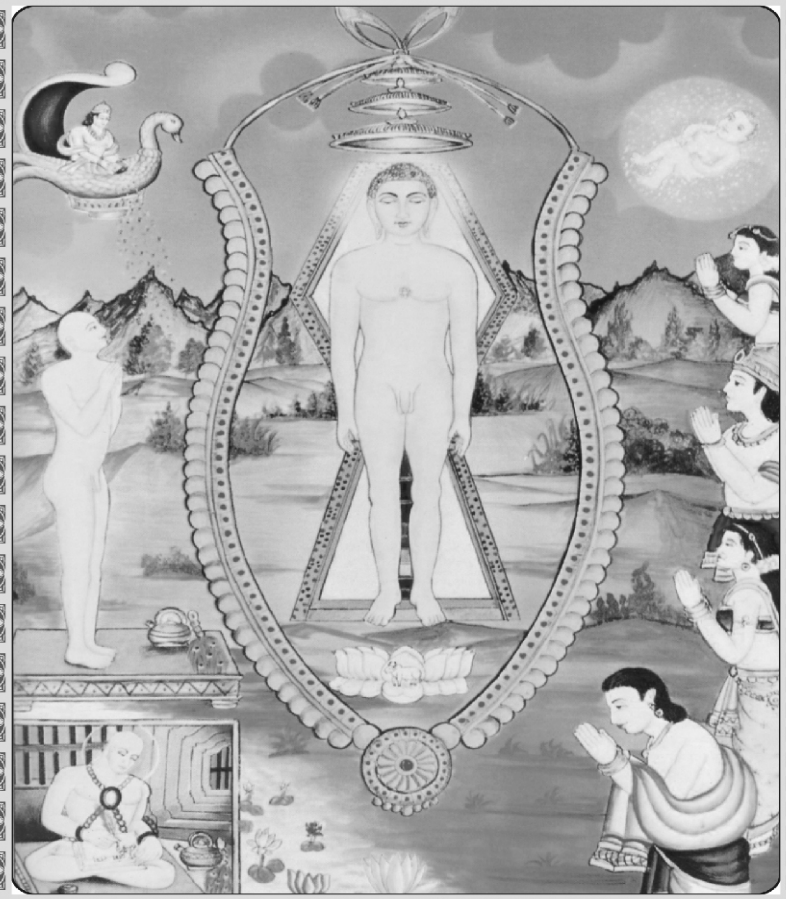

वक्त्रं क्वते सुरनरोरगनेत्रहारि
निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम्।
बिम्बं कलंकमलिनं क्व निशाकरस्य
यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ।।13।।

विविध भय निवारक यंत्र–13

ऋद्धि — ॐ ॐीं अर्हं णमो ऋजुमदीणं ॐीं ॐीं नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ ॐीं श्रीं हं सः ॐीं ॐीं ॐीं द्रां द्रीं द्रौं द्रः मोहिनी सर्व वश्यं कुरु कुरु स्वाहा।
ॐ भा ना अष्टसिद्धि क्रौं ॐीं ह्म्लव्यूँ युक्ताय नमः।
ॐ नमो भगवते सौभाग्य रूपाय ॐीं नमः।

विधि — पवित्र होकर पीले वस्त्र पहिनकर पीली माला द्वारा 7 दिन तक प्रतिदिन 1000 बार ऋद्धि तथा मंत्र का स्मरण करते हुए कुंदरू की धूप क्षेपण करें। दिन में एक बार भोजन व रात में पृथ्वी पर शयन करना चाहिये।

चर्चा मध्य युग की है। सम्राट कर्ण अपने राजसी वैभव को चारों ओर बिखेरते हुए राजसिंहासन पर विराजमान थे। अन्य दिनों की अपेक्षा आज राजदरबार खचाखच भरा हुआ था। कारण कि आज राजदरबार में सर्वधर्म सम्मेलन का विशाल आयोजन किया गया था। देश–देशान्तरों से पधारे हुए विद्वान, ज्ञानी, योगी, पंडित, कवि और कलाकार आदि सभी वहाँ उपस्थित थें। सर्वधर्म सम्मेलन में सभी को अपने धर्म के बारे में बोलने की तथा उसकी महत्ता सिद्ध करने की पूरी स्वतन्त्रता थी। मंच पर विराजमान विद्वान व ज्ञानियों को देखकर लगता था, मानों विभिन्न धर्मों से सम्बन्धित तर्क, प्रभाव व श्रद्धा की चुनौतियां परस्पर टकराने को तैयार थी। यह गाथा उस काल की है जो कि सांस्कृतिक व धार्मिक होते हुए भी सम्प्रदायवाद की गिरफ्त में फंसा हुआ था। साम्प्रदायिकता तो देश में आज भी है और इसी के कारण ही हमारे देश को भारी क्षति भी उठानी पड़ी है। सच पूछिये, तो आज की साम्प्रदायिकता अंधश्रद्धा पर टिकी है। मध्ययुग की सांप्रदायिक स्पर्द्धा में लोगों ने चमत्कार व भक्ति के नित नये–नये प्रयोग करके सच्चे धर्म व पाखण्ड के बीच के अन्तर को 'दूध का दूध पानी का पानी कर दिया था तथा आध्यात्मिकता की नींव को मजबूत बनाया था। हां, तो राजदरबार में विभिन्न धर्मों के विद्वानों व ज्ञानियों ने अपने–अपने धर्म की प्रशंसा के लम्बे पुल बांधे। कन्तु सम्राट कर्ण उससे कतई भी प्रभावित नहीं हुए और सम्पूर्ण राजदरबार में निराशा व हताशा जैसा वातावरण उत्पन्न हो गया। तभी बीच में से एक अपरिचित सा व्यक्ति उठ खड़ा हुआ और भरी सभा में गरज कर बोला मैं ब्रह्मा विष्णु–महेश को साक्षात् इस भूतल पर उतार सकता हूं, गणेश, बुद्ध, कार्तिकेय आदि देवताओं के साक्षात् दर्शन करा सकता हूँ।'' उपस्थित दर्शकगण उसकी ओर आंखे फाड़–फाड़कर देखने लगे। वास्तव में वह एक कुशल कलाकार था। मध्य युग में बहुरूपिये धर्म क्षेत्र में भी अपनी कला दिखाते तथा वैदिक व पौराणिक देवी–देवताओं का भेष बनाकर जनता को आकर्षित व प्रभावित करते थे। वे यह नहीं मानते थे कि ऐसा करने से देवी–देवताओं की प्रतिष्ठा घटती है तथा सांस्कृतिक परम्परा की हानि होती है। और जब उनकी प्रतिष्ठा घटती है तो उनके प्रति सच्ची श्रद्धा भी कम हो जाती है और वे बाजारू होकर गली–गली बिकने लगते हैं। परन्तु इस बात की प्रशंसा करनी होगी कि जैनों ने अपने वीतरागी भगवान की प्रतिष्ठा व पूज्यत्व को सदा अक्षुण्ण बनाए रखा तथा बहुरूपियों को कभी ऐसा अवसर नहीं दिया कि वे उनके वीतरागी भगवान की अज्ञानतापूर्ण नकल करके उनकी प्रतिष्ठा कम कर सकें। अतः स्थिति यह थी कि सम्राट कर्ण विभिन्न धर्मों की आत्म–प्रशंसा से प्रभावित नहीं हुए थे और वे अपने राज्य को धर्मनिरपेक्ष बनाना चाहते थे जबकि उनका राज्यमंत्री सुमति वहां प्राणी मात्र के हितकारी जैनेन्द्र शासन की स्थापना कराना चाहता था। तभी सभा के बीच से वह बहुरूपिया गायब हो गया और कुछ देर बाद अदृश्य वाणी गूंज उठी –'सावधान ! शंकर जी आ रहे हैं ।'' दरबारियों ने देखा तो सचमुच नन्दी बैल पर सवार, गले में काले सर्पों की माला डाले तथा भस्म लगाए शिवजी दरबार में खड़े थे। लोग बहुरूपिये के भेष परिवर्तन की कुशलता पर मुग्ध हो नकली शिवजी की जयजयकार करने लगे। इसी क्रम में दूसरे व तीसरे दिन ब्रह्मा, विष्णु, गणेश, सरस्वती आदि भी प्रकट किये गये। इससे काफी लोग प्रभावित भी हुए और कुछ ने इस कृत्य की आलोचना भी की। चौथे दिन अदृश्य वाणी से घोषणा हुई –'अब वीतरागी भगवान जिनेन्द्र देव आ रहे हैं।'' यह सुनते ही राज्यमंत्री सुमति के कान खड़े हो गये। उसने सोचा वीतरागी जिनेन्द्र देव दिगम्बर रूप तो कोई तभी धारण कर सकता है, जबकि वह सीढ़ी–दर–सीढ़ी साधुधर्म के कड़े नियमों का पालन करे। और इस बहुरूपिये के द्वारा यह संभव नहीं है, अतः बिना नियमों का पालन किये भरे दरबार में जिनेन्द्र देव के दिगंबर वेश में आने का साहस कर ही नहीं सकता। तो क्या यह वस्त्र पहनकर जिनेन्द्र देव का रूप धारण करेगा ? इससे तो हमारे पूज्य वीतरागी प्रभु की बड़ी प्रतिष्ठा गिरेगी, जैनधर्म की बड़ी अवमानना होगी। यह सोचते ही सुमति महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र के 13 वें श्लोक 'वक्त्रं क्व ते...' का ऋद्धि व मन्त्र सहित जोर–जोर से पाठ करने लगे। अब जिनेन्द्र देव तो प्रकट हुए नहीं, किन्तु कुछ क्षणों पश्चात् जिनशासन की भक्त 'चक्रेश्वरी देवी' अवश्य अपने दिव्य रूप में प्रकट हुई और उस बहुरूपिये की छाती पर सवार हो गई तथा उससे बोली –''दुष्ट ! तुझे वीतरागी प्रभु का अपमान करने का दुस्साहस कैसे हुआ ? यदि तुझे वीतरागी जिनेन्द्र देव ही बनना है तो राग–द्वेष हिंसा, मायाचार आदि पापों को छोड़कर त्याग का मार्ग अपना लो ।'' बहुरूपिये ने देवी से क्षमा मांगी और देवताओं के नकली रूप धारण न करने की प्रतिज्ञा की। अब क्या था ? भरे दरबार में बहुरूपिये द्वारा फैलाए गए पाखण्ड व मिथ्यात्व का भण्डाफोड़ हुआ। जनता ने जैन शासन की जय–जयकार से आकाश गुंजा दिया। भरे दरबार में सम्राट कर्ण ने घोषणा की मेरा राज्य आज से जैन शासन को स्वीकार करता है।

भावार्थ

हे सौन्दर्यं संपन्न विभो ! आपका देव, मनुष्य और नागों के नेत्रों को हरण (आनंदित) करनेवाला उज्ज्वल मुख मण्डल कहाँ ? और दिन में निस्तेज फीके-पीले जीर्ण पत्ते की तरह काले धब्बों वाला चन्द्र मण्डल कहाँ ? अर्थात् आपका मुख मण्डल चन्द्रमा के सौंदर्य से भी अधिक सौन्दर्य पूर्ण है ।

MEANING

My Almighty, how aesthetically pleasing do you appear ! Deities are attracted to you; men are happier to have you in their eyes and hearts; even the animals and birds are grateful to have your glimpse. No metaphor is enough to narrate your appearance.

All the comparisons and metaphoric descriptions fall short…

The moon has no value in daytime; though it looks like a prince in the night, but it is pale in daytime…

Oh God! The whole world looks pale and tasteless when compared with you.

शब्दार्थ

सुर = देव, नर = मनुष्य, उरग = नागों के, नेत्र = नेत्रों को, हारि = हरण करनेवाला, निःशेष = समस्त, निर्जित = जीती है, जगत्त्रितय = तीन जगत की, उपमानम् = उपमाओं को जिसने ऐसा, ते = आपका, वक्त्रं = मुख, क्व = कहां और, निशाकरस्य = चन्द्रमा का, कलंक मलिनम् = कलंकसे मलिन, बिम्बं = बिम्ब, क्व = कहां, यत् = जो कि, वासरे = दिन में, पलाश-कल्पम् = पलाश के पत्ते के समान, पाण्डु = पीला, भवति = हो जाता हैं ।

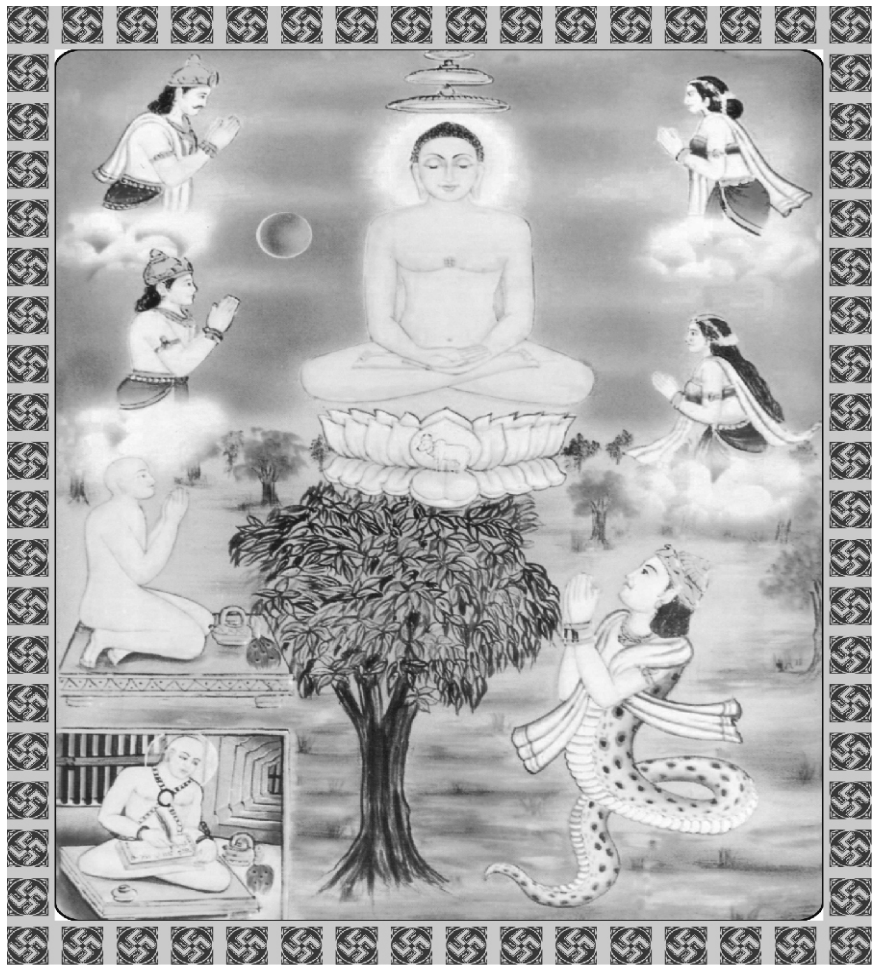

सम्पूर्णमण्डलशशांकलाकलाप–
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लंघयन्ति।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर नाथमेकं
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ।।14।।

वातव्याधि विघातक यंत्र–14

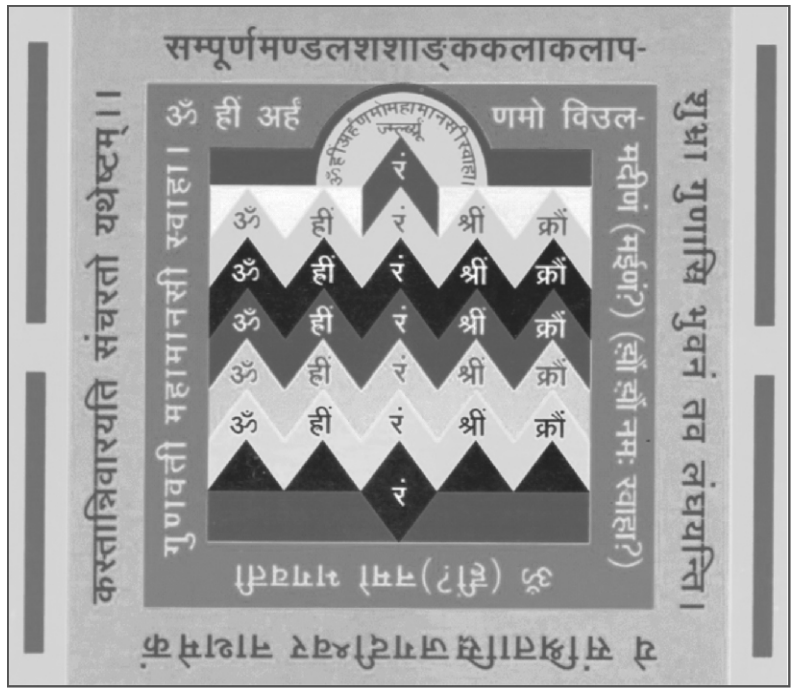

ऋद्धि — ॐ ॐ अर्हं णमो विउलमदीणं ÃÃ ÃÃ नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ नमो भगवती गुणवती महामानसी स्वाहा।

विधि — पवित्र होकर सफेद वस्त्र धारण कर स्फटिक मणि की माला द्वारा प्रतिदिन तीनों काल 108 बार चौदहवाँ काव्य, ऋद्धि तथा मंत्र का आराधन करें, दीपक जलावे, धूप प्रक्षेपण करें। गुग्गल, कस्तूरी, केशर, कपूर, शिलारस, रत्नाÄजलि, अगर, तगर, धूप, घी आदि से प्रतिदिन होम करना चाहिये।

प्रेम और वासना दोनों पृथक–पृथक चीजें है। प्रेम दाम्पत्य जीवन में सोने में सुगंध बनकर रहता है। विशुद्ध प्रेम दाम्पत्य जीवन का वरदान है जो पति–पत्नी की धर्म साधना तथा पुण्य–अर्जन में सहायक होता है, किन्तु इसके विपरीत, वासना गृहस्थ जीवन की विषबेल है, दाम्पत्य जीवन का अभिशाप है जो अनन्तानन्त संसार व नरक–निगोद का कारण बनती है। बिहार राज्य के केतुपुर नगर के नरेश भी दुर्भाग्यवश इसी वासना के व्यसन के दुष्चक्र में ऐसे फंसे कि पतन के निचले कगार तक जा पहुंचे। हुआ यह कि नगर के राजवैद्य ने राजा के लिये गुटिका तैयार की जिसका नाम था – कल्लोलकामिनी गुटिका। खाते ही गुटिका ने राजा पर अपना रंग जमाना शुरू कर दिया। उसकी आँखों में मादकता टपकने लगी। मुख उच्च रक्तचाप से लाल हो गया, शरीर में गर्मी व तनाव आ गया। उस गुटिका का नशा राजा पर एकदम सवार हो गया। उस जमाने में प्रचलित गुटके अवश्य सर्वसाधारण को उपलब्ध नहीं थे। किन्तु केतुपुर नरेश उस विशिष्ट गुटिका को खाकर पलंग पर लेटे ही थे कि पीछे से आवाज आई –'स्वामिन आपको महारानी याद कर रही है।' राजा ने नजर ऊपर उठाई तो उठी की उठी रह गई। मानों उन्होंने दिन–रात काम करने वाली चंपा बांदी को भी पहचाना नहीं। चम्पा को राजा की वासना भरी आंखें उसके सौन्दर्य का पान करती सी दिखाई दीं। एक बार तो राजा की यह अभद्रता देखकर दासी चम्पा घबरा गई कि राजा को आज क्या हो गया है ? कहीं इन्होंने मुझे रानी तो नहीं समझ लिया है ? कन्तु 'स्त्रीचरित्रं, पुरुषस्य भाग्यं, देवो न जानाति कुतो मनुष्यः' की उक्ति के अनुसार चम्पा की बुद्धि भी फिर गई। मानों उसकी वासना भी जागृत हो गई हो, उसने राजा के समक्ष अपना सर्वस्व समर्पण करने में ही अपनी भलाई समझी..। कोई भी व्यसन प्रारंभ में भले ही छोटा सा दिखाई देता है, परन्तु सम्मूर्छन जीवों की भांति वह दिन–दूरी रात–चौगुनी गति से बढ़ता जाता है। राजा की वासना का व्यसन भी एक दिन का नहीं, बल्कि नित्य प्रति का काम हो गया। चंपा का प्यार भी उंगली पकड़कर पौंहचा पकड़ने लगा। उसका प्यार अब प्यार के साथ–साथ शासन का रूप लेने लगा। नगर के शासक के ऊपर अब चंचल चम्पा शासन कर रही थी। तथ्य यह है कि बड़े–बड़े व्यक्ति भी यदि वासना के गुलाम हो जाते हैं तो उनके सर्वगुण नष्ट हो जाते हैं। लज्जा और विवेक भी कामान्ध लोगों का साथ छोड़ देते हैं। अंततः राजा और चम्पा के वासनामय सम्बन्धों का पता पतिव्रता महारानी कल्याणी को चल ही गया। राजा के इस निन्दनीय कृत्य से महारानी के निष्कपट, निश्छल और पवित्र प्रेम को तो धक्का लगा ही, साथ ही उसे अधिक चिन्ता इस बात की थी कि 'यथा राजा, तथा प्रजा' के सिद्धान्तानुसार राजा के दुराचरण का प्रभाव प्रजा पर पड़ेगा तो राजा फिर दुराचारी लोगों को कैसे दंडित कर सकेगा। अतः रानी ने राजा को समझाने और सुमार्ग पर लाने का हर संभव प्रयास किया, किन्तु वासना में अंधे राजा पर उसका कोई प्रभाव न पड़ा। तब रानी ने प्रतिज्ञा की कि जब तक राजा परस्त्रीगमन के पाप का त्याग नहीं करेंगे, तब तक मेरा राजा से कोई भी शारीरिक या आत्मिक सम्बन्ध नहीं रहेगा। रानी की प्रतिज्ञा और राजा की वासना के बीच संघर्ष सा छिड़ गया। वासना से विवेकहीन हो चुका राजा इस संघर्ष से क्रोधित हो उठा और उसने रानी को अपने रास्ते से हटाने का दुर्भाग्यपूर्ण फैसला कर डाला। उसने महारानी कल्याणी को निकट के घने वन के एक निर्जन कुएँ में गिरवा दिया। वासना में अंधा होकर मनुष्य पतन की कितनी गहराई में जा गिरता है, यह उसके घृणित उदाहरणों में से एक है। किन्तु केतुपुर नगर के कामान्ध नरेश की वासना यदि क्रोध में बदली थी तो पतिव्रता रानी कल्याणी की दृढ़ प्रतिज्ञा भी अब भक्तिरस में बदल चुकी थी। सम्यग्दृष्टि जिनभक्त होने के कारण रानी को महाप्रभावक स्तोत्र भक्तामरजी में बड़ी दृढ़ श्रद्धा थी। भक्तामर स्तोत्र के तो एक–एक शब्द में अनन्त अलौकिक चमत्कारों की शक्ति भरी पड़ी है। इस संकट के समय महारानी ने दृढ़ श्रद्धा व भक्ति के साथ श्री भक्तामर स्तोत्र के 14 वें और 15 वें श्लोकों का ऋद्धि व मंत्र सहित पाठ करना शुरू कर दिया। दूसरे दिन ही अर्द्धरात्रि के समय राजमहल के शयनकक्ष में सोते हुए राजा की जब अचानक आँख खुली, तो जिनशासन की रक्षिका 'जृम्भ देवी' को विकराल रूप धारण किये अपने समक्ष देखकर वह भयभीत हो गया। उसका अंग–अंग पीपल के पत्ते की तरह थर–थर कांपने लगा। क्षमा मांगने पर देवी ने उसे इस शर्त पर अभयदान दे दिया कि वह पर स्त्री की छाया से भी दूर रहेगा। देवी की कृपा से रानी भी सुरक्षित घर लौट आई। अब क्या था ? रानी की भक्तामर स्तोत्र की भक्ति से राजा वासना के गहरे गर्त से बाहर निकल आया था। राजा और रानी, दोनों के हृदयों में वासना की जगह सच्चे व पवित्र प्रेम का सागर हिलोरें लेने लगा। वासना का अभिशाप प्रेम के वरदान में बदल गया। वासना की विष बेल नष्ट हो गई और उनका दाम्पत्य जीवन फिर से सुखी व धर्ममय हो गया। भक्तामर स्तोत्र ने उनका जीवन ही बदल डाला।

भावार्थ

हे जगदीश्वर ! आपके उज्ज्वल गुण पूर्णिमा के चन्द्र मण्डल की कलाओं के समान तीन लोकों में व्याप्त हो रहे हैं क्योंकि उन गुणों ने जब तीन लोक के नाथ आपका ही सहारा ले लिया है तब उन्हें इच्छानुसार विचरण करने से इस संसार में कौन रोक सकता है ? अर्थात कोई नहीं ।

MEANING

O, the lord of Triloka! Your virtues are as pleasing and bright as the full moon in the cloudless sky, but it is surprising that how the virtues which remained in your Atma, have spread throughout the universe! But one need not get astonished, as you are the lord of universe and virtues have taken shelter in you.

No one can stop (prevent) the roaming of a person according to his desire, who has taken refuge into the gigantic and majestic personality like yours.

शब्दार्थ

त्रिजगदीश्वर = हे तीन जगत के ईश्वर, तव = आपके, सम्पूर्ण मण्डलशशांक = पूर्ण चंद्र मण्डल के, कला-कलाप = कला समूह के समान, शुभ्राः = उज्ज्वल, गुणाः = गुण, त्रिभुवनम्=तीनों लोकों को, लंघयन्ति=उल्लंघन करते हैं, ये=जो, एकम्=एकमात्र, नाथम् आप जैसे स्वामी का, संश्रिता=आश्रय लेते है, तान्=उन्हें, यथेष्टम्= स्वेच्छानुसार, संचरतः=विचरण करने से, कः=कौन, निवारयति=रोक सकता है ।

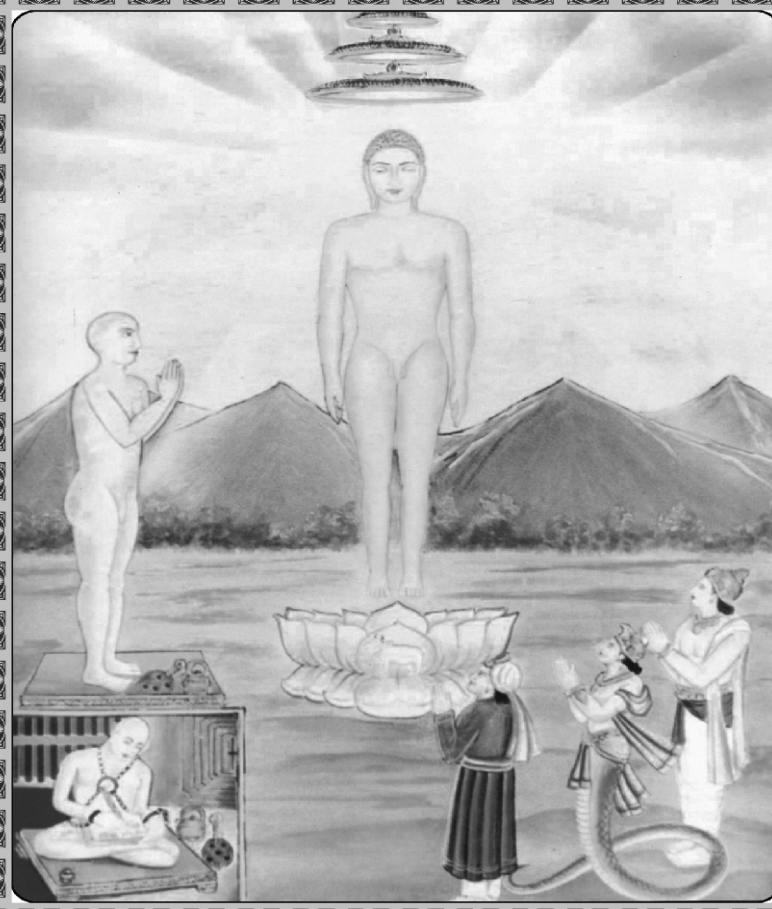

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि-
नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्।
कल्पान्तकालमरुता चलताचलेन,
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ।।15।।

राज्य वैभव प्रदायक यंत्र–15

ऋद्धि — ॐ ॐ अर्हं णमो दसपुव्वीणं ÃÃं ÃÃं नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ नमो अचिन्त्यबल–पराक्रमाय सर्वार्थकामरूपाय ॐ ॐ क्रौं श्रीं नमः।
ॐ नमो भगवती गुणवती महामानसी नमः स्वाहा।

विधि — स्नान करके लाल रंग के वस्त्र धारण कर लाल आसनपर बैठकर मूंगा की लाल माला द्वारा 14 दिन तक प्रतिदिन पंद्रहवां काव्य, ऋद्धि तथा मंत्र का स्मरण करते हुए दशांग धूप क्षेपण करना चाहिये तथा प्रतिदिन एकाशन करना चाहिये।

हे जगदीश्वर, अरिहंत देव की सच्ची भक्ति शरीराश्रित नहीं होती, बल्कि आत्माश्रित होती है। तदनुसार श्री मानतुंगाचार्य जी इस छंद में जिनेश्वर देवी की ज्ञानादिक अनंत गुणों का कीर्तन करते हुए यह प्रकट करते हैं कि तीनों लोक आपके ही गुणों से सम्पूर्णतया व्याप्त हैं, अर्थात् आपका गुण–सौरभ तीनों लोकों में अपनी सुरभित महक छोड़ रहा है। आगे वे उन गुणों के लोकाकाश भर व्याप्त होने का सहेतुक कारण निरूपित करते हैं – जैसे कोई महान् सम्राट के संबन्धीजन या बंधु–बांधव उसके बल पर बेरोक–टोक मनमाने रूप से चाहे जहाँ घूमने के लिये स्वतन्त्र हैं। और उन्हें रोकने का साहस कोई नहीं करता। आचार्य श्री कहते हैं कि हे नाथ ! आपके अनन्त गुण केवल आप तक ही सीमित नहीं हैं। बल्कि वे तो तीनों लोकों में विपुलता से प्याप्त हो रहे हैं जिस प्रकार चंद्रमा की शुभ्र कलाएं दूज से लेकर पूर्णमासी पर्यन्त क्रमशः विकसित होती रहती हैं, उसी प्रकार आपके उज्ज्वल, धवल गुण पूर्णमासी के चन्द्रमा समान पूर्ण रूप से विकसित हो चुके हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा की ज्योत्स्ना से लोक का कोना–कोना व्याप्त हो जाता है उसी भांति आपके निर्मल गुणों से त्रैलोक्य व्याप्त हो गया है। उनकी इस व्याप्ति का कारण स्पष्ट है कि उन गुणों ने अन्य किसी देव का सहारा नहीं लिया बल्कि आप की वीतरागता को ही एकमात्र अपना नाथ स्वीकार किया है। तात्पर्य यह है कि श्री जिनेश्वर देव–गुणों की चर्चा तीनो कालों तथा तीनों लोकों में होती ही रहती है। उस चर्चा को अथवा उनके द्वारा प्रणीत तत्वों को रोकने का साहस अथवा खंडन करने का दुस्साहस आज तक किसी को भी नहीं हुआ। मुनि श्री मानतुंग जी जिनेश्वर देव के अतिशय रूप–सौन्दर्य एवं अनन्त गुणों का यशोगान करने के उपरांत उनकी यथाख्यात चारित्र निष्ठा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हे चारित्र चूड़ामणि ! आपने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानपूर्वक सम्यक् चारित्र की उस पूर्णता को प्राप्त कर लिया है जिसमें कि मोह, ममता, राग–द्वेष, काषायिक और नो काषायिक आदि विकारी भावों का लेशमात्र भी अंश नहीं रहा। अर्थात् आपने अपने पूर्ण शुद्ध स्वभाव की प्राप्ति कर ली है और इस प्रकार से पर वस्तुओं का कुटिल प्रभाव आप पर किंचित् मात्र भी नहीं होता, आपका अन्तर–बाह्य परम वीतराग और निर्विकार है। आप ऐसे योगी और शुक्ल ध्यानी हैं जिन्हें विचलित करने में कोई भी समर्थ नहीं है। यह तो सभी जानते हैं कि विषय–वासना ने तीनों लोकों पर विजय प्राप्त की है। महान सुभट और शूरवीर भी काम के वशीभूत होते देखे गये हैं, परन्तु आप एक ऐसे अद्वितीय महावीर हैं जिन्होंने उस कामरूपी शत्रु पर विजय प्राप्त की है जिसने तीनों लोकों को पराजित कर दिया था। आपने तो अपने पुरुषार्थ से प्रारम्भ में ही दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय नामक कर्मों के सम्राट का क्षय कर दिया, जिनका क्षय होने से घातिया कर्म की 47 प्रकृतियां भी धराशायी हो गईं। इस छंद में उत्प्रेक्षालंकार द्वारा स्तुतिकर्ता भगवान का चारित्रगान करते हुए कहते हैं कि इसमें कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं कि यदि तेरह प्रकार की देवांगनाएं, अप्सराएँ, परियां अपने लावण्य, उन्माद और विविध हाव–भाव द्वारा आपको रिझाने में समर्थ नहीं हुईं। अपने विकारी भावों द्वारा आपके निर्विकारी स्वभाव पर कुछ भी कुप्रभाव न डाल सकीं क्योंकि आपका मन तो ऐसा अचल सुमेरू पर्वत है जिसको कि कंपायमान करने में सामान्य हवा तो क्या बल्कि प्रलयकाल की तेज आंधी भी समर्थ नहीं है। आप अन्य देवी देवताओं की तरह छोटे–मोटे पहाड़ नहीं, बल्कि आप तो सुमेरू की तरह धीर, वीर, गंभीर, अचल परिषह और दुस्सह परिषह विजेता हैं ।

भावार्थ

हे प्रभो ! यदि आपका वीतरागी मन, देवलोक की अप्सराओं के हाव-भाव द्वारा किंचित भी विकार भाव को प्राप्त नहीं हुआ तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? अर्थात् कोई आश्चर्य नहीं है ।

पहाड़ों को चलायमान कर देनेवाली प्रलयकाल की प्रचण्ड वायु क्या कभी सुमेरु पर्वत की चोटी को चलायमान कर सकती है ? अर्थात कभी नहीं ।

MEANING

O Vitaraga! In spite of all your qualities, you are so much indifferent and unconcerned that even the fairies of the heaven neither attract you, nor detract you!

The disastrous storm at the end of an eon topples other mountains as well. But no sooner it approaches Mount Meru, the king of Mountains, turns into breezes. Thunder is well aware that its might will not work there. God, I have come to know by your grace that the Veetaraga cannot be lured even by the3 best and most beautiful fairies. The one who is never lured is veetaraga, and veetaraga can never be lured.

शब्दार्थ

यदि = अगर, त्रिदशा"नाभिः = देवांगनाओं के द्वारा, ते = आपका, मनः = मन, मनाक् = जरा-सा, अपि = भी, विकार-मार्गम् = विकार भाव को, न नीतम् = प्राप्त नहीं हुआ तो, अत्र = इसमें, किम् = क्या, चित्रम् = आश्चर्य है ? चलिताचलेन = पर्वतों को चलायमान करने वाले, कल्पांतकाल = प्रलय काल की, मरुता = पवन से, किम् = क्या, मन्दराद्रिशिखरम् = सुमेरु का शिखर, कदाचित् = कभी भी, चलितम् = चलायमान हुआ है ?

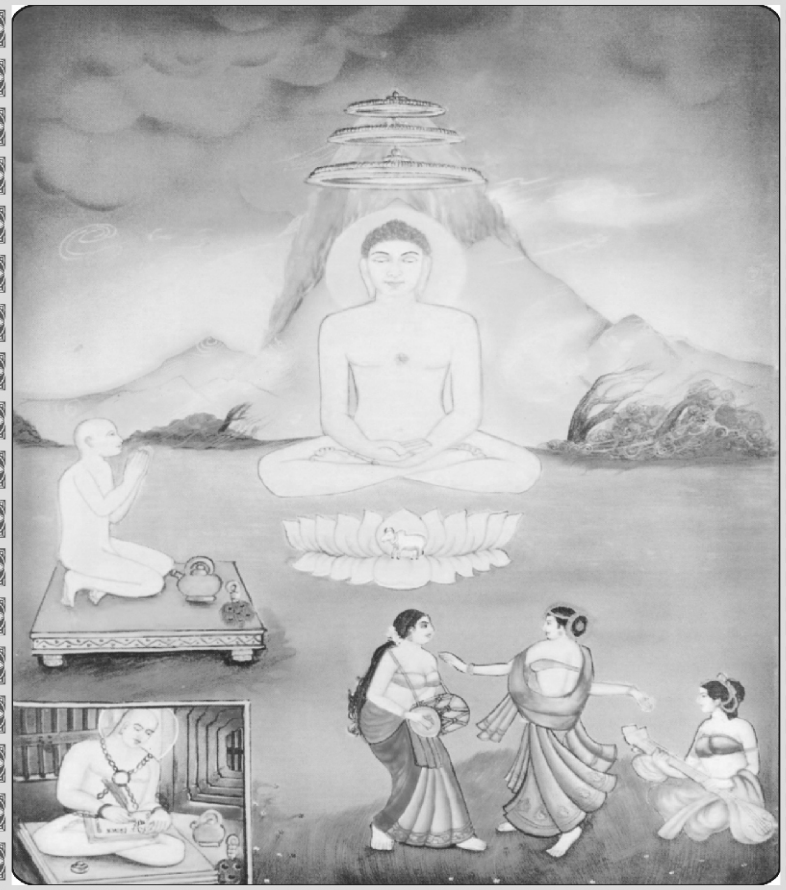

निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः,
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः ।।16।।

प्रतिद्वन्द्वी प्रताप अवरोधक यंत्र–16

ऋद्धि — ॐ ॐ अर्हं णमो चउदसपुव्वीणं Ãं Ãं नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ नमः सुमंगला, सुसीमा, नामदेवी सर्व समीहितार्थं वज्रशृंखला कुरु कुरु स्वाहा।

विधि — स्नान द्वारा पत्रि होकर 9 दिन तक प्रतिदिन हरे रंग की माला से 1000 बार सोलहवां काव्य ऋद्धि तथा मंत्र स्मरण करते हुए कुंदरू की धूप क्षेपण करना चाहिये।

बाल्यावस्था एक सुकोमल पौधे या लता समान होती है जिसे संस्कार डालकर किसी भी दिशा में मोड़ा तथा झुकाया जा सकता है। किन्तु मोटे तने युक्त वृक्ष में ऐसी कोमलता व लचक नहीं होती। आंधी व तूफानों में बड़ा वृक्ष भी उखड़ जाता है, किन्तु सुकोमल व लचक युक्त लता चारों ओर को झुककर अपनी रक्षा कर लेती है। जीवन में धर्म भी पचपन में नहीं बचपन में ही आता है। राजा महीपचन्द्र की पुत्री मित्रा भी बचपन से ही अच्छे संस्कारों व गुणों से सम्पन्न थी। यद्यपि राजघराने में उत्पन्न होने के कारण उसका जीवन सुख, ऐश्वर्य व ऐशो–आराम से भरपूर होना चाहिये था किन्तु वह बचपन से ही धर्म व अध्यात्म की ओर झुकी हुई थी। अल्पायु होने पर भी वह एकान्त वातावरण पाते ही जगत की निस्सारता व धर्म के बारे में चिन्तन व मनन किया करती थी। राजा महीपचन्द्र अपनी पुत्री का बचपन से धर्म की ओर झुकाव देखकर बड़े प्रसन्न थे। उन्होंने धर्म के अधिक ज्ञान व अध्ययन के लिये मित्रा को आर्यिका श्रीमती माताजी के पास भेजा। आर्यिकाश्री के पास रहकर मित्रा ने धर्म के गूढ़ रहस्यों को समझा और वह इस नतीजे पर पहुंची कि धर्म को समझना उतना मूल्यवान नहीं, जितना कि उस पर आचरण करना। कई वर्ष तक रहकर विद्या और धर्म का अध्ययन पूर्ण करने के उपरांत मित्रा ने आर्यिका श्री से आशीर्वाद की याचना की। आशीर्वाद देते हुए आर्यिका श्री ने कहा –'गुणवती पुत्री ! प्रतिदिन जिनदर्शन करना प्रत्येक जैन गृहस्थ का आवश्यक कर्त्तव्य है अतः तुम्हारा भी कर्तव्य है कि जिनदर्शन के बिना अन्न–जल ग्रहण न करना।' मित्रा ने भी प्रसन्नता से कहा – 'पूज्यनीय माताश्री ! मैं प्रतिज्ञा करती हूं कि प्रतिदिन रत्नमयी बन प्रतिमा के दर्शन–अर्चन के पश्चात् ही अन्न–जल ग्रहण करूंगी।' मित्रा आशीर्वाद लेकर अपने पितृ–गृह लौट आई। वहां वह राजमहल के परिसर में स्थित जिनमंदिर में रत्नमयी जिन प्रतिमा का प्रतिदिन दर्शन–अर्चन करके निरन्तर धर्म साधना करती रही। राजा महीपचंद्र बड़े संतुष्ट तथा प्रसन्न थे और चाहते थे कि उनके गृह–उपवन की यह शोभा निरंतर बढ़ती रहे और स्थायी रूप से बनी रहे। वे शायद भूल गये थे कि कन्या तो पराया धन होती है। आखिर चन्द्रवदनी रानी सोमश्री ने एक दिन राजा से कह ही दिया 'क्या मित्रा को आर्यिका बनाने का विचार कर रखा है आपने ? कन्या को घर में ही छुपाए रखोगे ? उसका पाणिग्रहण नहीं करोगे क्या ?' रानी की बात सुनकर राजा जैसे सोते से जाग पड़े, उन्होंने कन्या मित्रा की ओर देखा और पाया कि निश्चय ही उनकी बेटी अब बड़ी हो चली थी। राजाने अब अपनी कन्या हेतू योग्य वर की खोज शुरू कर दी, शीघ्र ही उन्होंने निकटस्थ नगर के सम्यग्दृष्टि श्रेष्ठिपुत्र क्षेमंकर जी का चयन वर के रूप में किया। राजा के घर पर विवाह की दुन्दुभि बज उठी। राजा–रानी व प्रजा वर को देखकर फूले नहीं समा रहे थे। जनता में चर्चा होती –'भैया, राजा के दामाद क्षेमंकर जी साधारण लक्ष्मीपति नहीं धन कुबेर हैं धनकुबेर ।' साथ ही उनकी प्रकाण्ड विद्वता व ऋद्धियों आदि की चर्चा चलती रहीं। तभी एक धर्मात्मा बालक बोला –'क्षेमंकर जी प्रतिदिन मंदिर में जब भक्तामर स्तोत्र का सस्वर पाठ करते हैं तो सब मंत्रमुग्ध हो उठते हैं। अन्त में सर्व वैवाहित क्रियायें सम्पन्न हुईं। धूमधाम से बारात लौटकर आ चुकी थी। आवश्यक रीतिरिवाज पूरे करने के बाद मध्यान्ह में सास ने आकर दुल्हिन को भोजन के लिये बुलाया ।। मित्रा ने संकुचाते हुए कहा –'मां, मुझे भोजन की इच्छा नहीं है।' सास ने कहा –'ससुराल आकर ऐसी अशुभ बातें नहीं करते बेटी। तुम्हारे माथे के सिन्दूर के साथ ही तुम्हारी काया भी रक्तिम बनी रहे, इसके लिये भोजन तो आवश्यक है पुत्री।'' 'मां, मैं श्री पार्श्वनाथ के दर्शन किये बिना भोजन ग्रहण नहीं करती।' –मित्रा बोली। सास बोली –'पास ही के चैत्यालय में पार्श्वनाथ जी की अति–मनोज्ञ पाषाण प्रतिमा स्थापित है, जाकर दर्शन कर लो।' मित्रा बोली –'पर माताजी, चैत्यालय में रत्नमयी मूर्ति नहीं है, मेरा रत्नमयी जिन–प्रतिमा के दर्शन–अर्चन का नियम है।' सास–बहू के इस वार्तालाप को सुनकर क्षेमं कर जी ने मां से कहा –'मां, किसी की ली हुई प्रतिज्ञा को तोड़ने को विवश करना उचित नहीं है। आप चिन्ता मत करें, मैं इसका उपाय करूंगा।' उसी दिन रात्रि के प्रथम प्रहर में क्षेमंकर ने भक्तामर स्तोत्र के 16 वें श्लोक का भक्ति एवं श्रद्धाभाव से पाठ प्रारम्भ किया। स्तोत्र के ध्यानपूर्वक पाठ में क्षेमंकर इतने लीन थे कि समय का उन्हें ज्ञान ही न था। उनके मुखमण्डल का तेज झलककर मानों कह रहा था कि 'सच्ची साधना में अपनी या समय की याद ही किसे रहती है।' उनका ध्यान तो तब भंग हुआ जब जिनशासन की भक्त चतुर्भुजी देवी ने प्रकट होकर कहा –'तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी कुमार।' और अगले दिन प्रातः नगर निवासियों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उन्होंने जिनालय में पाषाण मूर्ति के आगे श्री पार्श्वनाथ भगवान की एक रत्नजड़ित प्रतिमा के दर्शन किये। जनता की जय जयकार से आसमान तक गूंज उठा।

भावार्थ

हे परम ज्योति देव ! आप धुंआ बाती और तेल से रहित तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाले अभूतपूर्व अलौकिक चिन्मय दीपक हो ।

इस ज्ञान रुपी अनुपम दीपक के लिये, विशाल पर्वतों को चलायमान करनेवाली झंझावात वायु भी बुझाने में समर्थ नहीं है ।

MEANING

Oh God Almighty ! You are a self-lit lamp and hence you do not need any external fuel of preaching's of other saints. The stormy winds of illusions cannot extinguish or fade your light of infinite knowledge. Your unique existence does not emit the smoke in the form of Raga and Dwesha. You also do not depend upon the help of others on the path of salvation like an ordinary lamp relying on a cotton wick.

In fact you are the unique lamp to lighten the whole universe at a time by your theory of Anekantavada.

शब्दार्थ

नाथ = हे भगवान ! त्वम् = आप, निर्धूमवर्ति = धूआँ और बत्ती से रहित, अपवर्जिततैलपूरः = लबालब तेल से रहित, अपर = अनुपम, दीपः = दीपक, असि = हो, (जो कि) इदं = इस, कृत्स्नं = समस्त, जगत् त्रयम् = तीन जगत को, प्रकअीकरोषि = प्रकाशित कर रहे हो, (तथा) चलिता चलानाम् = पर्वतों को चलायमान करने वाली, मरुतां = वायु के, जातु = सर्वथा, न-गम्यः = अगम्य, जगत्प्रकाशः = जगत् को प्रकाशित करने वाले हो ।

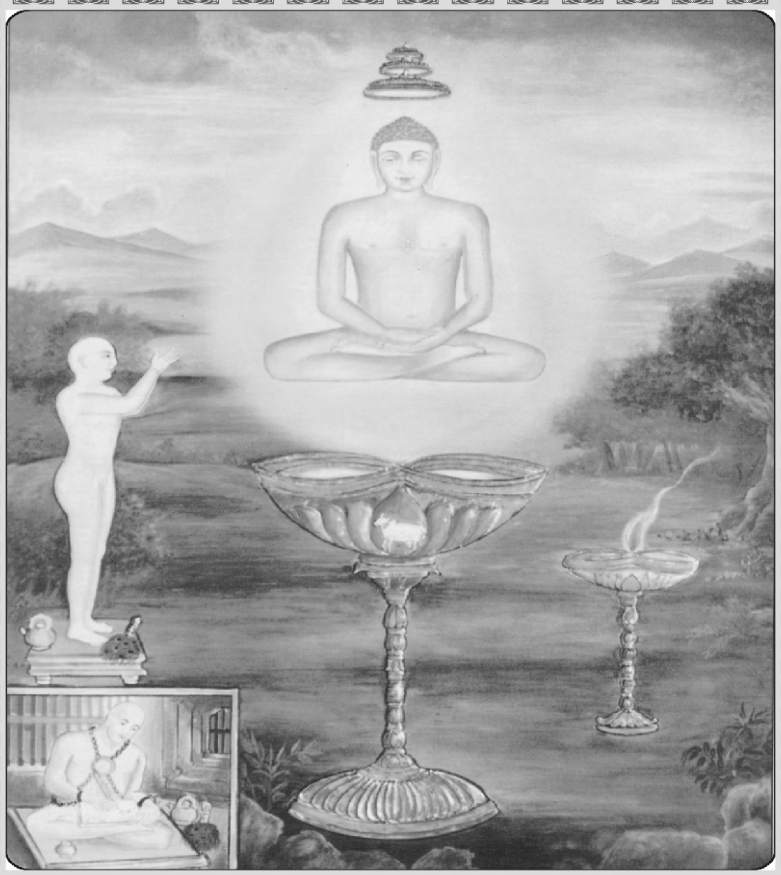

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति।
नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः
सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र लोके ।।17।।

उदरव्याधि–विघातक यंत्र–17

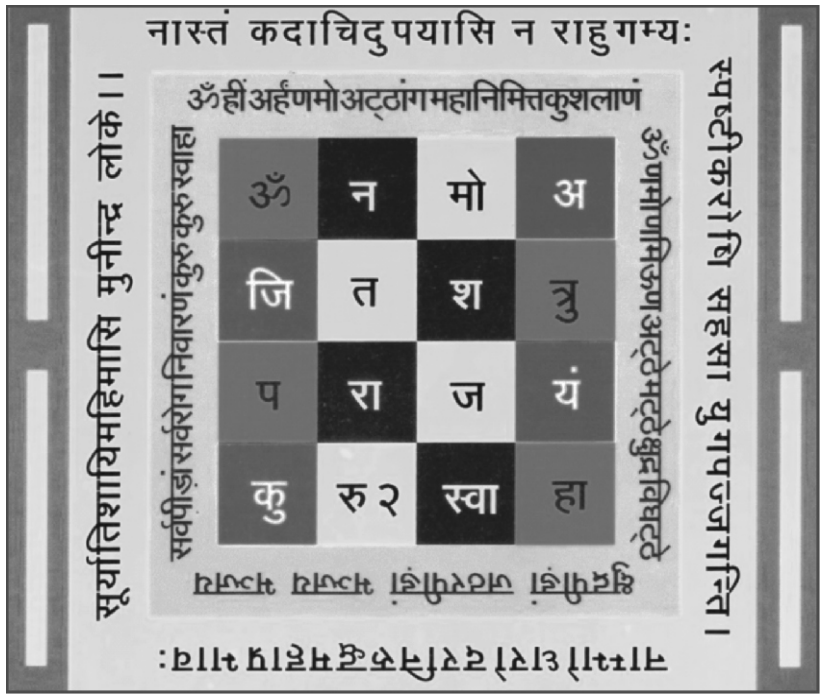

ऋद्धि — ॐ ठीं अर्हं णमो अट्ठांग महानिमित्त–कुशलाणं Ãीं Ãीं नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ णमो णमिऊण अट्ठे, मट्ठे, क्षुद्र विघट्ठे क्षुद्रपीडां जठरपीड़ां, भंजय–भंजय सर्वपीड़ां, सर्वरोग निवारणं कुरु कुरु स्वाहा।
ॐ नमो अजित शत्रु पराजयं कुरु कुरु नमः स्वाहा।

विधि — पवित्र भावों से 7 दिन तक प्रतिदिन सफेद माला द्वारा 1000 बार सत्रहवां काव्य, ऋद्धि तथा मंत्र स्मरण करते हुए चंदन की धूप क्षेपण करना चाहिये।

यह घटना इस बात का प्रमाण है कि धर्मनिष्ठ, धैर्यवान और दृढ़ आस्था वाली धर्मपत्नी अपने पथभ्रष्ट, विलासी व व्यसनी पति को भी धर्म के सन्मार्ग पर वापस ला सकती है और भोग में डूबे पति को योग के पवित्र मार्ग पर चलने को प्रेरित कर सकती है। शास्त्रों, पुराणों व धर्मग्रन्थों में जिसका रोना रोया जाता है, अपने पुरुषार्थ से विश्व विजय की क्षमता रखने वाला वीर भी जिसके समक्ष घुटने टेक देता है, यही नहीं, परमात्मा, नामधारी, मिथ्यात्वी भी जिसके आगे नतमस्तक हो जाते हैं क्या नाम है उसका ? इस अनन्त संसार के विभिन्न रंगमंचों पर अपना रंग दिखाने वाले तथा बड़ो–बड़ो को सत्पथ से भटका देने वाले उस खलनायक का नाम है मोह। वह मोह, जिसे आठ कर्मों में सबसे अधिक दुर्दान्त माना जाता है, जो आत्मा रूपी सूर्य के प्रकाश को बादल बनकर ढक लेता है। जिसे लोक व्यवहार की भाषा में प्रेम, मुहब्बत इश्क या वासना के नाम से पुकारा जाता है। इस वासनायुक्त प्रेम या मोह पर विजय पाने के अनेक धार्मिक उपचारों के अलावा एक उपचार सत्संगति का भी है। जो मनुष्य को वासना से ऊपर उठाती है और उसे भोग से योग की ओर ले जाती है। किन्तु यदि सत्संगति के नाम पर मनुष्य कुसंगति का पल्ला पकड़ ले तो उसका चरम पतन होने में भी देर नहीं लगती। ऐसी ही स्थिति रत्न शेखर की भी हो गई थी। उसका परिचय एक ऐसे जोगी से हो गया था, जो कहने को तो जटाजूटधारी व तपस्वी था तथा अनेक चमत्कार दिखाने का ढोंग रचा करता था, पर वास्तव में वह कुछ और ही था। वह स्त्रियों को डोरी, गण्डे व ताबीज दिया करता था व उनकी आड़ में स्त्रियों का शोषण किया करता था। अनेक इच्छाओं की पूर्ति के लिये स्त्रियां उसके पास आतीं और दोनों हाथों से अपना धन लुटाती थीं। पुत्र की लालसा में आने वाली मोहान्ध स्त्रियां अपना सब कुछ ही, यहा तक कि अपना अमूल्य सतीत्व भी उस ढोंगी व मिथ्यात्वी के समक्ष न्यौछावर कर देती थीं। रत्नशेखर दुर्भाग्यवश एक ऐसे ही कुगुरु का चेला था। वह अपने गुरू से भी बढ़कर वासना का गुलाम व विलासी बन गया था तथा दिन–रात ऐसे ही कुकर्मों में रत रहने लगा था। किन्तु उसकी होनहार शायद कुछ अच्छी थी कि गलत रास्ते पर जाता देख रत्नशेखर के माता–पिता ने उसका विवाह कर दिया। उसकी पत्नी 'कल्याणश्री' यथानाम तथा गुणवान थी। शायद उसके पूर्व अशुभकर्म का क्षयोपशम था अतः भाग्य ने रत्नशेखर की वासना में बेहोश आत्मा को होश में लाने के लिये ही उसे कल्याणश्री का सत्संग करा दिया था। वह जैन कुल में उत्पन्न सदाचारिणी, धर्मात्मा व विदुषी महिला थी। महाप्रभावक श्री भक्तामर जी का ऋद्धि व मन्त्र सहित पाठ करना उसकी दैनिक चर्या थी। उसने जब अपने पति को ऐसे दुर्गुणों से युक्त पाया तो एक बार को तो अपना माथा ही पीट लिया। परन्तु फिर उसने साहस बटोरा और धर्म का आश्रय लेकर प्रेम, सेवा और समझाने–बुझाने के द्वारा अपने पति को सुधारने का बीड़ा उठाया। धीरे–धीरे रत्नशेखर में कल्याणश्री के सत्संग व सद्प्रयासों से सुधरने के लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगे। उधर ढोंगी जोगी को जब पता चला कि उसके शिष्य को सर्वगुणी पत्नी के रूप में सद्गुरू मिल गया है तो वह बेचैन हो उठा, उसे अपने वासना के धंधे के चौपट होने का भय हो गया। अतः उसने नये–नये चमत्कारों के जादू रत्नशेखर को दिखाने शुरू कर दिये। उदाहरणार्थ वह किसी अंगूठी को आकाश में उड़ता हुआ दिखाकर किसी की मनोनीत प्रेयसी की अंगुली तक भेजने की क्रियाऐं दिखाने लगा। इससे रत्नशिखर का विश्वास जोगी पर पुनः जमने लगा। कल्याणश्री को यह देखकर चिन्ता हुई। फलतः वह जोगी के क्रियाकलापों जबकि इसके केन्द्रबिन्दु थे रत्नशेखर। इस स्थिति में कल्याणश्री ने जोगी के ढोंगी व मिथ्यात्वी प्रभाव को नष्ट करने की योजना बनाई। एक दिन कल्याणश्री ने रत्नशेखर से कहकर जोगी को अपने घर पर भोजन के लिये आमन्त्रण भिजवाया। भोजन कराने के उपरांत कल्याणश्री ने पेयजल को श्री भक्तामर स्तोत्र के 17 वें श्लोक तथा उसके ऋद्धि व मंत्र से मंत्रित किया तथा उस मंत्रित जल को स्वयं पीने के पश्चात् शेष जल पीने के लिये पाखण्डी जोगी के सामने रख दिया। जोगी जल को पीकर भोजन समाप्त कर ही रहा था कि जिनशासन की भक्त गांधारी नाम की दिव्यदेवी आकर उसके सामने खड़ी हो गई। देवी ने एक स्वर्ण अंगूठी कथित जोगी को देकर कहा –'उड़ाओ इसे'। परन्तु वह कीलित अंगूठी क्यों उड़ती ? अब गांधारी देवी ने वह स्वर्ण मुद्रिका स्वयं आकाश में फेंकी तो जहां वह गिरी, वहां एक सुन्दर भव्य जिनालय दृष्टिगोचर हुआ। देवी गांधारी के इस अनोखे व प्रभावी चमत्कार को देखकर जोगी देवी के चरणों में गिर पड़ा। उसने देवी से क्षमा मांगी तथा दूसरों को अपने चंगुल में फंसाने वाली धूर्त विद्या का परित्याग करके वह जिनभक्त बन गया। अपने (कु) गुरू जोगी की यह अवस्था देखकर रत्नशेखर भी अपनी पत्नी के समक्ष बड़ा लज्जित हुआ। उसने जिनालय में जाकर अपने अपराधों का प्रतिक्रमण कर शेष जीवन सत्संगति में बिताने की प्रतिज्ञा की। सही मायनों में अब पत्नी की सत्संगति से रत्नशेखर भोग को छोड़कर योग के रास्ते पर चल पड़ा था। नगरवासी भी जिनभक्त बनकर सुख–शान्ति का जीवन यापन करने लगे।

भावार्थ

हे मुनीश्वर ! आपकी उपमा सूर्य से भी नहीं की जा सकती है क्योंकि सूर्य उदय होकर अस्त होता है, वह राहु के द्वारा ग्रसित किया जाता है । बादलों की ओट में छिप जाता है, किन्तु आपका केवल ज्ञानरुपी सूर्य प्रकट होने पर न तो अस्त होता है, न राहु से ग्रसित होता है और न ही किसी से पराभूत होता है । किन्तु हमेशा एक जैसा ही आलोकित रहता है । अतः आप लोक में अतिशय महिमा वाले ज्ञान-सूर्य हो ।

MEANING

Oh Master of Munis! It is also not possible for us to compare your qualities with the Sun, because Sun rises and sets everyday. You are ever self-luminous and hence rising and settings are not there.

The star of solar energies enlightens only a small part of the universe, and then slowly moves t the other parts, leaving darkness behind. Occasionally, Rahu also eclipses him.

But oh Master of Munis, as you enlighten the whole universe at a single time and as you possess the infinite knowledge as your preaching's (Agamas) can never be challenged by any logical and as your most glorious Shashan (Jain Dharma) can never be shadowed or overcome by other schools of philosophies, you surpass the sun.

शब्दार्थ

मुनिंद्र = हे मुनीश्वर !, कदाचित् = कभी भी, अस्तं = अस्त, न उपयासि = नहीं होते हो, न राहुगम्यः = न राहु से ग्रसित होते हो, सहसा = सहज ही, जगन्ति = तीनों लोकों को, युगपत् = एक साथ, स्पष्टीकरोषि = प्रकाशित करते हो, अम्भोधरो दर = मेघों के द्वारा आपका, निरुद्ध महाप्रभाव = महाप्रभाव रुकता, न = नहीं है, (अतः) लोके = लोक में आप, सूर्यातिशायि = सूर्य से भी अधिक, अतिशययुक्त, महिमा = महिमा वाले, असि = हो ।

नित्योदयं दलित–मोह–महान्धकारं
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति
विद्योतयज्जगदपूर्वशशांकबिम्बम् ।।18।।

शत्रु सैन्य स्तंभक यंत्र–18

ऋद्धि — ॐ ॐीं अर्हं णमो विउयण–यट्ठि पत्ताणं Ãीं Ãीं नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ नमो शास्त्रज्ञानबोधनाय परमर्द्धि प्राप्तिजयंकराय ॐा ॐीं क्रौं श्रीं न म : ।
ॐ नमो भगवते जय विजय मोहय मोहय स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा।
ॐ नमो भगवते शत्रुशैन्यनिवारणाय यं यं यं क्षुर विध्वंसनाय नमः क्लीं ॐीं नमः।

विधि — पवित्र होकर लाल रंग की माला द्वारा 7 दिन तक प्रतिदिन 1000 बार अठारहवां काव्य, ऋद्धि तथा मंत्र स्मरण करते हुए दशांग धूप क्षेपण

वर्तमान समय में आर्थिक व वैज्ञानिक प्रगति तथा पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के कारण देश में संयुक्त परिवार प्रथा समाप्त होती जा रही है। परिवारों के युवा सदस्य विभिन्न विषयों की तकनीकी शिक्षा व प्रशिक्षण प्राप्त करके अलग–अलग कार्यों व व्यवसायों में लग जाते हैं। फलतः वे अपने पैतक व्यवसाय को बहुत कम अपनाते हैं। किन्तु भक्तामर स्तोत्र के 18 वें काव्य से सम्बन्धित सत्य घटना उस जमाने की है जब एक पुत्र अपने पिता के पद अथवा व्यवसाय का स्वाभाविक अधिकारी होता था। उदाहरणार्थ – एक राजा का पुत्र कितना ही निकम्मा, कायर एवं अयोग्य क्यों न हो, पिता की मृत्यु के बाद राजा की गद्दी पर बैठेगा ही। राज्य के पुरोहित के पुत्र के लिये चाहे काला अक्षर भैंस बराबर हो, परन्तु वह बनेगा राजपुरोहित ही। हुआ यह कि कलिंग देश की बरबर नगरी में राजा चन्द्रकीर्ति शासन करते थे। भाग्यवश उनके राज्यमंत्री सुमतिचन्द्र का स्वर्गवास हो गया। परंपरानुसार ही राजा ने मंत्रीपुत्र भद्रकुमार को मंत्री पद सौंपने के लिए बुलाने भेजा। दरबार में जाने से पूर्व भद्रकुमार की माँ उसे समझाने लगी –'बेटा, राजदरबार में अदब से जाना, अपनेपद का ध्यान रखना, क्योंकि पिता की मृत्यु के बाद तुझे ही मंत्री बनना है।' पर सिखाने मात्र से पूत स्वर्ग नहीं जाया करते, स्वर्ग तो अपने अच्छे कर्मों से ही जाया जाता है। किन्तु भद्रकुमार मन में बड़े चिन्तित थे। कारण, 16 वर्ष के भद्र कुमार ने 12 वर्ष तो खेलकूद और पिता की गोद में ही बिताये थे। पिता के प्रयासों के बाद भी अपने पढ़ने लिखने में कोई रुचि नहीं ली थी। फलतः पिता के निर्देशानुसार 4 वर्ष तक वह पशुओं की देख–रेख करता रहा था। ऐसे हीन संस्कारों के साथ भद्रकुमार राजदरबार में पहुंचा। वहां दरबार का सुसभ्य वार्तालाप उसे कुछ समझ न आया। अतः कोने में बैठा रहा। तभी राजा ने पूछा –'भद्रकुमार ! अपने पिताश्री के मंत्रीपद का भार वहन कर सकोगे ?'' भद्रकुमार ने उत्तर दिया –''राजन ! मेरी मां भी कहती थी कि मुझे मंत्री बनना है।'' भद्रकुमार के इस उत्तर पर सब दरबारी हंस पड़े, क्योंकि इस उत्तर से उसकी योग्यता व ज्ञान की पोल जो खुल गई थी। बात यह है कि व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप को अधिक छिपा नहीं सकता। राजा ने कहा –'भद्रकुमार ! ज्ञान के बिना तुम मंत्रीपद के गुरुतर भार को कैसे उठा सकोगे ?' भद्रकुमार को अब तक अपनी अयोग्यता तथा दरबार के सभ्य वातावरण का ज्ञान हो गया था, उसने कहा – 'राजन ! पिताश्री के लाख प्रयासों के बाद भी मैं साहित्य व व्याकरणादि से कोसों दूर रहा, मैं इस योग्य नहीं कि मंत्री बन सकूं अतः मुझे राजदरबार में कोई अन्य कार्य दे दीजिये ताकि मेरी आजीविका चल सके।' इस पर राजा ने कहा –'मूर्खों व अज्ञानियों के लिये मेरे दरबार में कोई स्थान नहीं है। यदि यहां स्थान चाहते हो तो अध्ययन द्वारा ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।'' इतिहास साक्षी है कि कालिदास, तुलसी, बाल्मीकि आदि जितने भी विद्वान हुए हैं, सभी फटकार सुनकर ही सत्पथ की ओर बढ़े थे। भिखारी या राजा, शिक्षित हो या अशिक्षित, मूर्ख हो या विद्वान, कमजोर हो या बलवान, अपनी निन्दा किसी को अच्छी नहीं लगती। निन्दा या फटकार से एक बार को तो व्यक्ति तिलमिला ही उठता है। भद्रकुमार भी फटकार और अपमान का कड़वा घूंट पीकर चल पड़ा–कुछ कर दिखाने के लिये। इधर–उधर भटकते हुए वे एक वीतरागी नग्न दिगम्बर मुनिराज की सेवा में जा पहुँचे। उनकी चरण–रज माथे पर लगाकर भद्रकुमार ने अत्यन्त विनयपूर्वक उनसे निवेदन किया –''श्री भगवन् ! मैं अज्ञानी हूं, मुझे ज्ञान दीजिये जिससे कि मैं अपने पिता के मंत्रीपद को पा सकूं। ज्ञान के अभाव के कारण राजदरबार मे मैं बड़ा अपमानित हुआ हूं भगवन् ।'' दयालु मुनिराज ने भोले भद्रकुमार के मन की पीड़ा को समझ कर उपदेश दिया –''मिथ्यात्व को छोड़कर सम्यक्त्व को अपनाओ वत्स ! भगवान जिनेन्द्र और उनकी वाणी पर श्रद्धा रखो।'' इसके साथ ही मुनिराज ने महाप्रभावक श्री भक्तामर स्तोत्र का 18 वां श्लोक (नित्योदयं दलित मोह महान्धकारं..) उसे पढ़कर सुनाया, समझाया, याद कराया और कहा – इस श्लोक का ऋद्धि व मन्त्र सहित विधिपूर्वक प्रतिदिन जाप व पाठ करने से तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण होंगे। भद्रकुमार भव्य जीव थे। वे तीन दिन तक लगातार जिनभक्ति में तथा श्री भक्तामर स्तोत्र के 18 वें श्लोक के ऋद्धि व मन्त्रसहित जाप में लगे रहे। तभी उन्होंने जिनशासन की भक्त व्रजा देवी को अपने समक्ष प्रकट हुआ देखा। देवी ने कहा –'आज्ञा कीजिये, मेरे योग्य कार्य?' भद्रकुमार ने कहा –'देवी मुझे वरदान दो कि मैं विद्वान बन सकूं।' देवी वरदान देकर अदृश्य हो गई अब भद्रकुमार ने स्वयं में पूर्ण परिवर्तन पाया, वे पूर्ण ज्ञानी बन चुके थे। राजदरबार में पहुंचे तो उनके ज्ञान व वार्तालाप से राजा व दरबारी आश्चर्यचकित थे। इतने शीघ्र विद्वान बन जाने का कारण उनकी समझ में न आया। आखिर, राजा इतनी जल्दी विद्वान बन जाने का कारण पूछ ही बैठे। अत्यन्त विनय के साथ भद्रकुमार ने उत्तर दिया –'राजन ! जैनधर्म के प्रभाव से तो बड़ी बड़ी ऋद्धियां और महान् ज्ञान प्राप्त हो जाता है। फिर इस शास्त्रीय ज्ञान की तो बात ही क्या है। यह देख व सुनकर राजा तथा सभी दरबारी जैन धर्म से प्रभावित हो जिनभक्त बन गये। भद्रकुमार को मंत्रीपद सौंपकर राजा ने स्वयं को धन्य किया।

भावार्थ

हे जिनेन्द्र देव ! आपका मुख कमल रुपी चन्द्रमा रात दिन उदय रहते हुये, मोहरुपी महा अंधकार को नाश करने वाला, अत्यन्त दैदीप्यमान है । आपका मुखमण्डल रुपी चन्द्रमा न राहू के मुख में प्रवेश करता है, न ही बादलों से छिपता है किन्तु समस्त संसार को एक साथ प्रकाशित करता हुआ शोभायमान होता है । अतः आपका मुख कमल रुपी चन्द्रमा अपूर्व है ।

MEANING

Oh God ! Since you can never be compared with the Sun, can we now look for the Moon?

Alas! Moon rises and sets at indefinite times; it shines in the night only. God, you are ever-risen and showing the path of salvation to your devotees during the day and night alike.

All deserving should suffering from their illusions from time immemorial are benefited by your preaching's and by undertaking the penance had destroyed their pitch darkness within no time.

The moon is eclipsed by Rahu time and again; but oh my Lord, you are so good to mankind, that you eclipse the fallacies and ill-thoughts for ever.

The black spots are apparent on the face of the moon; whereas, while we see you, your clean personality glows with cool and soothing halo. Moon looks pale in front of you!

Moon rises on one end of the earth and sets on the other; whereas you spread your aura in entire universe (Triloka) at all times.

शब्दार्थ

तव =आपका, मुखाब्जम् = मुख-कमल, नित्योदयम् = सदैव उदय रहने वाला, दलित-मोहमहान्धकारम् = मोह रुपी अन्धकार का नाश करनेवाला, राहुवदनस्य = राहु मुख के, न गम्यम् = गम्य नहीं है, न वारिदानाम् = न मेघों के, गम्यम् = गम्य है, जगत् = जगत को, विद्योतयत् = प्रकाशित करता हुआ, अपूर्व = अनोखे, शशांकबिम्बम् = चन्द्रमा के समान, विभ्राजते = सुशोभित हो रहा है ।

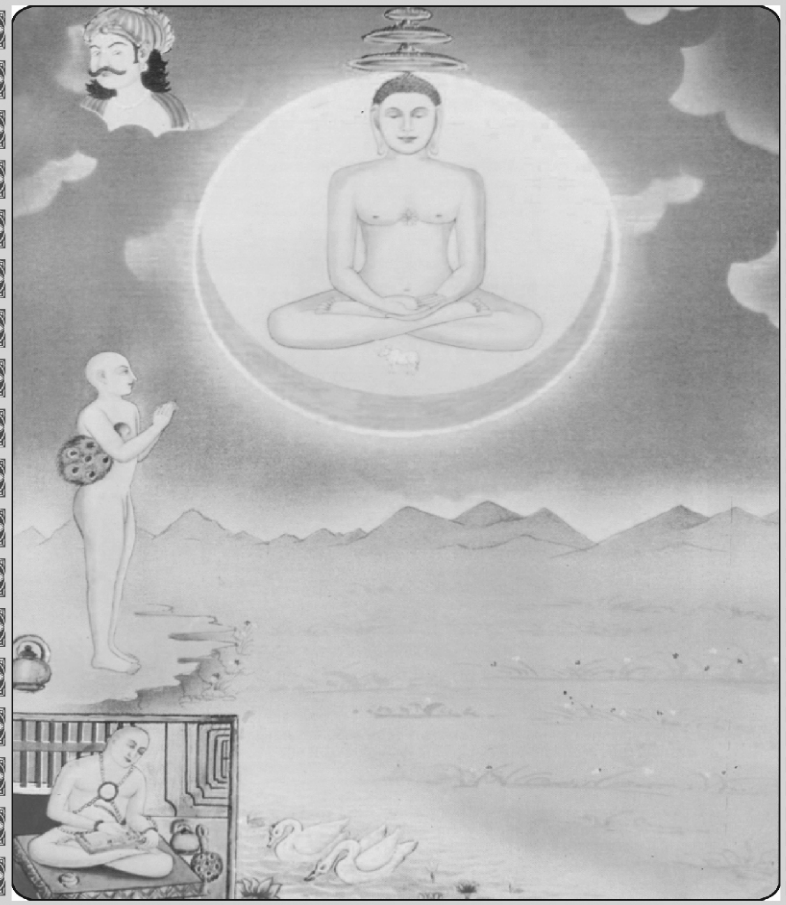

किं शर्वरीषु शशिनाऽि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमःसु नाथ ।
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः ।।19।।

तंत्र प्रभाव उच्चाटक यंत्र–19

ऋद्धि — ॐ ॐीं अर्हं णमो विज्जाहराणं ÃÃं ÃÃं नमः स्वाहा।
मन्त्र — ॐ ॐां ॐीं ॐू ॐः य क्ष ॐीं वषट् नमः स्वाहा।
विधि — प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण करे तथा मन को एकाग्र करके 19 वां काव्य, ऋद्धि तथा मंत्र का 108 बार स्मरण करना चाहिये।

आखिर राजा ने सुखानंद कुमार को छः माह सख्त कैद की सजा सुना ही दी और जेल में डाल दिया। हस्तिनापुर नगर की गली–गली में यह समाचार छूत के रोग की भांति फैल गया। सभी लोग आश्चर्यचकित थे कि सुखानंद कुमार सरीखे धर्मनिष्ठ, ईमानदार व सम्यग्दृष्टि नगर जौहरी को ऐसा कडा दण्ड। लोग चर्चा करते – सुखानन्द कुमार के साथ तो कुछ अन्याय हुआ लगता है, जरूर इसके पीछे कोई षड़यंत्र है जिसका भेद समय आने पर अवश्य खुलेगा और दूध का दूध, पानी का पानी हो जायेगा। तब 'सुखानंद के माथे पर काला टीका लग गया' – ऐसा कहने वाले लोग देखेंगे कि उनके माथे पर लगा टीका सच्चे न्याय और विजय का प्रतीक 'रोली का मंगल टीका बन जायेगा। जेल की अग्नि परीक्षा को सुखानन्द कुमार कभी तो अपने किसी पूर्व अशुभकर्म का उदय मानता और कभी सोचता कि अनेक महान् पुरुषों की जन्मभूमि जेल ही तो रही है। आज हम देखते हैं कि कारावास में वर्षों तक सड़ने वाले नेता आज राष्ट्र और सत्ता के कर्णधार हैं। बात यह है कि मिलावट करना आज आम बात है, पर मिलावट का यह रोग नया नहीं बल्कि उतना ही पुराना है, जितनी कि मनुष्य की आसुरी प्रवृत्तियां। हुआ यह कि नगर के प्रमुख स्वर्णकार रत्नज्योति ने ही राजा सूरपाल की आंखों में धूल झोंक दी थी। उसे राज–परिवार के लिये आभूषण बनाने थे। सो उसने सारे के सारे हीरे, माणिक, मोती, पन्ना व स्वर्ण आदि असल जवाहरों को तो अपने घर में रख लिया और नकली धातुओं के आभूषण बनाकर राजा के समक्ष प्रस्तुत करने ले चला। बात यह है कि नक्कालों, मायावियों को जब ईश्वर का भय नहीं रहता, तो उन्हें राजा का ही क्यों होने लगा ? उस मायावी स्वर्णकार रत्न–ज्योति ने भी सोच लिया था कि अगर राजा ने अपनी पैनी दृष्टि से इन नकली जेवरों की पहचान कर ली, तो मैं कह दूंगा कि महाराज ! मैंने तो शुद्ध व असली आभूषण बनाकर जौहरी सुखानन्द कुमार को दिये थे, उन्होंने ही आपके साथ धोखा किया है। और यही हुआ भी। राजा की पैनी दृष्टि ने नकली जेवर पहचान लिये। स्वर्णकार के तर्कों पर राजा ने भी विश्वास कर लिया और जौहरी सुखानन्द कुमार को दरबार मे बुलाकर पूछना भी उचित व आवश्यक न समझा। रत्न ज्योति ने अपना रंग राजा पर जमते देखा तो बोला –'राजन ! मैं तो शुरू में ही आपको टोकने वाला था कि ये जेवर तो नकली हैं, किन्तु वह सोचकर रह गया कि महाराज कहीं यह न कहने लगें कि मेरी बुद्धि से होड़ लगाने वाला तू कौन ?' आखिरकार, बदनीयत व नक्काल स्वर्णकार की युक्ति काम कर गई और राजा ने उस पर विश्वास करके, बिना कोई अन्य जांच–पड़ताल किये नगर–जौहरी सुखानन्द कुमार को जेल में डाल दिया। सुखानन्द कुमार जेल में तीन दिन तक बिना अन्न–जल ग्रहण किये पड़े रहे। किन्तु इसका उनके मन में कोई दुःख या क्षोभ नहीं था। महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र पर उनकी अगाध श्रद्धा थी। उन्हें ज्ञात था कि प्रातः स्मरणीय श्री मानतुंगाचार्य पर भी तो एक षड़यंत्र तहत ऐसी ही विपत्ति पड़ी थी। उन्हें अड़तालीस तालों वाली जेल की कोठरी में रखा गया था, किन्तु राजा भोज उनका कुछ भी न बिगाड़ सका था। फिर, मैं भी तो सोलह आने सच्चाई पर हूँ। मेरे सम्बन्ध में भी दूध का दूध, पानी का पानी अवश्य होगा। अतः भक्तामर स्तोत्र पर अगाध श्रद्धा के कारण सुखानन्द कुमार ने पूर्ण भक्तिमय होकर श्री भक्तामर स्तोत्र के उन्नीसवें श्लोक का पाठ ऋद्धि व मंत्र सहित करना शुरू कर दिया। यद्यपि नगर में उस समय बने माहौल में सुखानन्द कुमार एक बेइमान, बदनीयत और अव्वल दरजे का स्वर्ण–तस्कर प्रचारित हो रहा था, किन्तु उसकी पवित्र आत्मा अन्तर से पुकार–पुकार कर यह कह रही थी कि सोना (स्वर्ण) अग्नि में तपाये जाने पर शुद्ध कुंदन बनकर ही निकलता है। सीताजी का पतिव्रत धर्म भी तो अग्नि–परीक्षा में तपने पर निखर उठा था। निश्चित ही, जेल की अग्नि–परीक्षा के बाद मेरी आत्मा भी पवित्र होकर ही सबके समक्ष पुनः प्रकट होगी। जेल की अंधेरी कोठरी में एक रात्रि जब वह सो रहा था तब जैनशासन की अधिष्ठात्री देवी जम्बूमति ने आकर निद्रावस्था में ही उसे उठाकर उसके घर ले जाकर रख दिया। दूसरे दिन राजा सूरपाल ने देखा कि जेल का दरवाजा खुला पड़ा है। पहरेदार सोये पड़े हैं और जौहरी सुखानन्द अपनी जवाहरातों की दुकान पर निश्चित बैठे हुए व्यापार में व्यस्त हैं। राजा समझ गया कि पिछली रात्रि के अन्तिम प्रहर में मैंने जो स्वप्न देखा था, वह यही तो था। बस फिर क्या था ? राजा सूरपाल जैनधर्म का अटल श्रद्धानी बन गया। उसने षड़यन्त्रकारी स्वर्णकार रत्नज्योति को अपने किये कुकर्म का फल भुगतने के लिये जेल में डाल दिया। अतः लालसाएं जहां शुरू होती हैं, वहा धर्म समाप्त होता जाता है। मन जिस पदार्थ से परिचित होता है उससे सम्बन्धित विचार हमारे सामने मंदिर में आते हैं, क्योंकि विचार भी होशियार होते हैं, विचारों की भी धूल हमारे ऊपर गिरती है।

भावार्थ

हे स्वामिन ! आपके मुख रुपी चन्द्रमा के दिव्य प्रकाश के रहे हुये दिन में सूर्य की एवं रात्रि में चन्द्रमा की क्या आवश्यकता है ? अर्थात् कुछ नहीं ।

जिस प्रकार धान्य के खेतों के पक जाने पर जल के भार से झुके हुये बादलों का क्या प्रयोजन है ? अर्थात् कुछ भी नहीं ।

MEANING

Oh Lord! What is the use of the moon in the night; and that of the Sun in the daytime! Is it necessary to depend on Sun and moon to dispel the darkness?
No… No… No! On he contrary, they are not aware that the enlightenment which has come out of you has already removed the blinding darkness within no time! They have nothing to do.
Those black clouds are filled with water and are ready to rain. But where is the need of rain for the harvest of rice grown-up in the field!
Lord, you have already cleared the darkness of ignorance.
And so, oh Sun and Moon! Your process of rising and setting as usual is now a mere routine! And you have nothing to do guide the living beings.

शब्दार्थ

नाथ = हे स्वामिन !, तमःसु = समस्त अन्धकार, युष्मन् = आपके, मुखेन्दु = मुख चन्द्र द्वारा, दलितेषु = नष्ट होने पर, शर्वरीषु = रात्रि में, शशिना = चन्द्रमा से, किम् = अथवा, अन्हि = दिन में, विवस्वता = सूर्यसे, किम् = क्या प्रयोजन है ? जीव लोके = संसार मेंख निष्पन्न = पके हुये, शालिवन शालिनि = धान के खेतो में, जल भारनम्रैः = जल के भार से झुके हुए, जलधरैः = बादलों से, किम् = क्या प्रयोजन है ?

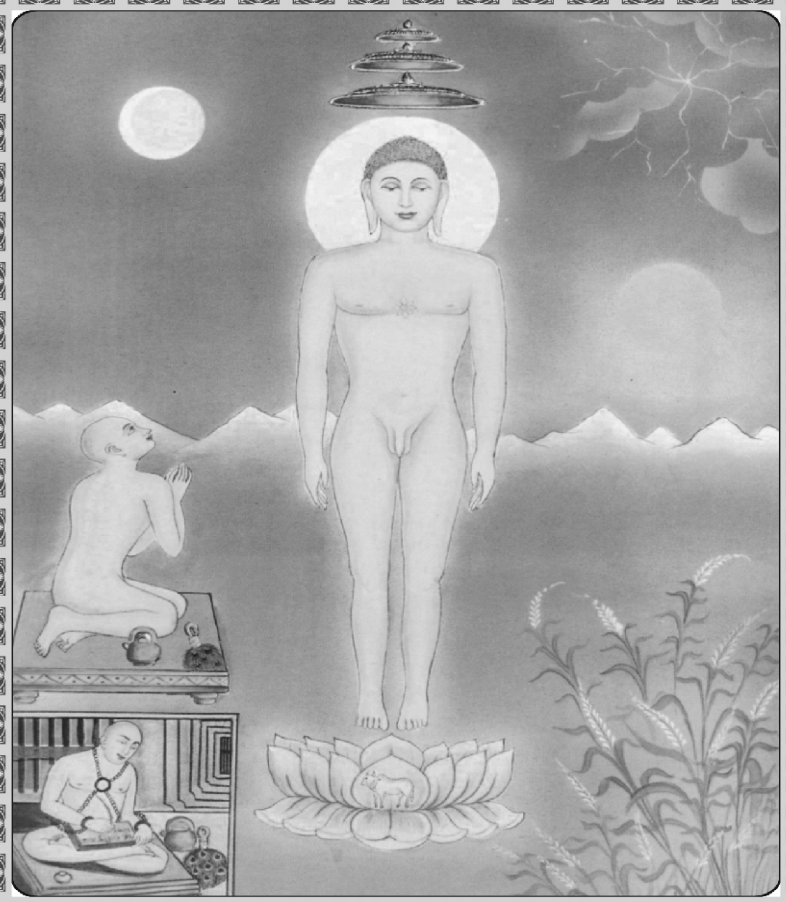

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु ।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ।।20।।

विजयलक्ष्मी प्रदायक यंत्र–20

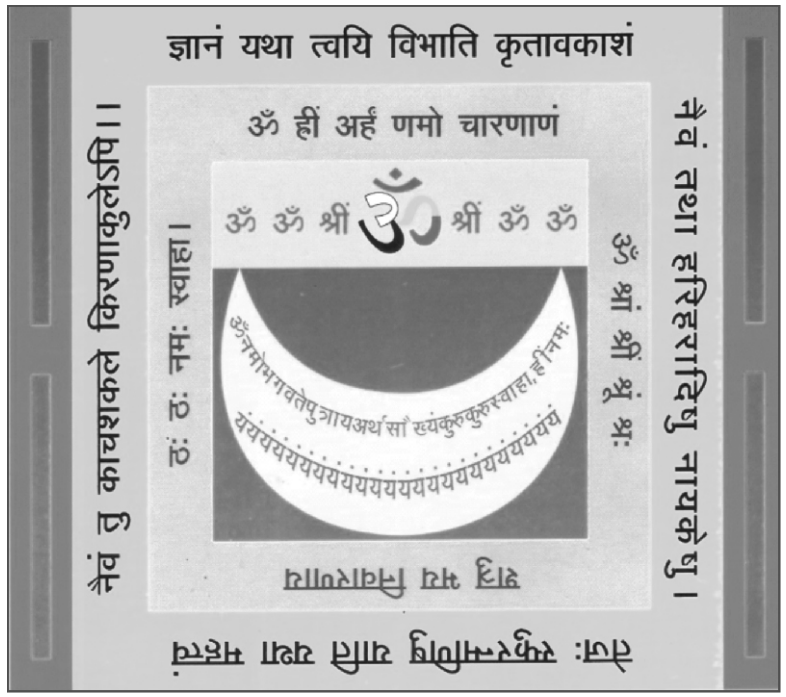

ऋद्धि — ॐ ॐ अर्हं णमो चारणाणं ॐ ॐ नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ श्रां श्रीं श्रूं श्रः शत्रु भय–निवारणाय ठः ठः नमः स्वाहा।
ॐ नमो भगवते पुत्रार्थसौख्यं कुरु कुरु स्वाहा, ॐ नमः।

विधि — प्रातः पवित्र होकर शुद्ध वस्त्र पहिनकर यंत्र स्थापित कर पूजा करें पश्चात् पूर्वाभिमुख बैठकर नौ बार णमोकार मंत्र पढ़े तदुपरान्त 20वां काव्य, ऋद्धि तथा मंत्र का 108 बार स्मरण करते हुए उतने ही सुगंधित सुमन प्रतिदिन चढ़ाना चाहिये।

सेठ अडोल दत्त जैनधर्म के दृढ़ श्रद्धानी व सम्यग्दृष्टि पुरुष थे। धर्म के प्रति उनके श्रद्धान की नगर के सभी लोग प्रशंसा करते थे। परन्तु सेठ जी का इकलौटा पुत्र विष्णुदास सम्यग्दृष्टि पिता का सानिध्य व सहयोग पाकर भी घोर मिथ्यात्वी था तथा उनके घर में चिराग तले अंधेरा बना हुआ था। इसी प्रसंग में एक दिन नगर में साधु महाराज पधारे। उनकी लम्बी–लम्बी जटाएँ उनके मुखमण्डल की शोभा तो बढ़ा रही थी किन्तु वे वास्तविक न होकर पशुओं के बालों पर काला पेंट करके फर्जी रूप से लगाई हुई थीं। सच्चाई यह थी कि उन साधु महाराज का मिथ्या व मलिन चरित्र बनावटी जटाओं व ढोंगी कृत्यों की काली चादर से ढंका रहता था। साधु महाराज ने दूर से सेठपुत्र विष्णुदास को अपनी ओर आता देख सोचा कि सोने की चिड़िया पिंजड़े में फंसने आ रही है, तो श्वास रोककर योगासन में वैसे ही बैठ गये जैसे बगुला मछलियों को देखकर ध्यानस्थ हो जाता है। विष्णुदास ने वहाँ पहुंचकर साधु महाराज को प्रणाम किया और कहा –'महाराज कुछ उपाय बताये ताकि संसार–समुद्र को पार का स्वर्गलाभ प्राप्त कर सकूँ।'' महाराज बोले' –''वत्स ! तुम्हारा कथन तो ठीक है, पर तुम भक्त लोग हम सत्संगी साधुओं के भोजन व वस्त्र आदि की चिन्ता न कर हर समय उपदेश–उपदेश की ही रट लगाते रहते हो। यदि देश, धर्म और भक्तों की वही दशा रही, तो हम साधु लोग हिमालय पर कुटिया बनाकर भूखे पेट ही रामनाम का जाप करते रहेंगे और फिर तुम्हारी इस म्लेच्छ पुरी में कभी कदम भी न रखेंगे।' साधु महाराज का यह उपदेश विष्णुदास पर अपना रंग जमा चुका था। हफ्तों तक वे उनकी सेवा में लगे रहे। भोजन वस्त्र, तंबाकू, गांजा आदि सबकी व्यवस्था का भार विष्णुदास ने ही उठा रखा था। जो विष्णु दास पिता के लाख कहने पर भी अपने व्यापार की उधारी के रुपये वसूल करने नहीं जाता था, वह साधु के कहने से नगर में स्कूल खोलने के नाम पर घर–घर चंदा मांगते फिरते थे और इस हेतु उन्होंने हजारों रुपये एकत्र कर कथित साधु के पास जमा कर दिये थे। साधु महाराज खुश थे। अब वे एकत्र किया हुआ हजारों रुपया हड़पने के उपाय की खोज में थे, शीघ्र ही उन्हें उपाय मिल गया। एक दिन उपदेश देते हुए बोले –'धर्मानुरागी भाइयों, आप लोगों के बीच हमारा धर्मसाधन पूर्ण हुआ, अब हम अन्य स्थान पर जाना चाहते हैं – क्योंकि शास्त्रों में कहा है कि साधु और पानी यदि अधिक समय तक एक स्थान पर रुका रहे तो दूषित हो जाता है। साधु किसी स्थान विशेष से मोह नहीं करता क्योंकि मोह उसके पतन का कारण बन जाता है।' अंततः भक्तों के रुकने के आग्रह के बावजूद साधु महाराज चल पड़े तथा विष्णुदास को अपना प्रमुख शिष्य बनाकर साथ ही ले गये। दूसरे नगर में हर समय गुरू के साथ रहकर विष्णु दास ने अपने (कु) गुरू के वास्तविक जीवन को देखा तो उसे उनसे सख्त नफरत हो गयी और वह वहां से नौ दो ग्यारह होने की फिक्र में रहने लगा। एक दिन कथित साधु ही शिष्य से पीछा छुड़ाकर एकत्रित रकम लेकर रातों रात रफू–चक्कर हो गये। इसे देखकर उसे साधुओं के ढोंगीपन से बहुत ही घृणा हो गई। उधर, अडोलदत्त एकमात्र पुत्र के वियोग से चिन्तित थे। एक दिन उनके आश्चर्य की सीमा न रही, जब उनका पुत्र उनके चरणों में गिरकर कह रहा था –'पिताजी मैं पथभ्रष्ट हो गया था मुझे क्षमा कर दीजिये ।' पिताजी खुश हुए कि चलो अच्छा हुआ बेटा मिथ्यात्वीव ढोंगो साधुओं के भ्रमर जाल से बाहर निकल आया। फिर, एक दिन नगर में एक वीतरागी दिगम्बर मुनिराज पधारे। सेठ पुत्र को उनके पास ले गये विष्णुदास मुनि के मुखमंडल पर दैदीप्यमान तेज से प्रभावित तो हुआ, परंतु वह ढोंगी साधु को देख चुका था अतः उसका माथा वीतरागी मुनि के समक्ष भी नहीं झुका। उसने मुनिश्री के परीक्षण हेतु एक प्रश्न किया –'संसार से छूटने का उपाय बातइये महाराज।' कृपालु मुनि ने कहा कि वत्स, शरीर और आत्मा अलग–अलग हैं, इस भेद को समझो। मन से राग व द्वेष कम करो। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पांच पापों से बचो, क्रोध–मान–माया–लोभ, इन चार कषायों को मन में न आने दो और जीवन के हर क्षेत्र में यथाशक्ति संयम धारण करो। तुम्हारी आत्मा इससे पवित्र होगी और तुम संसार से छुटकारा पाने की दिशा में आगे बढ़ सकोगे।' विष्णुदास बड़ा प्रभावित हुआ और उसे जीवन में सही राह मिलती सी भी दिखाई दी। किन्तु ढोंगी साधुओं के प्रति मन में उपजा अविश्वास अभी पूरी तरह निकला नहीं था अतः बोला –'महाराज ! कोई चमत्कार दिखाओ, जिससे धर्म व साधुओं पर मेरा विश्वास दृढ़ हो।' मुनिश्री ने श्री भक्तामर स्तोत्र का 20 वां श्लोक ऋद्धि व मंत्र सहित उसे सिखाया और कहा कि सभी के समक्ष इस श्लोक का ऋद्धि व मंत्र सहित पाठ कर अपना मनोरथ सिद्ध करो। अगले दिन राजदरबार में सभी के समक्ष विष्णुदत्त ने भक्तिपूर्वक पाठ किया। तभी जिनशासन की भक्त भृगुणी देवी वहां उपस्थित हुई तथा विष्णुदास को अष्ट ऋद्धियां प्रदान की। सभी जयजयकार कर उठे। विष्णुदास सभी के साथ जंगल में गये और उन्हीं मुनिराज के चरणों में गिरकर बोले –'प्रभु आज देश भर में पाखंडी साधु पेट–पूजा के उद्देश्य से धूनी रमाकर मिथ्यात्वी तप कर रहे हैं, ऐसे समय में आपने मिथ्यात्वी कुगुरू से बचाकर मेरी आंखें खोल दीं।

भावार्थ

हे ज्ञानसूर्य विभो ! पूर्ण रुप से विकसित लोक-अलोक को जाननेवाला केवल ज्ञान जैसा आप में शोभायमान है, वैसा ज्ञान संसार के ब्रह्मा, वष्णि आदि लौकिक देवताओं में नहीं है ।

झिलमिलाती हुई बहुमूल्य मणियों में जैसी कान्ति है, वैसी कान्ति सूर्य की किरणों से चमकते हुय काँच के टुकड़ों में कैसे हो सकती है ? अर्थात नहीं हो सकती है ।

MEANING

Lord! You are the ocean of pure and exclusive enlightenment. All your attachments are gone and hence you belong to none and no one belongs to you. All the desires of yours have perished and hence you have no friends or foes. You are not bound by anyone, nor do you bind anyone!

It is therefore that you see the world as it is. It is therefore that your enlightenment is free of all preconditions and purely independent. This is the very reason of our very distinctive respect to you. Though we do not have any hate or disregard for Hari (Krishna) & Hara (Mahadev) or any spiritual or religious leader, but the imperfectness of their knowledge and their inclination towards attachment and hatred do not inspire us to follow their path, but that of the Jineshwara.

Lord, your pure enlightenment is the outcome of total awareness and total detachment.

Look at that glowing halo! Naturally, a piece of glass or stone cannot shine as much as a jewel. Glass and diamond do reflect; but the reflection from a glass is not as bright as the diamond and jewel.

शब्दार्थ

कृतावकाशं = पूर्ण रुप से विकसित, ज्ञानं = ज्ञान, यथा = जैसा, त्वयि = आप में, विभाति = सुशोभित हो रहा है, एवम् = वैसा, हरि = विष्णु, हर = शिव, आदिषु = आदि, नायकेषु = नायकों में, न = नहीं है, यथा = जैसा, स्फुरन् = दैदीप्यमान, तेजः = प्रकाश, मणिषु = मणियों में, याति = प्राप्त होता है, तथा = वैसा, किरणा कुलेऽपि = सूर्य की किरणों से चमकते हुये भी, काचशकले = कांच के टुकड़े में, न विभाति = सुशोभित नहीं होता है ।

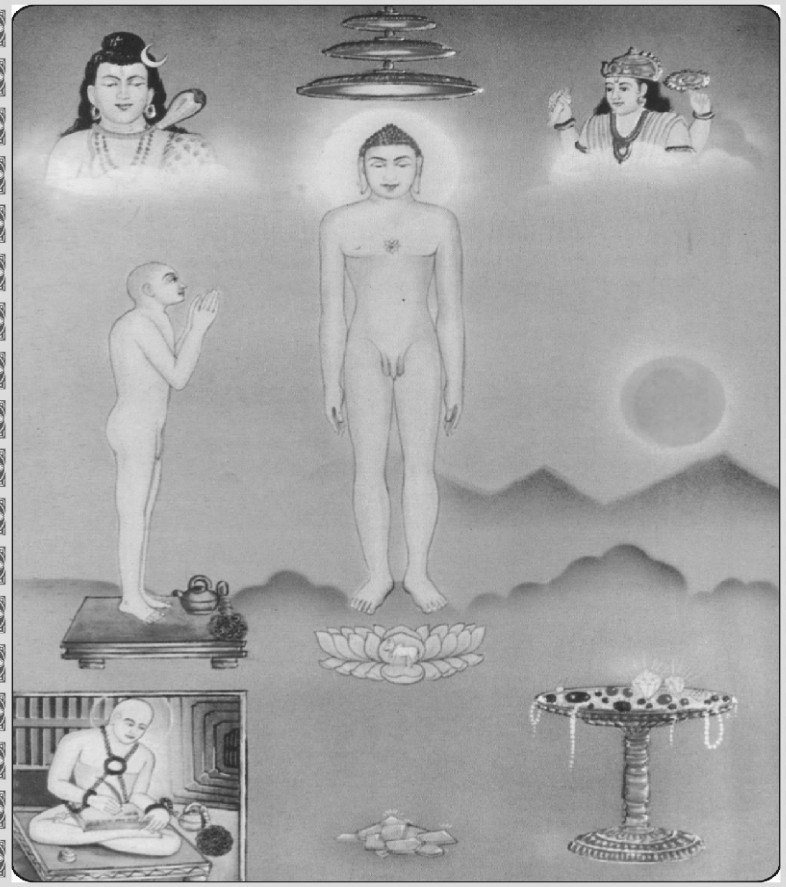

मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ।।21।।

सर्वाधीन कारक यंत्र–21

ऋद्धि – ॐ ॐ अर्हं णमो पण्णसमणाणं ÃÃ ÃÃ नमः स्वाहा।

मन्त्र – ॐ नमो भगवते शत्रुभयनिवारणाय नमः। ॐ नमः श्रीमणिभद्रजय–विजय अपराजिते सर्वसौभाग्यं सर्वसौख्यं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि – पवित्र होकर लाल वस्त्र धारण कर लाल माला द्वारा 42 दिन तक प्रतिदिन 108 बार 21वां काव्य, ऋद्धि तथा मंत्र का स्मरण करते हुए 108 पुष्प चढ़ाना चाहिये।

बसन्त ऋतु में प्रकृति श्रृंगार की मनोरम छटा बिखेर रही थी। बड़े–बड़े पर्वत तथा वृक्ष फूलों व पत्तों का हरा व रंग बिरंगा परिधान पहनकर दर्शकों का मन मोह रहे थे। पपीहे की पीहू–पीहू, कोयल की कुहू–कुहू तथा मेंढकों की गान–ध्वनि के स्वर सभी को बड़े कर्णसुखद लग रहे थे। कहीं मयूरवृन्द नृत्य कर रहे थे, तो कहीं गगन–विद्युत की चमक के बीच मेघों का गंभीर गर्जन इन्द्रदेव के सितार वादन जैसा लग रहा था। बसन्त ऋतु के ऐसे सुहावने वातावरण में श्रीधर और रूपश्री पाणिग्रहण के सूत्र में बंध चुके थे। इनमें श्रीधर की रुचि धर्म में नहीं थी, वह तो धर्म को पूर्वजों की बपौती और धर्म के नियमों को ढोंग मानता था। किन्तु उसकी पत्नी रूप श्री जैनधर्म में दृढ़ श्रद्धा रखने वाली धार्मिक गृहिणी थी। रूपश्री का प्रतिदिन जिनदर्शन के बाद ही अन्नजल लेने का नियम था। वह प्रतिदिन ससुराल गृह से 5 मील दूर स्थित जिनमंदिर जाती और दर्शन करने के बाद ही अन्न ग्रहण करती थी। विवाह के बाद नौ दिन तक तो यह सब क्रियायें ठीक–ठाक चलती रहीं, किन्तु दसवें दिन तो आकाश में घनघोर वर्षा की झड़ी ही लग गयी तीव्र वर्षा से नगर के विभिन्न क्षेत्रों की हलचलें शान्त सी हो गई। श्रीधर के सभी परिवारीयजन मध्यान्ह का भोजन कर चुके थे, किन्तु रूपश्री अभी तक निराहार ही थी क्योंकि घनघोर वर्षा में नगर से 5 मील दूर जिनालय में दर्शन हेतु जाना उसके लिये टेड़ी खीर थी। सास मां ने आकर कहा – 'बहुरानी शाम को जिनमंदिर चलेंगे, अभी तो जाना संभव नहीं है अतः तुम भोजन कर लो।' किन्तु जैन धर्मावलम्बी तो लिए हुए व्रत को प्राण–पण से निभाते हैं। उधर, प्रकृति तो मानों क्रोधित हो उठी थी, या यह कहिये कि वह रूपश्री की प्रतिज्ञा निभाने की भावना और क्षमता की परीक्षा ले रही थी। घनघोर व मूसलाधार वर्षा एक–दो दिन नहीं, लगातार सात दिन तक जारी रही। उससे बड़े–बड़े विशाल भवन जलमग्न हो चुके थे। गाँव के गाँव बाढ़ से घिर गये थे। जिनमंदिर भी बाढ़–क्षेत्र के बीच में आ चुका था। अंततः सात दिन बाद वर्षा थमी तो सात दिन से निराहार रूपश्री दर्शन हेतु देवालय की ओर चली। किन्तु यह क्या ? बीच में पड़ने वाली नदी की बाढ़ ने उसे बीच में ही रोक दिया। देवालय के चारों ओर भी दूर से जल ही जल फैला हुआ दिखाई दे रहा था। आखिर निराश होकर रूपश्री का सब परिवार घर वापिस लौट आया। श्वसुर जी आकर समझाने लगे – ''बहूरानी! सात दिन के निर्जल उपवास से तुम्हारी कुन्दन सी काया कैसी मुरझा गयी है। अब और हठ मत करो बेटी। अगर तुम्हारा कुछ अशुभ हो गया, तो न्यायालय में मैं क्या जवाब दूंगा ? लोग क्या मुझ नगरश्रेष्ठि को सन्देह की दृष्टि से नहीं देखेंगे ?'' सासु ने भी आकर समझाया कि श्वसुर जी तो न्यायालय में जवाब देने की बात कह रहे हैं। पर मैं भगवान को क्या जवाब दूंगी ? लोग मुझपर आरोप लगायेंगे कि सासु माँ होकर भी बहू को सुरक्षित न रख सकी मैं ?'' किन्तु सात दिन से निराहार रहने वाली रूपश्री आज भी अपने व्रत व विचारों पर दृढ़ रही। उसने सभी को समझाया कि प्रण और प्राण में कोई तालमेल नहीं हो सकता। उसे प्राणों का कोई मोह नहीं, केवल प्रण निभाने की ही चिन्ता है। वर्षा और बाढ़ से नगर भर में चिन्ता का वातावरण था। सभी बाढ़ पीड़ित जन संकट टालने के लिये अपने–अपने इष्टदेव की आराधना कर रहे थे। धर्म में विश्वास न रखने वाले श्रीधर को भी प्रकृति के आगे सिर झुकाना पड़ा। पत्नी के कहने से वह पुस्तक लेकर महाप्रभावक श्री भक्तामर स्तोत्र का पाठ एकाग्रचित्त व भक्ति से करने लगे। पाठ के बीच जब वह इक्कीसवें श्लोक (मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा...) पर आया तो यहीं रुका और काफी देर तक इसी श्लोक को बार–बार दोहराता रहा। तभी जिनशासन की भक्त तथा अनेक अलंकारों से विभूषित ''मीरा देवी'' ने प्रकट होकर कहा – 'वत्स ! मैं प्रसन्न हूं। बताओ, क्या चाहते हो ?' श्रीधर ने कहा – 'देवी ! मेरी पत्नी रूपश्री बाढ़ की स्थिति में जिनदर्शन न कर सकने के कारण सात दिन से निराहार है। अतः हमारे समस्त परिवार को जिनदर्शन कराने की कृपा कीजिये।'' देवी के प्रताप से वायुरथ पर सवार होकर श्रीधर के पूरे परिवार ने जिन वन्दना की और वहाँ मुनिराज का उपदेश सुना। इस अलौकिक व अनुमप चमत्कार से श्रीधर का जैनधर्म में पूर्ण श्रद्धान हो गया। श्रीधर ने मुनिश्री से व्रत ग्रहण किया तथा उसकी दृढ़ प्रतिज्ञ, वदिुषी व सम्यग्दृष्टि पत्नी जैनेंद्र प्रतिमा के आगे अभी भी भक्ति में लीन थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो उसे भोजन की अब कोई इच्छा या चिन्ता नहीं रह गयी थी।।

भावार्थ

हे ! भगवान ! यह अच्छा ही हुआ कि मैंने आपको देखनें के पहले हरि, हर आदि सरागी देवों को देख लिया है क्योंकि उन्हें देख लेने के पश्चात् आप में ही मेरा हृदय सन्तोष को प्राप्त होता है । आपके दर्शन कर लेने के पश्चात् जन्म-जन्मांतर में भी अब कोई अन्य दूसरा देव मन मेरा हरण नहीं कर सकता है अर्थात् आप सरीखा परम शांत वीतराग देव इस संसार में दूसरा कोई नही हैं ।

MEANING

Oh my Lord of Lords ! Good that I became formally the follower of other religious leaders like Krishna and Mahadeva. But it was so good that they made me realize the true nature of the Vitaraga and ultimately I decided to take shelter.

Oh the Almighty ! It was also good that I saw you at last. Your conclusive touch is very pleasing. Now I will not think of any other deities. In case of my following you earlier, I might have thought of roaming around with other deities. Am I not benefited by your holy sight ? No, my Lord ! Now the truth realized by me will not allow me to go towards other religious leaders and their philosophies neither in dreams, nor in subsequent births.

You have impressed my heart to such an extent that not only during the remaining period of this life, but even beyond, no other deities will attract my Atma. This is my solemn affirmation till Moksha.

शब्दार्थ

नाथ = हे स्वामिन !, हरि-हरादयः = हरि-हर आदि देवों को, दृष्टा = देखा, एव = यही, वरं = उत्तम है, मन्ये = ऐसा (मैं) मानता हूं, येषु = क्योंकि उनके, दृष्टेषु = देख लेने पर भी, हृदयम् = हृदय, त्वयि = आप में, तोषम् = सन्तोष को, एति = प्राप्त होता है (अथवा), भवता = आपको, वीक्षितेन = देखने से, किम् = क्या लाभ, येन = जिससे, भुवि = भूमिपर, अन्यः = अन्रू, कश्चित् = कोई देव, भवान्तरे = जन्मान्तर में, अपि = भी, मनो = मन को, न हरति = हरण नहीं कर सकता है ।

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानि सहÒ रश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुर-दंशु-जालम् ।।22।।

व्यंतरादि भय नाशक यंत्र-22

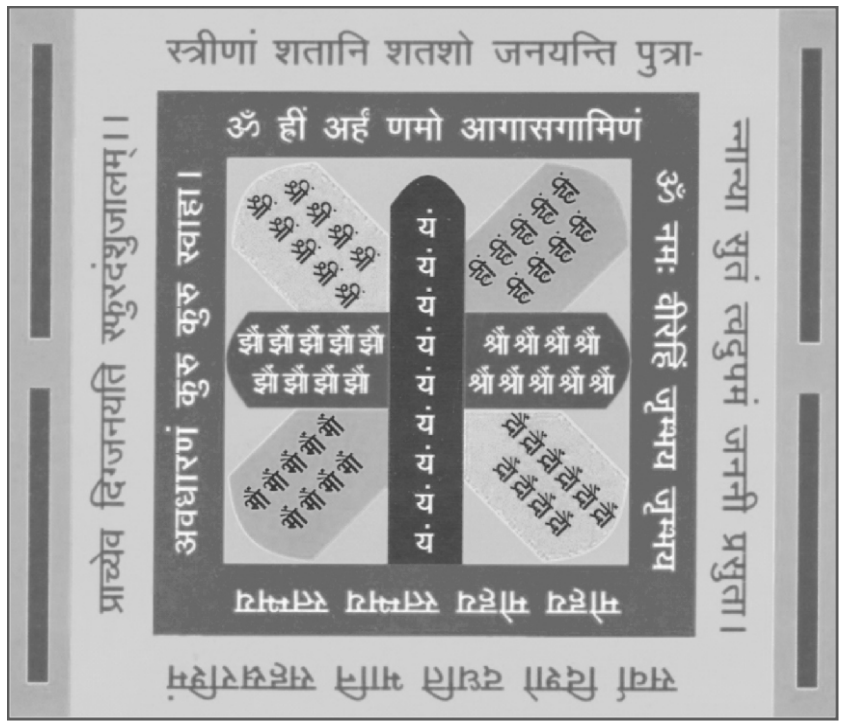

ऋद्धि — ॐ ÕÎं अर्हं णमो आगास–गामिणं ÃÎं ÃÎं नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ नमो श्री वीरेहिं जृम्भय जृम्भय, मोहय–मोहय, स्तम्भय स्तम्भय अवधारणं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि — पवित्र होकर शुद्ध वस्त्र धारण कर यंत्र स्थापित कर उसकी पूजा करें। मंगल कलश रखे, दीपक जलावे, पश्चात् पूर्वाभिमुख बैठकर प्रतिदिन 108 बार 22वां काव्य ऋद्धि तथा मंत्र का स्मरण करना चाहिये।

जिन शासन की भक्त देवी–देवताओं तथा मिथ्यात्व, रागी–द्वेषी व विषय–कषाययुक्त व्यन्तर देवी–देवताओं के बीच संघर्ष व द्वन्द्व प्राचीनकाल से ही होते रहे हैं। इस प्रस्तुत कथा–प्रसंग में भी लगभग ऐसी ही एक रोचक घटना का विवरण है। उज्जयिनी नरेश श्री चन्द्र एक धर्मनिष्ठ तथा सम्यक्त्वी राजा थे। उनके मंत्री मतिसागर का इकलौता पुत्र था महीचन्द्र। राजा ने अपने प्रिय मंत्री के इकलौते व होनकार पुत्र की शिक्षा–दीक्षा का सम्पूर्ण भार स्वयं अपने जिम्मे ले लिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि बालक महीचंद्र कुछ ही वर्षों में सभी प्रकार की लौकिक व आध्यात्मिक विद्याओं में पारंगत हो गया। गुरू की कृपा व मार्गदर्शन से महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र पर तो उसे अगाध श्रद्धा हो गई थी। एक दिन एक वीतरागी नग्न दिगम्बर मुनिराज एकाकी विहार करते हुए उधर आये और साधना व ध्यान के लिये एकांत स्थल की खोज में उज्जयिनी नगरी से दूर एक निर्जन व उपेक्षित सी पड़ी गुफा के निकट पहुंचे। उन्हें वह एकान्त स्थान एकाग्रतापूर्वक ध्यान करने की दृष्टि से उपयुक्त लगा। वे वहीं पद्मासन लगाकर आत्मध्यान करने हेतू बैठ गये। परन्तु यह बात किसी को पता नहीं थी कि वह पुरानी निर्जन गुफा व्यंतर जाति की देवी चण्डी का आवास था। चण्डी का स्वरूप उसके नामरूप अर्थात् भयानक डरावनी मुद्रा, हिंसक अस्त्र–शस्त्रों से सुसज्जित वेशभूषा और आतंकवादी प्रभुत्व जमाने की प्रवृत्ति। अपने निवास–स्थल पर किसी बाहरी व्यक्ति का आकर जमना उसे कैसे सहन हो सकता था ? अतः अपने स्वभाव और स्वरूप के अनुरूप वह रौद्र रूप में आ गई। उस पिशाचिनी ने शांत मुद्रा में ध्यान करते मुनिराज पर अंगारे व पत्थर बरसाकर, मायावी रूप बनाकर गर्जना कर उन्हें डराकर तथा हिंसक पशु उन पर छोड़कर बड़े उपसर्ग किये। परन्तु अपनी आत्मा के ध्यान में लीन मुनिराज उन उपसर्गों से जरा भी विचलित नहीं हुए। वे तो इन उपसर्गों को पूर्वकृत कर्मों का उदय जानकर समता भाव से सहते हुए कर्मों की निर्जरा कर रहे थे। इस स्थिति में बाहरी दुनिया तो समझ रही थी कि मुनिराज पर घोर संकट है परन्तु स्वयं मुनिराज तो अपनी आत्मा में रमण करते हुए आत्मामृत का पान कर रहे थे। राजा श्रीचंद्र के कानों तक जब यह बात पहुंची कि उज्जयिनी नगरी के बाहर गुफा में एक निर्ग्रन्थ मुनिराज पर चण्डी द्वारा उपसर्ग किया जा रहा है, तो उन्होंने तत्काल मंत्री–पुत्र महीचन्द्र को बुलाया और किसी भी विधि से चण्डी को वहां से निकालने का निर्देश दिया। महीचन्द्र णमोकार मंत्र का जाप करते हुए और मुनिराज के निकट बैठकर श्री भक्तामर स्तोत्र का पाठ करने लगे। वे पाठ कर ही रहे थे कि 22 वें व 23 वें श्लोक पर पहुंचते ही जिनशासन की अधिष्ठात्री मानस्तंभिनी देवी प्रकट हुई और बोली –'वत्स, क्या चाहते हो ?' महीचन्द्र बोले –''शान्तमूर्त्ते मां ! मैं अपने लिए तो कुछ नहीं चाहता किंतु इस गुफा में रहने वाली पिशाचिनी चण्डिका के रौद्र रूप के कारण यहां का वातावरण बड़ा क्षुब्ध हो उठा है, जो आत्मध्यान में बाधा डाल रहा है। मैं यहां का वातावरण शान्त चाहता हूं।'' देवी बोली –'शायद इसे नहीं मालूम कि रौद्र रूप सदा शान्त रूप से परास्त हुआ है। कदाचित् इसे यह भी ज्ञात नहीं है कि रौद्ररस आत्मा का विभाव अथवा बाहर से आने वाला भाव है और शान्त रस आत्मा का निजि स्वभाव है।' अब देखते–देखते ही जिनशासन की अधिष्ठात्री देवी मान स्तंभिनी ने अपनी दोनों आंखें बन्द कर लीं और होठों पर मंद–मंद मुस्कान लाकर दाहिना हाथ ज्योंही ऊपर उठाया कि चण्डी देवी के हथियार उसके हाथों से गिरने लगे। मायावी भूत–प्रेत, भेड़िये, चीते आदि हिंसक पशु भाग खड़े हुए और अन्त में चण्डी देवी मान स्तंभिनी देवी के चरणों पर गिरकर गिड़गिड़ाने लगी –'हे जिनशासन देवी ! मुझ अभागिन अज्ञानी को क्षमा कर दो।' देवी बोली –'दूसरों को दुःख देकर आनन्द मनाने वाली दुष्टे ! क्या तुझे सम्यग्दर्शन का प्रभाव ज्ञात नहीं ? क्षमा मैं नहीं, बल्कि ये शान्तचित्त मुनिराज ही करेंगे ।' लेकिन मुनिराज क्या क्षमा करते। वे तो सदा शान्त स्वभावी और समदर्शी होते हैं। उन्हें क्षमा व क्रोध से प्रयोजन ही क्या ? हां, उनके मुखारविन्द से उपदेश का जो अमृत बरसा, उसे सुनकर मिथ्यात्वी जीवन जीने वाली चण्डी देवी भी जिनभक्त बन गयी और उसने सम्यक्त्व धारण कर लिया। अब क्या था ? क्षुब्ध वातावरण शान्ति व अहिंसा के वातावरण में परिवर्तित हो गया था। रौद्र रस ने शान्त रस के समक्ष आत्म–समर्पण कर दिया था और मिथ्यात्वी चण्डिका सम्यग्दृष्टि बन गयी थी। इति।।

भावार्थ

हे प्रभु ! सैकड़ों स्त्रियाँ, सैकड़ों पुत्रों को जन्म देती हैं फिर भी आपकी माता के अतिरिक्त अन्य कोई माता आपके समान पुत्र को उत्पन्न नहीं कर सकती है ।

जैसे सभी दिशायें असंख्य नक्षत्र ताराओं कोतो धारण कर सकती है किन्तु अत्यन्त प्रकाशमान सूर्य को तो केवल पूर्व दिशा ही धारण कर सकती है । वैसे आप जैसे पुत्र को तो मात्र आपकी भाग्यशालिनी माता ही जन्म दे सकती हैं ।

MEANING

Oh great Rishabhadeva ! Oh Adideva !

Birth of babies is common course of affairs on the earth; but oh my Lord, Mother Marudevi was the greatest mother of whom a great child, yourself was born, who first preached the religious values, code of conduct, law of ethics, various Sciences, Arts and aesthetics and path of salvation of life. Undoubtedly true, the Godly children cannot be born of all mothers.

Look at that Northern, Southern and Western directions. Just on the onset of night, lots of stars are seen and the whole sky is filled with them. But who produces the lamp to brighten the whole Universe ? The East only.

Oh Lord ! Your mother Marudeva was also a mother like eastern direction. A Great Mother, a unique and unfore-existed Mother ! Salutations unto such a Great Mother of yours !

शब्दार्थ

स्त्रीणां शतानि = सैकड़ो स्त्रियां, शतशः = सैकड़ों, पुत्रान् = पुत्रों को, जनयन्ति = पैदा करती हैं, किन्तु त्वत् = आपके, उपमम् = समान, सुतमृ = पुत्र को, अन्या = दूसरी, जननी = माता, न प्रसूता = जन्म नहीं दे सकी, सर्वाः = सभी, दिशः = दिशाएँ, भानि = नक्षत्रों को, दधति = धारणकरती है, (किन्तु) स्फुरत् = दैदीप्यमान, अंशुजालम् = किरणों के समूह वाले, सहस्त्र रश्मिम् = सूर्य को, प्राची = पूर्व की, दिक् = दिशा, एव = ही, जनयति = उत्पन्न करती है ।

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्य-वर्ण-ममलं तमसः पुरस्तात् ।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यःशिवःशिव-पदस्य मुनीन्द्र पन्थाः ।।23।।

प्रेत बाधा निवारक यंत्र–23

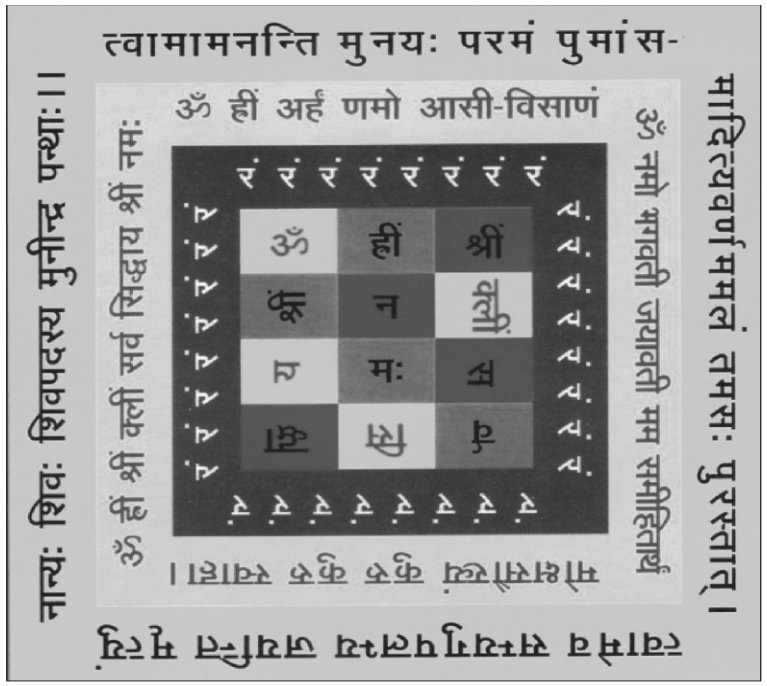

ऋद्धि — ॐ ॐ अर्हं णमो आसी–विसाणं ÃÃ ÃÃ नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ नमो भगवती जयावती मम समीहितार्थं मोक्ष सौख्यं कुरु कुरु स्वाहा। ॐ ॐ श्रीं क्लीं सर्व सिद्धाय श्रीं नमः ।

विधि — शुभ योग में पवित्र हो सफेद वस्त्र धारण कर उत्तराभिमुख यंत्र स्थापित कर मंगलकलश रखे, दीपक जलावे तथा यंत्र की पूजा करें पश्चात् सफेद माला 4000 बार ऋद्धि मंत्र का आराधन करके मंत्र सिद्ध करना चाहिये।

शक्ति का मापदंड बहु संख्यकता नहीं है। भले ही शक्ति का पुंज संख्या में केवल एक ही हो तो उसकी महत्ता उन शक्तिहीन बहुसंख्यकों की अपेक्षा अनंत गुणी है। यहां पर स्तुतिकार संसार के समस्त जीवधारियों को एक कोटि में रख रहे हैं और अनन्त चतुष्टय युक्त चौंतीस अतिशय वाले विलक्षण परम पुरुष तीर्थंकरों को दूसरी श्रेणी में रख रहे हैं। महापुरुष सदैव से संख्या में विरलता से ही पाये जाते रहे हैं। पुण्य पुरुषों की संख्या सीमित होने के प्रमाण जैन पुराणों में विशेष रूप से पाये जाते हैं। यही कारण है कि प्रत्येक कल्पकाल में धर्मचक्र प्रवर्तक तीर्थंकर 24 ही होते हैं, अधिक नहीं। जबकि सामान्य जीवधारियों की कोई संख्या निश्चित नहीं है। भले ही महापुरुष संख्या में विरल रहे अथवा एक ही क्यों न रहें, तो भी जितना विश्व–कल्याण उनके द्वारा होता है उतना बहु संख्याक शक्तिहीन अन्य जीवधारियों से नहीं। स्तुतिकार सम्बन्धित विषय का एक सुन्दर दृष्टान्त प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि आकाश में असंख्य तारे अपनी शक्ति से अपनी सामर्थ्यानुसार प्रकाश बिखेरने का प्रयास करते हैं, परन्तु उनकी टिमटिमाहट संसार के अन्धकार को रंचमात्र भी दूर नहीं कर पाती क्योंकि वे स्वयं निस्तेज हैं। संख्या में अधिक होने से उनका तेज बढ़ नहीं जाता, परन्तु इसके विपरीत सूरज संख्या में एक है तथापि उसकी लालिमा मात्र से संसार का अंधेरा दूर हो जाता है और उसके आलोक में भूमण्डल पर सर्वत्र चैतन्य बिखर पड़ता है। स्तुतिकार आचार्य श्री कहते हैं कि धन्य हैं आप जैसे महापुरुष को जिसने कि अपनी माता की कुक्षि से जन्म लेकर न केवल भूमण्डल को कृतार्थ किया, परन्तु आप जैसे लाल को पाकर माता भी धन्य हो उठी। वह माता आपसे भी अधिक धन्य है जिसने आप जैसे त्रिलोकीनाथ को जन्म देकर स्वयं को ही कृतार्थ नहीं किया बल्कि तीनों लोक भी जिससे कृत्कृत्य हो गये। आगमोक्त कथन है कि तीर्थंकर के माता–पिता नियम से अल्पसंसारी होते हैं। आज के युग में मानव समाज की सन्तानोत्पत्ति की संख्या कीड़े–मकोड़ों जैसी हो गई है तो भी उससे न तो विश्व का कल्याण हो रहा है और न स्वयं का। करोड़ों माताएँ करोड़ो पुत्रों को उत्पन्न करती रहती हैं। परन्तु इतनी बड़ी संख्या होने पर भी उनकी शक्ति की तुलना आपके अतुल बल से नहीं की जा सकती। यही कारण है कि न तो आप जैसे पुत्र ही इस वसुन्धरा पर दिखाई देते हैं और न आप जैसे को जन्म देने वाली माताएँ ही दिखाई देती हैं। परमात्मा तत्त्व ही एकमात्र वाच्यार्थ है। विश्व के विभिन्न धर्मों में उस वाच्यार्थ का प्रतिपादन करने वाले जितने भी वाचक शब्द, नाग अथवा सम्बोधन हैं वे अपने–अपने दृष्टिकोणों से पर्यायापेक्षया निरूपित किये गये हैं परन्तु जैनधर्म का हृदय अनेकान्त एवं उदारता से परिपूर्ण होने के कारण उन सभी विशेषणों की सार्थकता उसमें समाविष्ट हो जाती है। वैदिक ऋषियों ने परमात्मा को मृत्युंजय नाम से भी सम्बोधित किया है। उस सम्बोधन का वास्तविक अर्थ प्रकट करते हुए आचार्य मानतुंग जी कहते हैं कि आपने जन्म, जरा और मरण का उन्मूलन कर दिया है, अर्थात् निर्वाण प्राप्त करने के पश्चात् आप 'पुनरपि जन्मं पुनरपि मरणं' के भव भ्रमण से सर्वथा मुक्त हो गये हैं। अतएव आप स्वयं तो मृत्युंजन हैं ही, परन्तु जिसके उपयोग में आपका शुद्ध–स्वरूप समा गया है ऐसे भक्त भी आपकी सम्यक् उपासना करके मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। अर्थात् भव भ्रमण के चक्र से सदा–सदा के लिये विलग हो जाते हैं। लौकिक जन आपको कैलाशपति के नाम से भी पुकारते हैं। इन पर्यायवाची शब्दों के वाच्यार्थ वास्तव में आप ही है क्योंकि 'शिव' कल्याण को कहते हैं और पन्थाः मार्ग को कहते हैं। इसलिये आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी शिव नामक महादेव नहीं हो सकते।

भावार्थ

हे मुनीन्द्र ! मुनि गण आपको ही सूर्य के समान दैदीप्यमान, दोषरहित निर्मल, अज्ञान अन्धकार से रहित परम उत्कृष्ट लोकोत्तर पुरुष मानते हैं और आप की ही अन्तरंग की शुद्धिपूर्वक भक्ति करके वे मुनि गण अपनी मृत्यु को भी जीत लेते हैं । अतः हे प्रभु ! आपकी भक्ति के सिवाय मुक्ति को पाने का कोई दूसरा प्रशस्त कल्याणकारी मार्ग नहीं है ।

MEANING

O the Master of Monks ! Upon lot of thoughts and hypotheses, the scholar-saints have finally concluded that you are the only preacher and giver of KEVAL JNANA the ultimate enlightenment, and hence you are a PARAM PURUSHA the Supreme Super human ! The thinkers, who attained their status after a great penance, rightly address you as AMAL because there is no trace of any impurity in you. Your omniscience and total detachment are seen in highest esteem by scholars and they rightly address you, your delusion less as "TAMASAH PARSTAT" beyond darkness ! Hence oh Lord ! I am fully convinced that death the cycle of birth & death-can be overcome and Moksha can be attained by following your preaching's. One may try any other path for enlightenment, but oh Lord, the path preached by you is the shortest, safest and ultimately accepted by all.

शब्दार्थ

मुनीन्द्र = हे मुनीश्वर ! मुनयः = मुनि जन, त्वाम् = आपको, आदित्य-वर्णम् = सूर्य के समान तेजस्वी, अमलम् = निर्मल, तमसः = अन्धकार से, पुरस्तात् = परे, परमम् = परम, पुमांसम् = पुरुष, आमनन्ति = मानते हैं, त्वाम् एव = आपको ही, सम्यक् = अच्छी तरह, उपलभ्य = प्राप्त करके, मृत्युम् = मृत्यु को, जयन्ति = जीतते हैं, अतः शिवपदस्य = मोक्ष पद का, अन्रूः = दूसरा, शिवः = कल्याणकारी, पन्थाः = मार्ग, न-अस्ति = नहीं है ।

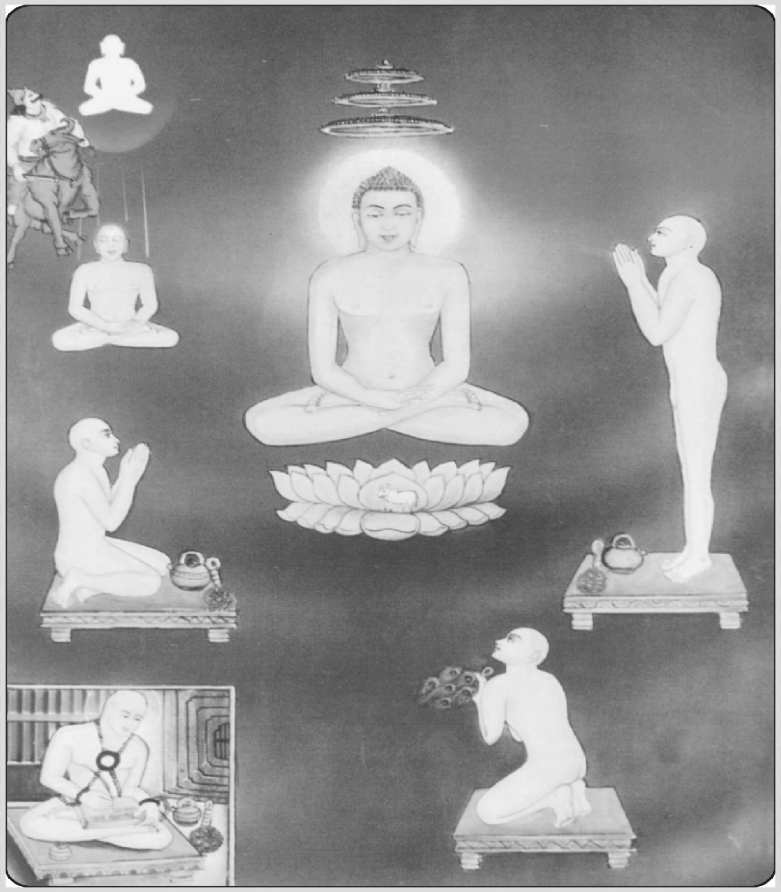

त्वा–मव्ययं विभु–मचिन्त्य मसंख्य–माद्यमं,
ब्रह्माण–मीश्वर–मनन्त–मनंग–केतुम् ।
योगीश्वरं विदित–योग–मनेक–मेकं,
ज्ञान–स्वरुप–ममलं प्रवदन्ति सन्तः ।।24।।

शीर्ष पीडा निवारक यंत्र–24

ऋद्धि — ॐ ॐीं अर्हं णमो दिट्ठि–विसाणं ÃÃं ÃÃं नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ ॐां ॐीं ॐू ॐौ ॐः अ सि आ उ सा ÃÃं ÃÃं नमः स्वाहा।
ॐ नमो भगवते वड्ढमाण सामिस्स सर्व समीहितं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि — पवित्र होकर गेरूवा रंग के वस्त्र पहिने, यंत्र स्थापित कर पूजा करें दीप जलावे, आरती उतारे पश्चात् प्रतिदिन 108 बार अथवा 7 दिन तक प्रतिदिन 1000 बार ऋद्धि–मंत्र का आराधन करना चाहिये।

राजा जितशत्रु बड़े ही विलासी व कामुक व्यक्ति थे। इसीलिये उन्होंने एक–दो नहीं, बल्कि 36 राजकुमारियों से विवाह किया था। बसन्त का सुहावना मौसम था। कोयल की कूक व मदमस्त पवन के झौंके कामियों को और भी उन्मत्त बना रहे थे। नंगी वसुंधरा तथा वृक्ष भी हरित पत्तों रूपी वस्त्रों से शोभायमान हो रहे थे। ऐसा मौसम कामुक व्यक्तियों को और भी असंयमी बना देता है। राजा जितशत्रु वन क्रीड़ा को चले। उनके साथ 36 रानियां व उनकी दासियां भी थीं। एकान्त व निर्जन वन के सरोवर में स्नान का सुन्दर आयोजन था। रानियां पारदर्शी, सुन्दर व महीन वस्त्र पहनकर सरोवर में कूद पड़ीं। राजा तथा रानियां घण्टों जल–क्रीड़ा में मग्न रहें रानियों के महीन वस्त्र भीगकर उनके शरीर से सटे जा रहे थे। अतः उनके मनमोहक रूपों को देखकर कामदेव बने राजा मन ही मन मुग्ध हो रहे थे। इतिहास साक्षी है कि अनेकों तपस्वी, साधु व वैरागी केवल इसीलिये अपने पवित्र पद से डिग गये कि परीक्षा लेने आई किसी सुन्दर नारी ने उनके मन का अपहरण कर उनकी आत्मा के उद्दीप्त चिराग को बुझा दिया था। अतः 36 रानियों के अर्द्धनग्न सम्मोहक रूपों को देखकर राजा का विवेक क्यों नहीं नष्ट होता ? सो उसने फाग में राग और नृत्य के आयोजन का आदेश दिया। अब क्या था ? दासियां वाद्ययन्त्र बजाने व गाने लगी और रानियां थिरक–थिरक कर नृत्य करने लगीं। नृत्योपरान्त, श्रम से थकी हुई रानियां मदमाती चाल से लौट रही थी, किंतु वन देवता से रानियों का यह गर्व न देखा गया। मानो उन्हें नजर सी लग गई और वनदेवता की कुपित दृष्टि से सभी रानियां पागल सी हो उठीं। कुछ रोने लगीं, कुछ चीत्कार करने लगीं। कुछ गन्दे कीचड़ को अपने शरीर पर उबटन की तरह मलने लगीं। कुछ ने अपने पारदर्शी वस्त्रों को भी फाड़ डाला। कुछ हंस–हंसकर राजा को गहरे जल में ढकेले जा रही थीं। इन परेशानियों से बचने के लिये अब राजा जितशत्रु उन्मत्त रानियों के उद्दण्ड से बचने की कोशिश करने लगे थे। उसी बियावान जंगल में से होकर व्यापार के लिये जाते हुए एक वणिक् पुत्र ने राजा को देखा तो स्वागतार्थ उनके समीप जाने लगा कन्तु उन्मत्त व अर्द्धपागल रानियों ने उसकी भारी दुर्दशा की। इस पर राजा नाराज हुआ तो रानियां उस पर ही टूट पड़ीं। रानियों के इस व्यवहार से राजा और वणिक् पुत्र, दोनों ही चिन्तित हो गये। सही मायनों में, फाग का राग अब कुराग और कुरंग बन गया था। अन्ततः वणिक् पुत्र की सलाह पर पूरी मण्डली समीप के वन में विराजमान शान्ति कीर्ति मुनिराज की शरण में पहुंची। नग्न दिगम्बर मुनिराज के कान्ति युक्त शरीर को देखकर काम से अर्धविक्षिप्त रानियां और भी उन्मत्त हो उठीं। पटरानी तो अपने ऊपर के वस्त्र फेंककर दोनों हाथों को फैलाए मुनिश्री की ओर बढ़ी ही थी कि उसके पैरों में मानो किसी ने लोहे की बेड़ियां ही डाल दीं। वह जहां की तहा खड़ी रह गयी। पटरानी की यह हालत देखकर सभी चकित रह गये, मानो सभी को लकवा मार गया हो। अत्यंत शांत गम्भीर व दयालु शान्तिकीर्ति मुनिराज ने तब अपने कमण्डलु से चुल्लु भर जल देकर महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र के 24 वें श्लोक (त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यं संख्यमाद्यं...) और 25 वें श्लोक (बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित पादपीठ..) को बार–बार पढ़ते हुए सभी उन्मत्त व विक्षिप्त रानियों पर चुल्लू का पानी डालकर मानों फाग खेल डाली अर्थात् मानों फागुन की होली ही खेल डाली। परन्तु यह –'राग की फाग' नहीं थी। यह थी 'विरगा की फाग अर्थात् वैराग्य की होली।' भक्तामर स्तोत्र के इन दोनों श्लोकों के प्रभाव से विक्षिप्त व पागल व्यक्ति भी ठीक हो जाता है। यह महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र तो सदा सभी के लिये कल्याणकारी सिद्ध होता है। राजा और रानियों ने होश आने पर जब अपनी अर्धनग्न दशा को देखा तो बड़ी लज्जित हुई और दासियां नवीन वस्त्र लाने के लिये राजमहल की ओर दौड़ पड़ीं। सभी दूर से ही मुनिराज को श्रद्धा के साथ नमन कर रही थीं। राजा ने मुनिराज से अपने विलासी जीवन को छोड़ने का व्रत लिया।

भावार्थ

हे भगवान् ! संसार के सन्त पुरुष आपको ही व्यय रहित, अविनाशी, ऐश्वर्य से सुशोभित विभु, कल्पनातीत होने से अचिन्त्य, असंख्य, ब्रह्मा, ईश्वर, अनन्त, अनंग केतु, योगीश्वर, योग विशारद, विशेषज्ञ, अनेक, एक, अद्वितीय, ज्ञान-स्वरुप और कर्म-मल रहित निर्मल आदि नामों से सम्बोधन करते हैं ।

MEANING

Oh my Lord ! Noble and serene saints and scholars pray you with their following words and attributes.

Your eternal power is not going to corrode for time immemorial and hence they call you "AVYAYA".

Your presence in the form of enlightenment is spread in all the beings of the universe and hence you are known as "VIBHU". The scholars think about you with utmost reasoning. But ultimately they conclude that it is not possible to comprehend your eternal qualities and properly shape their ideas regarding you. Hence they finally resign and say that you are "ACHINTYA". Your countless qualities are unaccountable and hence scholar statisticians define you as "ASANKHYA". Oh God ! You have incepted Dharmateertha and you are the first Tirthankara. Therefore you are called "ADYA".

Thinkers think that you have achieved infinite happiness, "Brahman" and hence you are the "BRAHMA". As you are worshipped by innumerable Devas, you are rightly the Lord of the Devas.

As you have conquered the death, you are ANANT deathless. The sexual desire is called the KAMA and the mythological deity for the success of KAMA is called kamdeva, but you are the supreme Conqueror of sexual desire and hence you are called ANANGAKETU, the foe of the Kamdeva.

शब्दार्थ

सन्तः = सन्त पुरुष, त्वाम् = आपको, अव्ययम् = अक्षय, विभुम् = समर्थ, अचिन्त्यम् = कल्पनातीत, असंख्यम् = असंख्य, आद्यम् = प्रथम, ब्रह्माणम् = ब्रह्मा, ईश्वर = स्वामी, अनन्तम् = अनन्त, अनंग केतुम = कामविनाशक, योगीश्वरम् = योगियों के नायक, अनेकम् = अनेक, एकम् = एम, ज्ञानस्वरुपम् = केवल ज्ञान स्वरुप, अमलं = निर्मल, प्रवदन्ति = कहते हैं ।

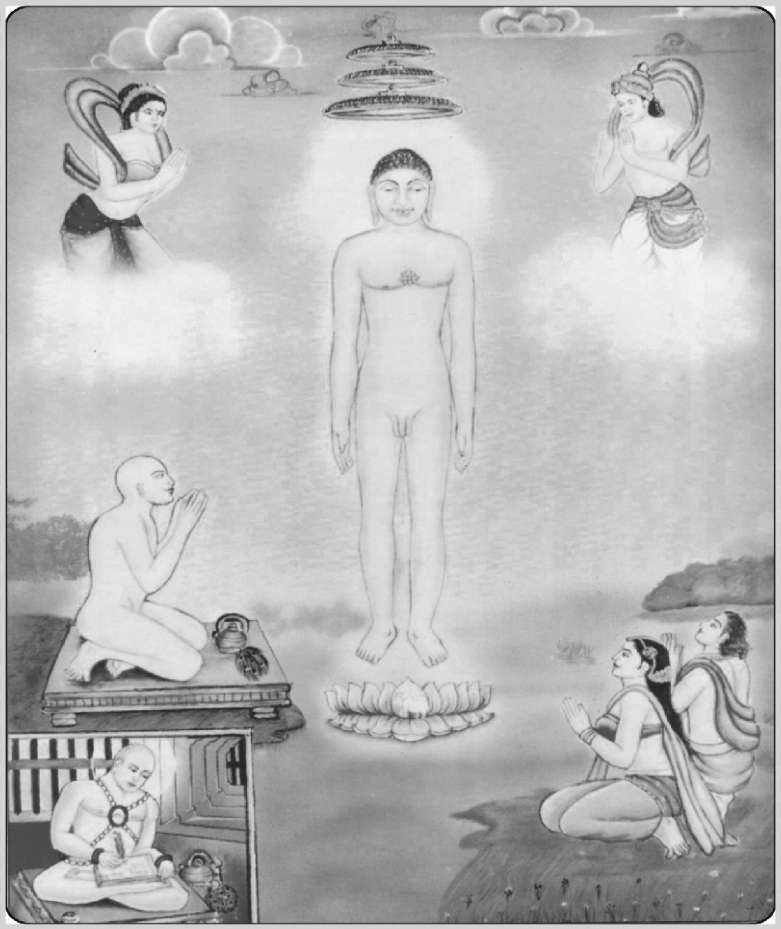

बुद्धस्त्व-मेव विबुधार्चित-बुद्धि-बोधात्,
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रय-शंकरत्वात् ।
धातासि धीर ! शिव-मार्ग-विधे-र्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ।।25।।

अग्निताप शामक यंत्र-25

ऋद्धि — ॐ ॐीं अर्हं णमो उग्ग–तवाणं ÃÕ ÃÕ नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ ॐां ॐीं ॐू ॐौं ॐः अ सि आ उ सा ÃÕ ÃÕ नमः स्वाहा। ॐ नमो भगवते जय विजयापराजिते सर्वसौभाग्यं सर्वसौख्यं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि — स्नान करके लाल रंग के वस्त्र पहिनकर यंत्र स्थापित कर उसकी पूजा करें, आरती उतारें। रात्रि के समय किसी एकान्त स्थान में निर्भय होकर 4000 बार ऋद्धि मंत्र का स्मरण कर मंत्र सिद्ध करना चाहिये।

स्तुतिकार श्री मानतुंगाचार्य द्वारा स्तोत्र रचना की, प्रवाह भक्ति की प्रधानता से प्रारम्भ होता हुआ अब क्रमशः तत्त्वज्ञान की धारा की ओर उन्मुख हो रहा है। प्रस्तुत श्लोक में उन्होंने 15 अभिधानों में ही यावत प्रचलित दर्शन और धर्मों के वाच्यार्थ परमात्म तत्त्व को गागर में सागर की भांति भर दिया है। इन पन्द्रह विशेषणों की यदि विशद व्याख्या की जाये तो भगवान के 1008 नामों का समावेश भी एक–एक विशेषण में हो सकता है। यहां पर आचार्य श्री कहते हैं कि हे अक्षयपद विभूषित जिनेश्वर देव । आप अपने आत्मस्वरूप से कभी भी च्युत नहीं होते। आप में व्यय–अपव्यय की क्रिया नहीं होती अर्थात् आपने आत्मा का जो विकास किया है वह जैसे का तैसा ही रहता है। द्रव्यार्थिक नय से जीव का स्वरूप शाश्वत्, नित्य, अव्यय एवं अक्षय ही है। इसीलिए आपको संत पुरुष अव्यय नाम से स्मरण करते हैं। हे परमेश्वर्य सम्पन्न परमात्मन् ! आप समवशरण और अष्ट प्रातिहार्यादिक बाह्य विभूतियों से समृद्ध हैं तथा अनन्त चतुष्टय रूप लक्ष्मी से सुशोभित हैं। आप समस्त कर्मों के उन्मूलन करने में पूर्ण समर्थ हैं इसलिये आप विभु नाम को सार्थक करते हैं। हे विकल्पातीत ! आप बुद्धि अथवा विचारगम्यता से परे हैं। अर्थात् जब तक संकल्प–विकल्पों का जाल आत्म पटल पर रहता है तब तक आपकी उपलब्धि नहीं होती परन्तु वीतराग निर्विकल्प समाधि द्वारा आत्मानुभूति के क्षणों में ही आप अनुभव गोचर होते हैं, इसलिए आपको अचिन्त्य कहना सार्थक ही है। हे अनन्त गुणमय ! आप अनन्त चतुष्टय के धारी हैं और आपके गुणों का अन्त नहीं है। जिस प्रकार समस्त सरिताओं का जल समुद्र में समाविष्ट रहता है उसी प्रकार आपके अनन्त गुणात्मक आत्म द्रव्य में सभी गुण–पर्यायें समाविष्ट हैं। अर्थात् आप अन्त (मृत्यु) से रहित हैं और अनन्त बल का साहचर्य प्राप्त हो गया है, इसलिए आप ही अनन्त हैं। अनन्त नाम के योग्य हैं। हे कामारि विजेता, आपने कामदेव पर विजय प्राप्त कर जिन–शासन का ध्वज लोक भर में फहराया है। आप अनंग अर्थात् कामदेव का नाश करने वाले केतु के समान हैं, अथवा जैसे केतु (धूमकेतु) का उदय संसार के नाश का साधन बनता है वैसे ही आप कामदेव के नाश का कारण बने, इससे आपका अनंगकेतु नाम सार्थक है। हे यतिनायक ! आप संयोग केवली अवस्था में अरहंत पद पर विराजमान हैं। योगी तथा मुनीश्वर भी आपको त्रिकाल नमन करते हैं, आपकी सेवा करते हैं अथवा आप निर्वाण साधक योग की साधना करने वाले साधु पुरुषों अर्थात् योगियों के स्वामी हैं इसलिए वास्तविक योगीश्वर अर्थात् ध्यानियों ध्येय तो आप ही हैं। हे योगेश्वर ! आपकी आत्मा परमात्म–स्वरूप से युक्त हो गई है। आपने सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र के त्रियोग की सिद्धि कर ली है। अष्टांग योग को अच्छी तरह जाना है। तथा आपने पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपातीत आदि ध्येय योगों का स्वरूप स्वयं जाना है और अन्य ध्यानियों को भी बतलाया है अथवा मुक्ति मार्ग में लगाने वाला जो धर्म व्यापार है वह भी योग है। ऐसे धर्म–व्यापार है वह भी योग है। ऐसे धर्म–व्यापार को आप भलीभांति जानते हैं और उसी को उपदेशित किया है। अतः वास्तविक योगवेत्ता आप ही हैं। हे एकमेव शरणयभूत् ! योगीजनों द्वारा आप एक भी कहे जाते हैं। उसका अर्थ यही है कि जीव द्रव्य की अपेक्षा आप केवल एक ही हैं। दूसरे द्रव्यों से आपका किंचिन्मात्र भी संबंध नहीं हैं। अथवा अनन्त गुणों की अखण्डता और अभेदता ही आप की एकता है। आप सदृश तीनों लोकों में दूसरा कोई नहीं है इसलिए भी आप एक सिद्ध होते हैं। आप ही वास्तव में एकमेव ज्ञानस्वरूप हैं।

भावार्थ

हे गणधर आदि देवों से पूजित जिनेन्द्र देव ! सम्पूर्ण ज्ञान के विकास के कारण आप ही बुद्ध हो। तीनों लोकों को सुख करने वाले होने से आप ही शंकर हो।

हे धैर्य धारण करने वाले प्रभो ! मोक्षमार्ग का उपाय बताने से आप ही विधाता सृष्टिकर्ता ब्रह्मा हो और पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ होने से आप ही पुरुषोत्तम नारायण हो ।

MEANING

Oh God of the Gods !

Some people asked me, "It is all right about God Adinatha, but who are BUDDHA, SHANKARA and BRAHMA ?

Lord I have no words to describe their characters, I expressly told them that I know one and the only Veetaraga, one and the only ADINATH, one and the only TIRTHANKARA. Then I told them to listen the true meaning of their names : ANA is BUDDHA.

SHANKARA also is a direct meaning of you attribute. "Shan" means Kalyana and "Kara" means the performer. So these words mean that the one who performs the process of implementing eternal bliss in mankind is "Shankara"

By your justful observations, pious character, constant awareness and Supreme Enlightenment, you are the only one, by practicing whose preaching's, one can attain salvation; and hence you are the true BRAHMA.

Your life is full of penance, awareness, enlightenment and is absolutely neutral. These attributes easily define you as the Greatest Man (Purushotama).

शब्दार्थ

(हे !) धीर = धीर-वीर, विबुधा = देवों के द्वारा, अर्चित = पूजित, बुद्धि-बोधात् = केवलज्ञानी होने से, त्वमेव = आप ही, बुद्धः = बुद्ध (हो), भुवनत्रय = तीन भुवन में, शंकरत्वात् = सुख करने से, त्वं = आप ही, शंकर = शंकर, असि = हो, शिवमार्ग = मोक्षमार्ग की, विधेर्विधानात् = विधि के विधान करने से, त्वम् = तुम, धाता = विधाता, (ब्रह्मा) असि = हो, भगवन् = हे प्रभो, त्वमेव = आप ही, व्यक्तं = स्पष्ट रुप से, पुरुषोत्तम = श्रेष्ठ पुरुष (विष्णु), असि = हो ।

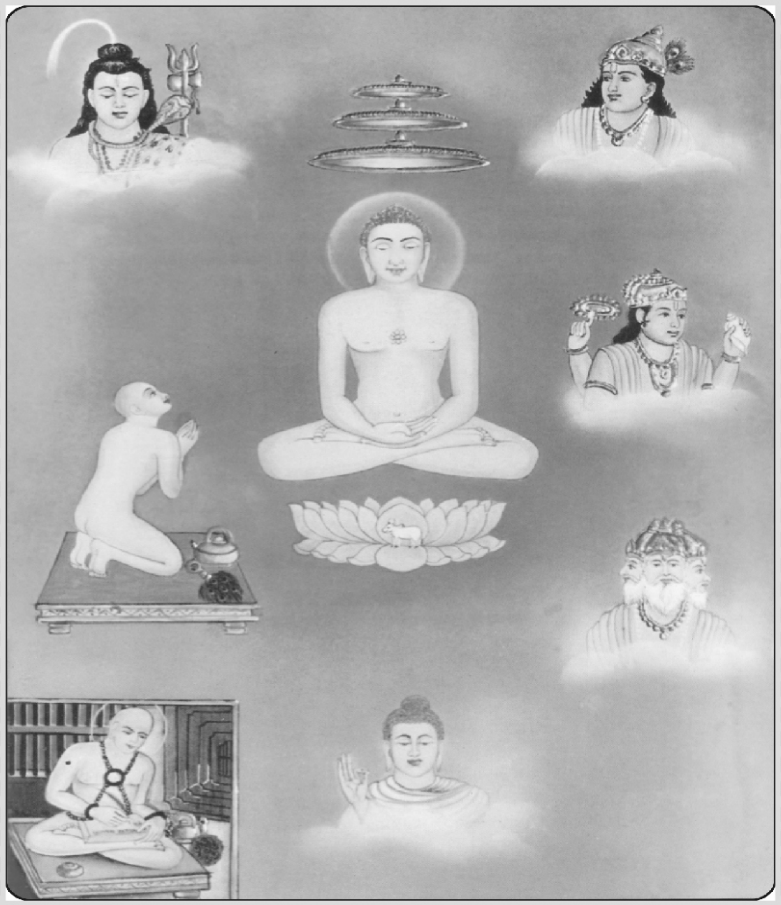

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्ति-हराय नाथ !
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल भूषणाय ।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधि-शोषणाय ।।26।।

सर्वविघ्न विनाशक यंत्र-26

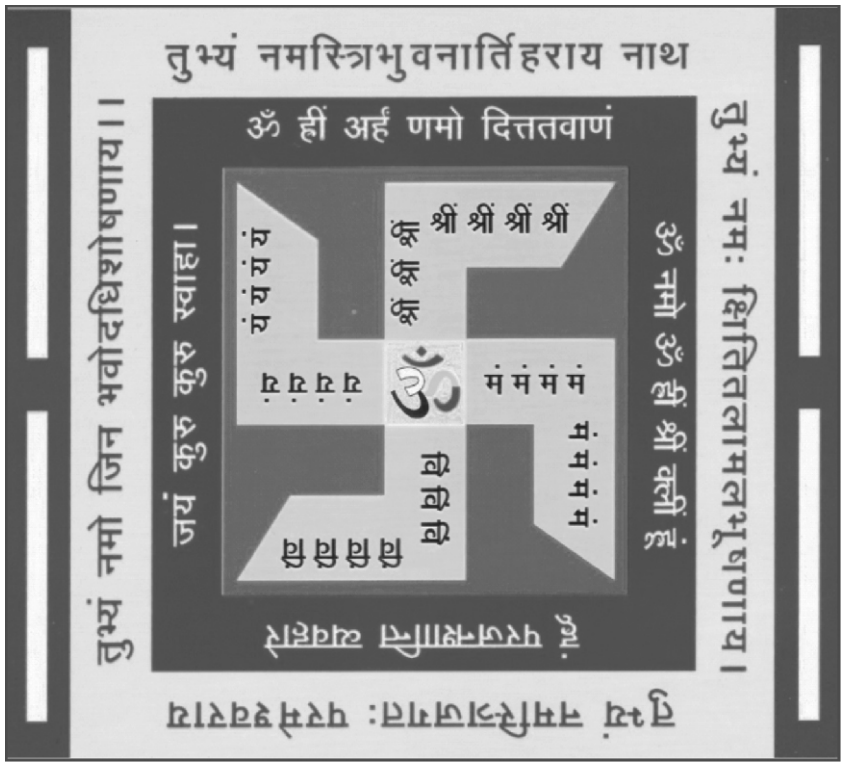

ऋद्धि — ॐ ÕÎं अर्हं णमो दित्त तवाणं ÃÎं ÃÎं नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ नमो ॐ ÕÎं श्रीं क्लीं ह्रूँ ह्रूँ परजन–शान्ति व्यवहारे जयं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि — स्नान करके लाल रंग के वस्त्र धारण कर उत्तराभिमुख यंत्र स्थापित करें, आरती उतारें, यंत्र का पूजर करें पश्चात् अर्द्ध रात्रि से अपरान्ह काल तक 12000 बार ऋद्धि मंत्र की जाप जपकरमंत्र सिद्ध करें।

नारायण श्रीकृष्ण के सुदामा का नाम तो आपने सुना ही होगा। सुदामा कृष्ण के मित्र भी थे और भक्त भी। किन्तु अत्यन्त गरीब होने के बावजूद उन्होंने कभी मांगना न सीखा था। अपनी फटेहाल की स्थिति में तथा अपनी गरीबी में ही वे सन्तुष्ट रहते थे। नारायण श्रीकृष्ण ने उनकी भक्ति की परख कर दी तो वे आश्चर्यचकित रह गये थे। ऐसी ही एक सत्यकथा है जो भक्तामर के सुदामा के नाम से प्रसिद्ध है। तो आखिर कौन था वह भक्तामर का सुदामा ? वह था एक भिखारी। दर–दर की ठोकरें खाकर, लोगों के ताने सुनकर दूसरों की जूठन पर जीने वाला भिखारी। और फटे–पुराने चिथड़ों में अपनी लाज को ढकने वाली एक उसकी पत्नी थी। नगर व समाज से दूर घास–फूंस की एक झौंपड़ी उसका निवास स्थान था। झौंपड़ी भी ऐसी जर्जर कि हवा के झोंके जिसे ढहाने को अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते थे, पानी की बौछारें जिसे छत विहीन बनाने को तैयार रहती थी और मध्यान्ह के सूरज की चिलचिलाती तेज किरणें जैसे जलाकर भस्म कर देने को मानों आतुर रहती थीं। अपनी ऐसी ही दशा में तथा ऐसी ही झौंपड़ी में वे दोनों प्राणी अपने जीवन की घड़ियां गुजार रहे थे। जहां तक गरीबी का प्रश्न है, गरीबी तो देश में आज भी है। आज भी देश की लगभग 40 प्रतिशत जनता गरीबी की रेखा से नीचे (BPL) जीवन यापन कर रही है। आज भारत में ही करोड़ों लोग हैं जिनका जन्म सड़को के फुटपाथों पर या झुग्गी–झौपड़ियों की गन्दी बस्तियों मे होता है और वहीं उनकी पूरी जिन्दगी गुजर जाती है। गरीबी प्राचीन समय में भी थी। नारायण श्रीकृष्ण के सुदामा व इस सत्यकथा के शीर्षक भिखारी सुदामा इसके प्रमाण हैं। सच्चाई यह है कि गरीबी–अमीरी के अन्तर का यह रोग संसार से कभी भी मिटेगा नहीं। यह रोग तो मनुष्य के कर्मों के शुभ–अशुभ फल के साथ–साथ चलता है। शुभ कर्मों के उदय से अमीरी मिलती है और अशुभ कर्मों के कारण घोर गरीबी। यदि संसार में ये अन्तर न रहें, तो संसार को मोक्ष की संज्ञा न दी जायेगी ? कहा जाता है कि घूरे के दिन भी फिरते हैं। फिर, इन अभागों के दिन क्यों नहीं फिरते ? फिरते तो हैं, किन्तु सभी के नहीं। शुभ कर्मों के उदय के कारण कुछ के दिन तो फिरते ही हैं। सुदामा के दिन नारायण श्रीकृष्ण की कृपा से फिरे थे, तो उपरोक्त शीर्षक भिखारी के दिन भी महाप्रभावक श्री भक्तामर स्तोत्र के 26 वें श्लोक की साधना से फिर गये। पत्नी की प्रेरणा व दबाव से सुदामा अपनी टूटी–फूटी झौंपड़ी से निकलकर द्वारिका के श्रीकृष्ण की ओर बढ़े थे और हमारा यह भिखारी झौंपड़ी से निकलकर बढ़ा निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि की ओर। हो सकता है कि भिखारी ने उन निर्ग्रन्थ मुनि को अपने जैसा अकिंचन और अपरिग्रही समझकर और उनमें आत्मीयता की सुगन्ध पाकर ही उनकी ओर कदम बढाये हों। शायद उसने सोचा हो कि ये दिगम्बर नग्न मुनि तो मुझसे भी ज्यादा गरीब़ दिखते हैं। फिर इनके पीछे इनकी जय–जयकार करते हुए इतने लोग क्यों चल रहे हैं ? इनके चरणों में बड़े–बड़े धनी–मानी क्यों नमन कर रहे हैं ? कुछ भी हो, शायद अपने पूर्व अशुभकर्म के क्षयोपशम से ही वह भिखारी उन निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनिराज के चरणों में जा बैठा। उसने उन्हें नमन किया और उन्हें देखा तो एकटक देखता ही रह गया। मुनिश्री ने उसके मनोभावों तथा मन में छिपी श्रद्धा व पीड़ा को पढ़ा और उसे भक्तामर स्तोत्र के 26 वें श्लोक को याद करवाया अर्थ समझाया और उसे ऋद्धि व मंत्र की विधि समझाई तथा उसे इसका निरन्तर पाठ करने का उपदेश दिया। गुरू का मार्गदर्शन पाकर वह पास के एक निर्जन वन में गया और वहां एकान्त स्थान पर बैठकर भक्तामर स्तोत्र के उक्त श्लोक की साधना करता रहा। साधना पूरी करके जब वह घर लौटा, तो उसे अपनी झौंपड़ी की जगह पर एक ऊंची हवेली खड़ी दिखाई दी। वैसे ही, जैसे सुदामा को राजमहल के दर्शन हुए थे। और अब वह भिखारी नहीं था, अब वह था नगरसेठ धनमित्र, जो जिनभक्त, सम्यग्दृष्टि, दानी व धर्मात्मा था।

भावार्थ

हे नाथ ! आप तीनों लोकों की पीड़ाओं को दूर करने वाले हो अतएव आपको बारंबार नमस्कार हो ।

आप ही इस पृथ्वी मंडल के निर्मल आभूषण हो अतः आपको नमस्कार हो । आप ही त्रिभुवन के परमेश्वर प्रभु हो, अतः आपको नमस्कार हो । आप ही भवसागर को सुखानेवाले हो अतः आपको नमस्कार हो ।

MEANING

Oh God ! simply bow at your feet because you are the destroyer of the troubles of all the three Lokas ! Oh ! Great Ornament of the earth accepts my salutations in your feet.

Oh Supreme God of Tribhuvan (i.e., Devaloka, Manav Loka and Davan Loka !) Accept my offerings in your feet. God ! you are the only source with whose blessings; I can swim across the salty waters of the Samsara-Sagara and overcome my short comings of Adhi, Vyadhi and Upadhi. Kindly my offerings for lifting the humankind to Moksha.

Salutations... ! Salutations ...! Salutations .....!

Crores and Crores of salutations unto you !

शब्दार्थ

नाथ = हे स्वामिन, त्रिभुवन = तीन लोक की, आर्ति हराय = पीड़ा हरनेवाले, तुभ्यम् = आपके लिये, नमः = नमस्कार हो, क्षिति तल = पृथ्वी तल के, अमल भूषणाय = निर्मल आभूषण, तुभ्यं = आपको, नमः = नमस्कार हो, त्रिजगतः = तीन जगत के, परमेश्वराय = परमेश्वर, तुभ्यं = आपको, नमः = नमस्कार हो, जिन = हे जिनेन्द्र, भवोदधि=भवसागर के, शोषणाय=सुखानेवाले, तुभ्यं = आपको, नमः = नमस्कार हो ।

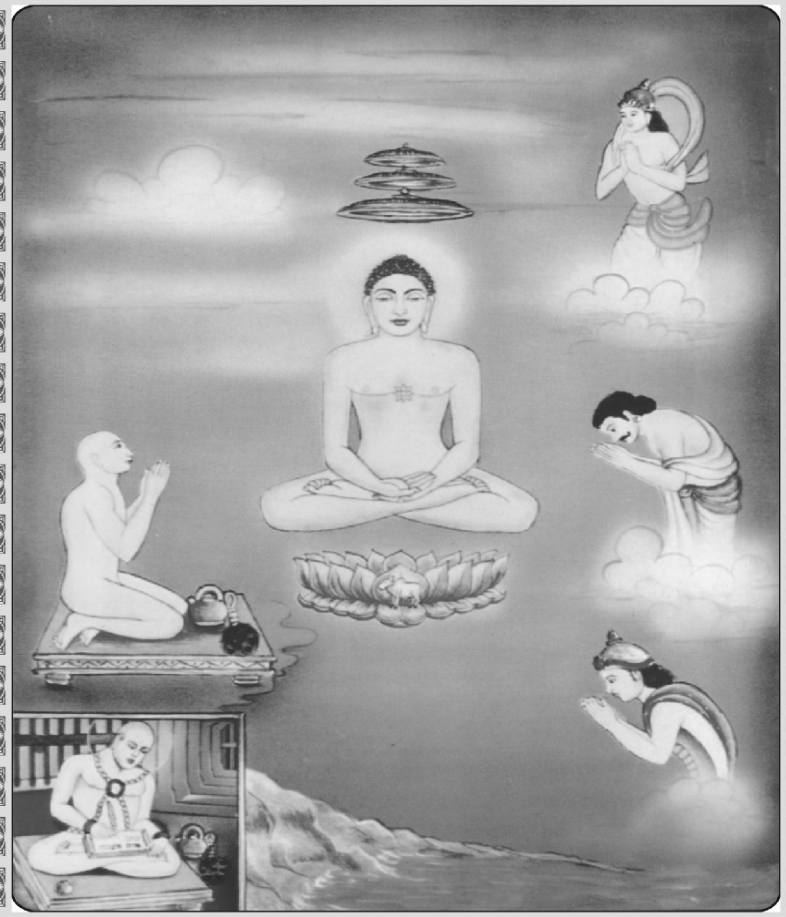

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश ।
दोषै-रुपात्त-विविधाश्रय-जातगर्वैः,
स्वप्नांतरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ।।27।।

मन्त्राराधक-उपसर्ग निवारक यंत्र-27

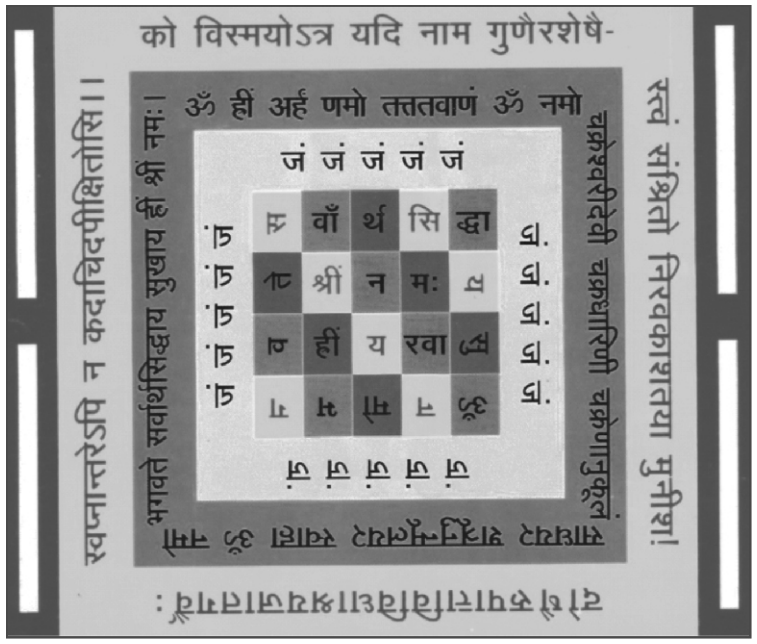

ऋद्धि — ॐ ॐ अर्हं णमो तत्त तवाणं ÃÃ नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ नमो चक्रेश्वरीदेवी चक्रधारिणी–चक्रेणानुकूलं साधय साधय शत्रूनू उन्मूलय–उन्मूलय स्वाहा।
ॐ नमो भगवते सर्वार्थसिद्धाय सुखाय ॐ श्रीं नमः।

विधि — पवित्र होकर काले वस्त्र पहिने, लाल चन्दन से यंत्र लिखकर स्थापित करें, यंत्र की पूजा करें। पश्चात् 21 दिन तक प्रतिदिन काले रंग की माला से 108 बार 27वां काव्य, ऋद्धि तथा मंत्र का जाप करते हुए 108 पुष्प चढ़ाना चाहिये। बिना नमक का एक बार भोजन करना चाहिये। काली मिर्च की धूप से होम करना आवश्यक है।

हर प्राणी चाहता है कि सांसारिक इच्छाओं व मनोकामनाओं की पूर्ति हो। अपने मनोरथ की सिद्धि के लिये वह हर संभव उपाय अपनाता है। मनोरथ सिद्ध होगा या नहीं, यह तो उसे पता नहीं होता, किन्तु ऐसा प्रयास करते समय वह मिथ्यात्व के भ्रमर–जाल में फंसकर अवश्य भटकता रहता है। यही हाल राजा हरिश्चन्द्र और उनकी धर्मपत्नी चन्द्रगती का था। बिना फल के वृक्ष के समान उनका संतानहीन जीवन भी हर समय मुरझाया सा दिखाई देता था। पुत्र का अभाव दोनों को चौबीस घंटे संतप्त किये रहता था। पुत्र–प्राप्ति की मनारथ–सिद्धि के लिये वे हर उपाय करने को तैयार थे। यह संसार मिथ्यात्वी व स्वार्थी लोगों से भरा पड़ा है, जो ऐसे अवसर का लाभ उठाने को तैयार बैठे रहते हैं। राजा हरिश्चन्द्र के यहां भी कभी पण्डे–पुजारी यज्ञ करने के नाम पर माल उड़ाते थे तो कभी ढोंगी व छद्मवेशी साधु ठग जाते थे। आइये देखें कि अपनी मनोरथ–सिद्धि के लिये राजा–रानी मिथ्यात्व के भ्रमरजाल में कैसे फंसे : (1) एक दिन एक तपस्वी साधु राजद्वार पर आये और भिक्षा प्राप्त कर रानी से बोले –'सौभाग्यवती पुत्री ! राजरानी होकर भी तुम दुःखी क्यों हो? रानी ने अपनी इच्छा बता दी, तो साधु आंख बंद करके बोले – तुम्हें पिछले जन्म का साधु का प्रकोप है बेटी । इस जन्म में तुम हम साधुओं को इच्छानुसार भोजन वरदान दो तो तुम्हारी सभी कामनाएं फलीभूत हो सकती हैं। रानी ने साधु को भरपूर मिष्ठान व भोजन खिलाये, अंततः साधु खा–खाकर ऐसे हो गये कि उठना–बैठना भी दूभर हो गया। (2) एक दिन एक जाने–माने ज्योतिषी राजभवन में पधारे और बोले –'शनिग्रह तुम्हें दुःख दे रहे है रानीजी। यदि पवित्र मन से 100 ब्राह्मणों को भोजन कराओ और हम राजज्योतिषियों को उनकी इच्छानुसार दान–दक्षिणा दो, तो शनि देवता की कुदृष्टि दूर हो सकती है।' (3) एक दिन राजवैद्य ने सलाह दी –'रानी जी ! आप दोनों के लिये स्वर्ण–दान और स्वर्ण भस्म का सेवन उपयुक्त रहेगा।' आदि–आदि, इस प्रकार राजा–रानी पुत्र–प्राप्ति की कामना में वर्षों मिथ्यात्व मार्ग पर भटकते रहे, परन्तु उनकी कामना पूरी न हुई। एक दिन अकस्मात् ही नगर के बाहरी उद्यान में मुनिश्री श्रुतकीर्ति जी महाराज पधारे। राजा–रानी भी दर्शनार्थ गये। वे चूंकि साधुओं, ज्योतिषी व पेशेवर व्यक्तियों में भटककर उनमें अपना विश्वास खो चुके थे, अतः मुनिश्री के समक्ष अपना दुःख व्यक्त करने का उनका मन न हुआ। किन्तु मनःपर्यय ज्ञानी निस्पृही मुनिराज ने उन मनोभावों को पढ़कर उनके कष्ट–निवारण के लिये उन्हें महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र का रहस्य समझाते हुए उसके 27 वें श्लोक का उच्चारण कर उसके महत्व का प्रतिपादन किया, किन्तु अभी तक राजा–रानी में कोई विशेष उत्साह व रुचि न थी। मुनिश्री तो भक्तिपूर्वक भक्तामर स्तोत्र के 27 वें श्लोक को मधुर कण्ठ से पढ़ते ही जा रहे थे। इसी बीच राजा हरिश्चन्द्र अकेले उठकर जिनमंदिर पहुंचे और स्नान करके व वस्त्र बदल कर भगवान आदिनाथ की मूर्ति के सामने पद्मासन में बैठ गये और जोर–जोर से पढ़ने लगे –''को विस्मयोऽत्र यदि...'' वे बड़ी तन्मयता से उस श्लोक को दो घन्टे तक दोहराते रहे, किन्तु फिर भी उन्हें उसका कुछ निष्कर्ष निकलता न दिखाई दिया तो वे निराश हुए। हो सकता है कि श्लोक को पढ़ते समय राजा को केवल अपनी मनोरथ–सिद्धि का ही ध्यान रहा हो, जिनस्तुति का नहीं। निराश राजा बाहर निकले और प्रतीक्षा में खड़े दरबारियों के समक्ष बड़बड़ाये –'धर्म कुछ नहीं है, केवल प्रपंच है। उसके अनुयायी धर्मोपार्जन नहीं, अपितु अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये धर्म के द्वारा जीविकोपार्जन ही कर रहे हैं।' राज्यमंत्री को राजा के इस भाव–परिवर्तन पर आश्चर्य भी हुआ और दुःख भी। सम्यग्दृष्टि मंत्री समझ गये कि राजा ने भक्तामर स्तोत्र के श्लोक का जाप्य अपनी मनोरथ सिद्धि को ध्यान में रखकर ही किया है, निष्काम भक्ति से नहीं किया। अतः राज्यमंत्री तत्काल उठे और मंदिरजी में जाकर शुद्ध वस्त्र पहनकर उसी 27 वें श्लोक का पाठ बिना किसी इच्छा के भक्तिपूर्वक करने लगे। तभी कुछ समयोपरांत जैन शासन की अधिष्ठात्री धृतदेवी उनके समक्ष उपस्थित हुई और उनसे वर मांगने का आग्रह किया। मंत्री ने कहा –'देवी, मुझे अपने लिये कुछ नहीं चाहिये, किन्तु संसार के अनन्त दुःखों से उबारकर मनुष्य को मुक्ति तक पहुंचाने वाले जिनधर्म के प्रति राजा की आस्था बनी रहे, इस हेतु राजा को पुत्र–प्राप्त का वरदान दीजिये।'' देवी तथास्तु कहकर अन्तर्ध्यान हो गयी।। पांच वर्ष बाद मुनिश्री श्रुतकीर्ति जी महाराज जब पुनः उस नगर में आये, तो राजा–रानी सपरिवार उनके दर्शनार्थ पहुंचे, उन्हें नमन किया और अपने चार वर्षीय पुत्र को उनके चरणों में रखकर कहा 'भगवन् ! उसे आशीर्वाद दीजिये।' नगर में जिनधर्म की खूब प्रभावना हुई।

भावार्थ

हे मुनि नाथ ! हमें ऐसा लगता है कि संसार के सभी सदगुणों ने आपका ही आश्रय पा लिया है अतः आप में एक भी अवगुण नहीं है । इसलिये वे सारे दुर्गुण अन्यत्र दूसरे लोगों ने दृढ़ता से अपना लिये है । अतः वे (दुर्गुण) मिथ्या अभिमान के कारण स्वप्न में भी लौटकर आपकी ओर नहीं देखेंगे ।

MEANING

Oh my God ! Someone asked me "How is it that your God has all the good qualities only and no short-comings at all ?

I replied, "Look ! There are envy and ire, desire and attachments wants and miseries and endless vices. I asked them (the vices) as to why do they avoid approaching Bhagawan Adinatha ?

They all replied together, "We have found our comfortable abodes elsewhere, "For example, anger with Mahadeva, pride with Parashuram, politics and attachment unto multiple rasas of senses with Krishna and sluggishness with Brahma. Your Adideva is KEVALJNANI, therefore, what is the use of approaching him ? He is having total enlightenment and constant awareness. How can we go there ? We have no place to enter !"

So, my dear friend, my reply to you is simple: MY ADINATHA IS NOT SEEN WITH ANY OF THE VICES EVEN IN DREAMS.

शब्दार्थ

मुनीश = हे मुनियों के ईश्वर, यदि नाम = यदि वस्तुतः, त्वम् = आप, निरवकाशतया = अवकाश रहित, अशेषै = समस्त, गुणैः = गुणों के द्वारा, संश्रितः = आश्रय को प्राप्त हुए हैं तो, अत्र = इसमें, कः = क्या, विस्मय = आश्चर्य है ? उपात्त = प्राप्त किया है, विविध = अनेक पुरुषों का, आश्रय = आश्रय जिन्होंने, अतएव, जात गर्वैः = गर्व को प्राप्त, दोषैः = दोषों के द्वारा, कदाचित् = कभी, स्वप्नान्तरे = स्वप्न में, अपि = भी, न ईक्षित = नहीं देखे गये हो, अत्र = इसमें, अपि = भी, कः = क्या, विस्मययः = आश्चर्य है ।

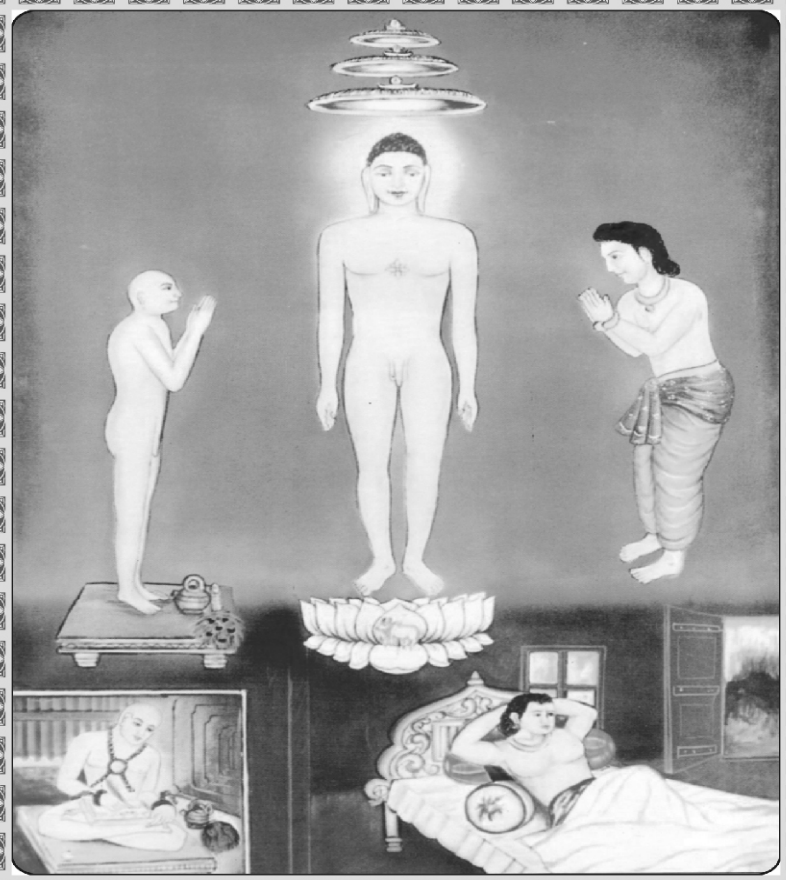

उच्चैरशोक-तरु-संश्रित-मुन्ययूख-
माभाति रुप-ममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत् किरण-मस्त-तमो-वितानम्,
बिम्बं रवे-रिव पयोधर-पार्श्ववर्त्ति ।।28।।

इष्टकार्यसिद्धि-साधके यंत्र-28

ऋद्धि — ॐ ठीं अर्हं णमो महातवाणं Ãीं Ãीं नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ नमो भगवते जय विजय, जृम्भय–जृम्भय, मोहय–मोहय, सर्वसिद्धि सौभाग्यं सम्पत्ति–सौख्यं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि — पवित्र होकर पीले वस्त्र धारण करें, उत्तर या पूर्वाभिमुख यंत्र स्थापित कर उसकी पूजा करें पश्चात् पीले आसन पर बैठकर पीली माला द्वारा प्रतिदिन 1000 बार ऋद्धि मंत्र का आराधन कर 12000 जप पूरा करें। पीले फूल चढ़ावें।

यौवन का मद सचमुच ऐसा नशा है जो अच्छे–अच्छे को मार्ग से भटका देता है। यौवन के मद में मदहोश पुष्पवृन्द एक दिन तो खिलखिलाकर हंसते हैं, अर्थात् खिलते हैं, किन्तु अगले ही दिन वे धरती की धूल में मुंह के बल गिर जाते हैं। युवा–अवस्था वह खिली हुई कली है, जिस पर भ्रमर मंडराते हैं, उसका रस चूसते हैं और फिर उसे अर्ध–निस्तेज बनाकर चल देते हैं। रूप कुण्डली राजा पृथ्वीपाल की अपूर्व सुंदरी कन्या थी। रूप और यौवन, दो–दो का मद उस पर सवार था। उसका रूप ऐसा था कि कामदेव भी लज्जित हो जायें। चन्द्रमा के सदृश कान्ति से युक्त रूप कुण्डली स्वर्गलोक की अप्सरा सी दिखाई देती थी। 16 वर्ष की अवस्था में उभरने वाले यौवन के मद ने तो उसे और भी मदहोश बना दिया था। इसी के मद में कभी वह अपनी सहेलियों को हीन समझती और कभी उनसे अपने रूप–यौवन का दंभ बखानती। तभी एक दिन जब वह बगिया में टहल रही थी, कि सामने से एक नग्न दिगम्बर मुनिराज आ निकले। यौवन के मद में चूर रूपकुंडली के इशारे पर उसकी दासियों ने मुनिश्री को छेड़ दिया। मुनिश्री ने उपसर्ग समझकर सहन कर लिया और अपने मन में कोई विकार न आने दिया। रूप कुंडली ने भी मुनिराज के कुरूप शरीर और नग्न भेष की निन्दा की। यही नहीं, यौवन के मद में मदहोश बनी रूपकुंडली ने शिला पर विराजमाल मुनिश्री के नग्न शरीर को रंग–बिरंगे रंगों से चित्रित करके उन्हें एक व्यंग्यचित्र का कार्टून जैसा बना दिया। ऐसा करके उनका मजाक उड़ाती हुई वह राजमहल को लौट गई। मुनिराज ने उपसर्ग समाप्ति पर अपना ध्यान भंग किया और बिना किसी दुःख, द्वेष या क्रोध के विहार करके जंगल की ओर चल दिये। उनके पीछे बच्चे हंसते चल रहे थे, परन्तु उन्हें उसकी परवाह न थी। प्रकृति का यह एक अटल नियम है कि 'जैसा करोगे–वैसा भरोगे।' रूप कुंडली ने रूप–यौवन का अहंकार करके तो पाप इकट्ठा किया ही था, उसने मुनिराज की निन्दा व अपमान करके अब घोर पाप कमा लिया था, अतः उसका पाप का घड़ा तो भरना ही था। रूपकुण्डली घर पहुंची ही थी कि मुनिनिन्दा के महापाप के कारण उसका सुन्दर शरीर कोढ़ से ग्रसित होने लगा। अंततः रूप और यौवन का चरम पर पहुंचा अहंकार चारों खाने चित होकर धरती पर आ गिरा। अब तो स्थिति यह हो गई के नगर का साधारण सा कुरूप युवक भी उसकी ओर देखकर घृणा से मुँह फेर लेता था। सखियां चिढ़ाकर व्यंग्य में कहती 'कामदेव को मात पर मात देने वाली सुन्दरी, रूपकुंडली कहां हो तुम ?' बड़े–बड़े वैद्य और हकीम भी जब रूपकुंडली का कोढ़ ठीक न कर सके तो वह समझ गई कि उसने यौवन मद में आकर जो मुनिनिन्दा की थी, यह उसी पाप का फल मुझे मिला है। यह बात ज्ञान में आते ही वह जंगल में मुनिराज के पास गई और उनके चरणों में गिरकर बोली –'हे दया के सागर ! रूप के मद में अंधी होकर मुझ पापिनी ने आपका अपमान करने का घोर पाप किया है, जिसके कारण मुझे यह कष्ट झेलना पड़ रहा है। भगवन् ! मुझे इस पाप से छुटकारा दिलाइये।' वीतरागी मुनिराज को तो यह ज्ञात ही नहीं था कि उनके कारण किसी को कष्ट पहुंचा है। वे तो उसका कष्ट दूर करने की दया–भावना से बोले –'देवी ! महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र के 28 वें श्लोक का ऋद्धि व मंत्र सहित जाप करने से इस भयंकर रोग से तुम्हें मुक्ति मिल सकती है।' रूपकुंडली के पूर्व अशुभकर्म का क्षयोपशम शायद अब निकट ही आ गया था अतः वह साम्यभावी व समदर्शी मुनिराज से जैनधर्म का उपदेश सुनकर बड़ी आनन्दित हुई व मुनिश्री के चरणों में नमोस्तु करके अपने घर लौट आई। रूपकुण्डली ने लगातार तीन दिन–रात भक्तामर का अखण्ड पाठ किया और उसके 28 वें श्लोक की ऋद्धि व मंत्र सहित साधना की। फलस्वरूप उसका सारा शरीर पुनः कुन्दन सा दमक उठा। राजमहलों तक जब यह खबर पहुँची तो राजा पृथ्वीपाल अपनी पत्नी सहित नगर के पूर्वी भाग में स्थित कुष्ठ आश्रम में पहुंचे और अपनी पुत्री को पूर्ववत स्वस्थ व सुन्दर देखकर हर्ष–विभोर हो उठे। राजा ने इस खुशी में जैनधर्म की प्रभावना हेतू कुष्ठाश्रम से थोड़ी दूर एक उपयुक्त स्थान पर जिनमंदिर का निर्माण कराया और उसमें भगवान श्री आदिनाथ की विशाल व मनोज्ञ प्रतिमा प्रतिष्ठित करायी। समयोपरांत राजा पृथ्वीपाल ने अपनी पुत्री के विवाह का निश्चय किया और गुणशेखर के रूप में योग्य वर तलाश भी कर लिया पर रूपकुण्डली तो अब यह जान चुकी थी कि बड़े पुण्योदय से प्राप्त इस नाशवान शरीर का सदुपयोग उसे कैसे करना है। इसलिये उसने अत्यन्त दृढ़ता एवं नम्रता के साथ विवाह करने से मना करके आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके आर्यिका बनने का संकल्प किया।

भावार्थ

हे देव ! जिस प्रकार सूर्य का बिम्ब अपनी किरणों को ऊपर की ओर फेंकता हुआ सघन बादलों के बीच शोभायमान होता है उसी प्रकार आपकी दिव्य देह भी अपनी दैदीप्यमान रश्मियों को ऊपर की ओर बिखेरती हुई अशोक वृक्ष के नीचे शोभायमान हो रही है । इस पद्य में तीर्थंकर के ''अशोक वृक्ष'' नामके प्रथम प्रातिहार्य का उल्लेख किया है ।

MEANING

Oh my God ! saw you with my inner eyes in the midst of several sages, saints, kings, herds and people from all walks of life. You were seated majestically in the Samavasarana under the shadow of Ashokavriksha which is twelve times taller than you.

Your golden appearance below the dark Ashoka tree made me feel like the golden edge of sunbeam shining on jet black clouds.

You seem magnificent under the Pratiharya of Ashoka tree.

शब्दार्थ

उच्चैः = ऊंचे, अशोक तरु संश्रितम् = अशोक वृक्ष के नीचे स्थित, उन्मयूखम् = जिसकी किरणें ऊपर की ओर जा रहीं है ऐसा, भवतः = आपका, नितान्तम् = अत्यन्त, अमलम् = निर्मल, रुपम्, रुपम् = स्वरुप, स्पष्ट = स्पष्ट रुप से, उल्लसत् = चमकती हुई, किरणम् = किरणों वाले, अस्ततमोवितानम् = अन्धकार के विस्तार को नाश करने वाले, पयोधर = मेघ के, पार्श्ववर्ति = समीप में, रवेः = बिम्बं = सूर्य के बिम्ब के, इव = समान, आभाति = शोभायमान हो रहा है ।

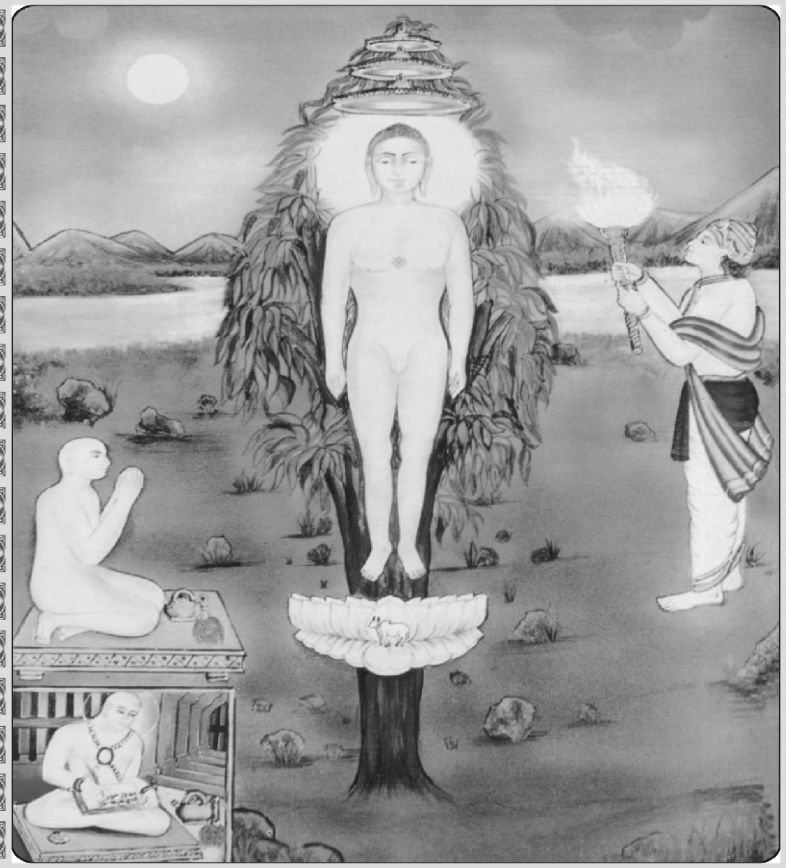

सिंहासने मणि–मयूख–शिखा–विचित्रे
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिम्बं वियद्–विलसदंशु–लता–वितानम्,
तुगोदयाद्रि–शिरसीव सहÒरश्मेः ।।29।।

वृश्चिक–विष निवारक यंत्र–29

ऋद्धि — ॐ ÕÕं अर्हं णमो घोर–तवाणं ÃÃं ÃÃं नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ णमो णमिऊण पासं विसहर फुलिंग मंतो विसहर नाम रकार मंतो सर्वसिद्धि–मीहे इह समरंताणं, मण्णे जागई कप्पटुम्मच्चं सर्वार्थसिद्धीः ॐ नमः स्वाहा।

विधि — स्नान करके आसमानी रंग के वस्त्र धारण कर उत्तराभिमुख यंत्र स्थापित करें, आरती उतारें, मालती के फूल चढ़ावें, पूजा करें, मंत्र सिद्धि पर्यन्त प्रतिदिन 1000 बार ऋद्धि मंत्र की आराधना करनी चाहिये।

गृहस्थ जीवन में यदि पति और पत्नी, धार्मिक तथा सम्यग्दृष्टि हों तो सतत् धर्मसाधना द्वारा बड़े पुण्योदय से प्राप्त इस जीवन का सदुपयोग कर सकते हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश दोनों में से कोई भी एक यदि नास्तिक या मिथ्यात्वी हो, तो गृहस्थ जीवन की गंगा उल्टी ही बहने लगती हैं इस शीर्षक की सत्यकथा भी एक ऐसे ही राज परिवार से सम्बंधित है। उसी परिवार में एक दिन... ''यह नंगा, असभ्य, जंगली कहां से आ टपका ? जरा भी तो लज्जा नहीं है इसे ? इसका बदसूरत बदन तो देखो–मैल की परतें कैसी चढ़ रही हैं, मानो वर्षों से नहाने को पानी नसीब न हुआ हो। इसका खाने–पीने का तरीका तो देखो, क्या बैठ कर भी नहीं खा सकता ? भिखारी तक भी तो पत्तल में खाता है, यह तो हाथों में ही सब घालमेल करके खा रहा है, क्या इसे भोजन के विविध व्यंजन–स्वादों का भी ज्ञान नहीं हैं ?'' यह विचारधारा हैं उस रूपगर्विता उस रूपवतीरानी की, जो दर्पण के समक्ष खड़ी होकर अपने सुन्दर रूप को निहारकर इतरा रही है। जो इस नश्वर शरीर को ही आत्मा तथा सर्वस्व मानती है और जो इस क्षणभंगुर काया का श्रृंगार करने को ही अपने जीवन का परम लक्ष्य मान बैठी है। यह विचार उस रानी 'जयसेना' का है, जिसे श्रृंगारकाल के समय मे अपने श्रृंगार–कक्ष के सामने ही ज्ञान–ध्यान में सदा लीन रहने वाले, संयमी व कामविजेता मुनिश्री ज्ञानभूषण जी महाराज राजमहल में आहार के लिये उसके पति द्वारा पड़गाहे जाते दिखाई दे रहे थे। प्रश्न यह है कि परम वीतरागी, समदर्शी, दिगम्बर, निर्ग्रन्थ मुनिश्री के प्रति अनेक प्रकार के अनर्गल अपशब्दों से प्रलाप करने वाली यह नास्तिक, मिथ्यात्वी रानी क्या किसी और का कुछ बिगाड़ रही है ? अथवा अपनी गन्दी विचारधारा के गंदे भावों एवं परिणामों से स्वयं अपनी ही आत्मा को बाँध रही है ? शायद इस अज्ञानी नारी को यह पता नहीं कि यह शरीर तो नश्वर है किन्तु इसमें बैठी आत्मा ही अमर है और हमारे अच्छे व बुरे विचार या भाव कर्म के रूप में तुरन्त हमारी आत्मा में अंकित हो जाते हैं। फिर, समय आने पर वे हमें सुख व दुःख देते हैं। जैन सिद्धांत के अनुसार हमारे अच्छे–बुरे कर्म ही उस विधाता का कार्य करते हैं और उन कर्मों को ही हम विश्वकर्मा का भी नाम देते हैं तो जयसेना रानी द्वारा वीतरागी मुनिश्री के प्रति कहे गये गंदेवचनों ने उसकी अगले भव के साथ–साथ इस भव की भी गति बिगाड़ दी। अर्थात् आत्मा में अंकित हुए उसके बुरे भाव, बुरे वचन तथा बुरे कर्म शीघ्र ही उदय में आ गये। साम्यभावी, समदर्शी व वीतरागी मुनिश्री ने तो उसके निंदनीय वचनों पर ध्यान तक नहीं दिया, हाँ रानी ने अवश्य बुरे भावों को भरकर स्वयं अपने ही पैरों में कुल्हाड़ी मार ली। हुआ यह कि कुछ ही दिनों बाद रानी जयसेना के शरीर से रिसने वाला दुर्गन्धयुक्त कोढ़ फूट निकला। अपने जिस शरीर को दिन–रात सौन्दर्य–प्रसाधनों का उपयोग कर वह सुन्दर बनाती थी, उस शरीर में कोढ़ के कारण इतनी बदबू, कि मक्खियों के अलावा कोई भी उसके पास न फटकता था। तभी तो शास्त्रों में लिखा है कि मुनि–निन्दा कभी नहीं करनी चाहिये। वीतरागी मुनिराज के ऊपरी शरीर को नहीं, उसमें निवास करने वाली पावन, निर्मल आत्मा को देखो, उनके त्याग को देखो, उनके संयम को देखो शरीर के पारखी (चर्मकार) न बनो, अपितु आत्मा के पारखी बनो। अनेक संसारी जीव ऐसे होते हैं जो शास्त्र या सद्गुरू के उपदेशों से कुछ नहीं सीखते, किन्तु अपने अशुभ कर्मों से दंडित होने के बाद सीखते हैं और सत्पथ पर आ जाते हैं। रानी जयसेना भी कर्मों की ठोकर खाकर शायद अब समझ गयी थी कि मुनि निन्दा के कुकर्म का ही यह फल है कि मुझे यह दुःख भोगना पड़ रहा है। जब मैंने बबूल का पेड़ बोया है तो, उसके कांटे तो मुझे चुभने ही हैं। अतः इस दुःखद व्याधि से छुटकारा पाने के लिये वह अब उन्हीं वीतरागी, निर्ग्रन्थ मुनिश्री ज्ञानभूषण जी महाराज की शरण में गई। समदर्शी योगीराज मुनिश्री ने कष्टनिवारण के लिये महाप्रभावक भी भक्तामर स्तोत्र के 29 वें श्लोक 'सिंहासने मणिमयूख शिखा विचित्रे..' का ऋद्धि व मंत्र सहित विधिपूर्वक प्रतिदिन जाप करने का उसे उपदेश दिया। फलस्वरूप, उसका कष्ट दूर हुआ और उसका शरीर पूर्ववत् कुन्दन हो गया। ठीक उसी प्रकार, जैसा कि श्रेष्ठि श्रीपाल का शरीर उनकी रानी मैनासुन्दरी द्वारा श्री सिद्धचक्र का अनुष्ठान करने से निरोगी हो गया था। रानी स्वस्थ होते ही मुनिश्री के चरणों में गई, उनका उपदेश सुना और सम्यक्त्व धारण कर जिनभक्त बन गई।।

भावार्थ

हे सिंहासनारुढ़ प्रभो ! जैसे गगन चुम्बी उदयाचल पर्वत की चोटी पर उगता सूर्य अपनी हजारों किरण रुप लताओं का मंडप बनाता हुआ शोभयमान होता है वैसे ही आपकी कंचन काया भी रत्नजड़ित सिंहासन पर अत्यन्त शालीनता से दैदीप्यमान हो रही है ।

इस काव्य में दूसरे 'सिंहासन' नामक प्रातिहार्य का वर्णन किया है ।

MEANING

Oh my God !

My Voyage of concentration proceeds further and I see a golden throne of excellent workmanship and decorated with innumerable diamonds and precious stones.

You, with your golden body, look entirely majestic while seated on the throne. Your halo spreads like sunbeams rising from behind the Udayachala Mountain.

God ! The emittance of golden aura from yourself, sitting on a golden throne, may shower blessings on me and my bring the golden sunrise in my life !

शब्दार्थ

मणि = रत्न, मयूख = किरण, शिखाविचित्रे = पंक्ति से शोभित, सिंहासने = सिंहासनपर, तव = आपका, कनकावदातम् = सुवर्ण के समान उज्ज्वल, वपुः = शरीर, तुंगोदयाद्रि = ऊंचे उदयाचल के, शिरसि = शिखर पर, वियद्-विलसत् = आकाश से शोभित, अंशुलता वितानम् = किरण रुप रुप लता समूह वाले, सहस्त्ररश्मेः = सूर्य के, बिम्बम् = बिम्ब के, इव = समान, विभ्राजते = शोभायमान हो रहा है ।

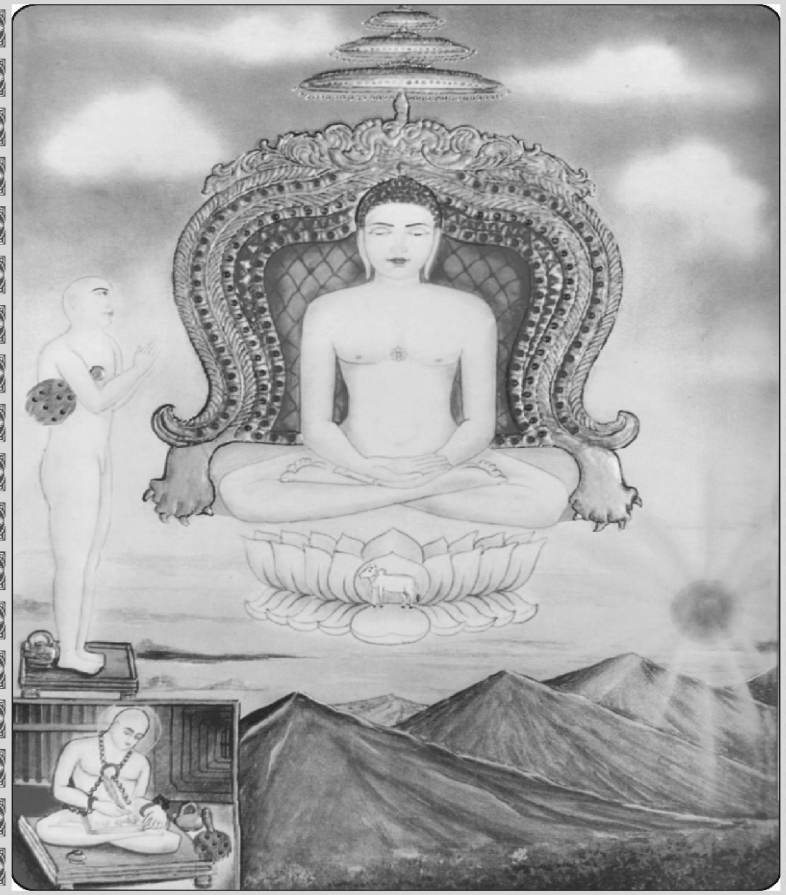

कुन्दावदात–चलचामर चारु शोभम्,
विभ्राजते तव वपुः कलधौत–कान्तम् ।
उद्यच्छशांक–शुचि–निर्झर–वारिधार–
मुच्चै–स्तटं–सुरगिरे–रिव शातकौम्भम् ।।30।।

शत्रु सिंहादिक भय निवारक यंत्र–30

ऋद्धि — ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोर गुणाणं ह्रीं ह्रीं नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ नमो अट्ठे मट्ठे क्षुद्रान्, स्तम्भय रक्षां कुरु–कुरु स्वाहा।

विधि — स्नान के बाद सफेद वस्त्र धारण कर पूर्वाभिमुख यंत्र स्थापित करें, यंत्र की पूजा करें, सफेद फूल चढ़ावे, आरती उतारें पश्चात् सफेद आसन पर पद्मासन बैठकर स्फटिकमणि की माला द्वारा प्रतिदिन 1000 बार ऋद्धि मंत्र का आराधन कर उसे सिद्ध करना चाहिये।

एक निर्धन किसान था गोपाल। किंतु लगातार तीन वर्षों से वर्षा न होने से उसकी फसल हर साल चौपट हो जाती थी। अब तो उसके खेत इतना अनाज भी नहीं उगा रहे थे कि जितना वे बीज के रूप में खा रहे थे। उधर, साहूकार का सूद बढ़कर मूलधन से दोगुना हो रहा था। इधर, उसकी तीन अविवाहित कन्याएँ भी थीं, जो बरसाती घास की तरह बढ़ती जा रही थी। जब किसानी के धन्धे से गोपाल को कमर टूटती सी दिखाई दी तो उसने राजा के यहां चरवाहे (ग्वाले) का काम शुरू कर दिया परन्तु इसमें भी आमदनी इतनी कम थी कि सप्ताह में कई दिन उसे भूखा रहना पड़ता था। बेचारा गोपाल जैसा निर्धन व्यक्ति अपना संकट दूर करने के लिये किस पर आस्था रखता ? अतः उसने अन्य संसारी मानवों की भांति पंडे, पुजारी, पीर, मौलवी आदि प्रत्येक के दरवाजे खटखटाए, उनकी मनौतियां मनाई तथा कुछ कर्ज लेकर उनकी आराधना–अर्चना की। किन्तु उसे अगले भव में चाहे जो सम्यकत्व या मिथ्यात्व फल मिले, पर वर्तमान में उसे कुछ लाभ न होता दिखाई दिया। कर्मों की इसी भाग–दौड़ में, आखिर शुभकर्मोदय से एक दिन गोपाल एक दिगम्बर समदर्शी मुनि श्री धर्मकीर्ति जी महाराज की शरण में जा पहुंचा और नमन करके निवेदन किया कि ''महाराज मैं अज्ञानी, अल्पज्ञ तथा अबोध हूँ। साथ ही, घोर दरिद्रता हमारे घर में जम कर बैठ गई है। कष्ट निवारण का कोई उपाय बताने की कृपा करें।'' दयालु मुनिराज ने आशीर्वाद देते हुए उपदेश दिया –''धनी या निर्धन होना पूर्वोपार्जित कर्मों के फल के कारण होता है। नून, तेल, लकड़ी की चिन्ता तो अच्छे–अच्छों को भटका देती है, ऐसे में सच्चा धर्म ही सहायक होता है। तुम मूलगुणों को धारण करके महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र का निरन्तर पाठ करके, 30 वें व 31 वें श्लोक का विशेष जाप करके दरिद्रता के अभिशाप से मुक्त हो सकते हो।'' अगले दिन प्रातः जब गोपाल पशुओं को जंगल चराने ले गया तो उसने एक स्वच्छ शिलाखण्ड पर बैठकर भक्तामर स्तोत्र के 30 वें और 31 वें श्लोक को नेत्र बन्द करके पढ़ना शुरू किया। पर बीच–बीच में वह नेत्र खोलकर देखता कि कहीं कोई देवी आई है क्या ? कभी एक दृष्टि पशुओं पर डाल लेता कि कहीं पशु चरते हुए दूर न निकल जायें। इसी दुविधा में गोपाल को कोई लाभ होता न नजर आया। वास्तविकता यह थी कि पण्डों की पूजा आदि के समान ही भक्तामर स्तोत्र को समझने के कारण गोपाल स्थिर चित्त से उस पर विश्वास न कर सका। उधर हरीपुर के नरेश की मृत्यु के उपरांग विवाद खड़ा हो गया कि राजा का पद कौन धारण करें ? राजा के सन्तान नहीं थी, अतः सरदार आपस में लड़ने लगे। अंततः नगर के सरपंच ने मंत्रणा करके राजा का हाथी सजाया और उसे एक पुष्पमाला दी। नगर में यह घोषणा कर दी गई कि जिसके गले में हाथी यह माला डाल देगा, वही राजा का सर्वमान्य उत्तराधिकारी होगा। घोषणा को सुनते ही नगरवासी हाथी के आगे–पीछे साथ–साथ चलने लगे कि शायद हाथी उनके ही गले में माला डाल दे। उसी दिन सायंकाल गोपाल भक्तामर स्तोत्र के श्लोक गुनगुनाता जंगल से अपने पशुओं सहित लौट रहा था। नगर में भारी कोलाहल सुनकर वह उत्सुकतावश उसी ओर जा पहुंचा तो देखा कि हाथी सूंड में माला लिये मानों उसी की ओर दौड़ा आ रहा है। वह डर गया और संकट को निकट जानकर भक्तामर स्तोत्र के उन्हीं 30 वें व 31 वें श्लोकों के गुरूमंत्र को जोर–जोर से पढ़ते हुए भागने लगा, किन्तु हाथी न रूका। तब गोपाल ने अपनी आंखें मींच लीं और जोर–जोर से श्लोक पढ़ना जारी रखा। गोपाल ने अनुभव किया कि हाथी सूंड से उसकी गर्दन को छूने की कोशिश कर रहा है। वह श्लोक पढ़ते–पढ़ते ही गर्दन छुड़ाने के लिये भाग रहा था और पीछे–पीछे हाथी माला लिये भाग रहा था। आखिर इसी भागदौड़ और खींचातानी के बीच हाथी ने गोपाल ग्वाले के गले में माला डाल ही दी। सरपंच ने आकर गोपाल ग्वाले को बधाई दी और उसे हरीपुर राज्य का राजा घोषित कर दिया। गोपाल ग्वाले का राज्याभिषेक हो चुका था। अब गोपाल की समझ में आया सारा माजरा। मन ही मन उसका माथा पूर्ण भक्ति के साथ भगवान आदिनाथ के चरणों में झुक गया। महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र के प्रति उसकी श्रद्धा व आस्था का अब कोई आरपार न था। चारों ओर भीड़ जय–जयकार कर रही थी और अपने नये राजा को स्वागत सत्कार के साथ राजगद्दी पर बैठाने ले जा रही थी। गायें भी पीछे–पीछे प्रसन्न होती जा रही थी कि हमारा रक्षक ग्वाला तो अब पूरे राज्य का ही रक्षक (राजा) बन गया है।।

भावार्थ

हे जिनेन्द्र ! कुंद (मोगरा) पुष्प के समान धवल उज्ज्वल ढुरते हुये चँवरों की शोभा से स्वर्ण के समान आभा वाली आपकी देह ऐसी सुशोभित हो रही है जैसे मानो चन्द्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल निर्मलजल का स्वर्णमयी सुमेरु पर्वत के दोनों ओर से कोई शुभ्र झरना ही बह रहा हो । इस काव्य में अरहंतों के अष्ट महाप्रातिहार्यों में से चँवर नामक तीसरे प्रातिहार्य का उल्लेख किया है ।

MEANING

Oh my Adinatha !

I saw your throne; it was a marvelous experience ! I further saw during my voyage of concentration that the milky white Chamars looking like daisy flowers are slowly fanning the air on your golden body. An unforgettable experience !

God, it looks as if the white streams are flowing from the top of Mount Meru, giving the cool and soothing effect like a rising moon.

The whole sight is very very pleasing !

शब्दार्थ

कुन्दावदात = कुन्द पुष्प के समान निर्मल, चल चामर = हिलते हुये चँवरो की, चारु शोभम् = सुन्दर शोभा से युक्त, कलधौत = सुवर्ण के समान, कान्तम् = कान्तिवाला, तव = आपका, वपुः = शरीर, उद्यत् = उदीयमान् , शशांक = चन्द्रमा के समान, शुचिनिर्झर = निर्मल झरनों की, वारिधारम् = जल धारा से युक्त, सुरगिरे = सुमेरु पर्वत के, शातकौम्भम् = स्वर्णमयी, उच्चैस्तटम् = ऊंचे तट के, इव = समान, विभ्राजते = सुशोभित हो रहा है ।

छत्रात्रायं तव विभाति शशांककान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानुकर-प्रतापम् ।
मुक्ताफल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभम् ।
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ।।31।।

यशस्कीर्ति और प्रतिष्ठा दायक यंत्र-31

ऋद्धि — ॐ ॐ अर्हं णमो घोर गुण परक्कमाणं ÃÃ ÃÃ नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ उवसग्गहरं पासं, पासं वंदामि कम्म–घण–मुक्कं।
विसहर विसणिर्णासिणं मंगल कल्लाण आवासं ॐ ॐ नमः स्वाहा।

विधि — पवित्र होकर रक्त वर्ण के वस्त्र धारणकर यंत्र स्थापित करें, यंत्र की पूजा करें जल से परिपूर्ण कलश रखे, पश्चात् उत्तराभिमुख लाल आसन पर पद्मासन लगाकर प्रतिदिन ऋद्धि मंत्र का जाप जपते हुए 7500 सौ जाप पूरा करें।

निश्चय से एक तो तीर्थंकर प्रभु जन्मजात ही श्रतुल बल व सौंदर्य के धनी होते हैं। फिर तप और उत्कृष्ट ध्यान के फलस्वरूप उनकी हेमाभ देह तप्त स्वर्ण के सदृश अत्यन्त कान्तिमान होकर दमकती है। वे तपोपुंज प्रभु कैवल्यज्ञान से मंडित होने के कारण समवशरण (धर्म–सभा) में अत्यधिक सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं। अशोक वृक्ष के तले सिंहासनस्थ श्री जिनेन्द्र देव के ऊपर दोनों बाजुओं से यक्षगण प्रतिहारी बनकर चौंसठ चँवर ऊपर नीचे निरन्तर ढुरा रहे हैं। जैसे कि एक सामान्य नृपति के सेवक लौकिक व्यंजनों से उनकी सेवा करते हैं। उन चँवरों का वर्ण मचकुन्द मोंगरा पुष्प के समान अत्यन्त धवल और शुभ्र है। भक्त हृदय के भाव–पटल पर समवशरण का अद्वितीय अलौकिक सुहावना दृश्य चित्रित है। उस अनुपम सौन्दर्य की उपमा वे प्रकृति में बिखरे हुए नैसर्गिक सुन्दरता से कर रहे हैं – जब एक उन्नत उत्तुंग पर्वत से गिरती हुई जल प्रपात की दुग्ध धवल धारा चन्द्र–ज्योत्सना सी सुन्दर प्रतीत होती है। और उसका प्राकृति सौंदर्य शुष्क हृदय को भी रस प्लावित कर देता है तब स्वर्णिम सुमेरू पर्वत से निर्गत निर्झर वस्तुतः कितना रमणीय और नयनाभिराम प्रतीत नहीं होता होगा ? जब नैसर्गिक–प्राकृतिक सौन्दर्य मन को इतना मोहित करने वाला होता है तब आध्यात्मिक सौंदर्य के एकाधिपति की परमौदारिक दिव्यदेह जो कि स्वर्णिम सुमेरु पर्वत के समान अचल और दैदीप्यमान है और जिस पर जल–प्रपात के समान चौंसठ चँवर निरन्त ऊपर नीचे ढोरे जा रहे हें, उसकी शोभा का तो फिर कहना ही क्या है ? निरन्त ऊँचे–नीचे ढुरते हुए चँवर विश्य को मानो यह बतला रहे हैं कि जो भगवान के पावन चरणों में आकर गिरेंगे वे नियम से ऊपर उठेंगे ही, अर्थात् उनका उद्धार अवश्यंभावी है। लोक में सामान्य सम्राट की प्रभुता को बतलाने के लिये प्रायः छत्र का उपयोग किया जाता है। यद्यपि छत्र धूप अथवा वर्षा को रोकने के लिए उनके शीर्ष पर नहीं लगाए जाते तथापि उनके द्वारा सम्राट अथवा छत्रपतियों का वैभव या ऐश्वर्य अवश्य ही प्रकट होता है। अष्ट प्रातिहार्य में छत्रत्रय का स्थान शास्त्रों में चौथ निरूपित किया गया है। समवशरण में विराजमान अरहंतदेव के शीर्ष के ऊपर मणिमुक्ताओं की झालरों से जड़े हुए क्रमशः एक के ऊपर एक, ऐसे तीन छत्र शोभायमान होते हैं जो चन्द्रमा की शुभ्र ज्योत्स्ना से भी अधिक सुन्दर एवं शीतल हैं तथा जिन्होंने सूर्य के प्रखर तेज को भी अपनी कान्ति से रोक रखा है। यहाँ पर स्तुतिकार इन तीन छत्रों को अलंकारित उत्प्रेक्षा करते हुए कहते हैं कि हे जिनेश्वरदेव ! आपके ऊपर जो तीन छत्र स्थित हैं वे यह सूचित करते हैं कि आप ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक के एकच्छत्र सम्राट हैं। यहाँ लौकिक ऐश्वर्य से सम्पन्न सामान्य, चक्रवर्तियों, सम्राटों तथा इन्द्रादियों से भी अधिक समवशरण स्थित तीर्थंकरों का बाह्य–वैभव निरूपित किया गया है। वस्तुतः नव केवल लब्धियों से युक्त उनका बाह्य–वैभव भी उनकी आन्तरिक रत्नत्रय विभूति की पूर्णता का ही प्रतिफल है। कार्य–सिद्धि या अन्यान्य उपायों के लिए मंत्र–साधना या मंत्राराधना भी एक उपाय है जिसके द्वारा देवी–देवताओं को वश में कर सकते हैं। जो कार्य अशक्य एवं असंभव हों उनकी सिद्धि भी इनके द्वारा की जा सकती है। मंत्र–साधना द्वारा आराधक अपने मन, वचन काय की शक्ति का विकास कर सकता है। और इस प्रकार महत्वपूर्ण व्यक्तित्व अर्जित किया जा सकता है। परन्तु एक बात निश्चित है कि जब शुभकर्मों का उदय हो तब मंत्र–तंत्र लाभदायक सिद्ध होते हैं। विपरीत अशुभ कर्मों के समय उनका विशिष्ट फल नहीं मिल पाता।

भावार्थ

हे प्रभो ! चन्द्रमा के समान सुन्दर सूर्य के आतप को रोकनेवाले मोतियों की झालर से सहित, बढ़ रही है शोभा जिनकी ऐसे तीन छत्र आपके मस्तिष्क पर शोभायमान होते हुये आपकी तीनों लोकों की प्रसिद्धि को प्रकट कर रहे हैं । यह अरिहंतों के अष्ट महाप्रातिहार्यों में से छत्र त्रय नाम का चौथा प्रातिहार्य है ।

MEANING

Oh my Adinatha !

My inner pilgrimage of contemplation goes ahead. Once again I see above your throne. I find three silvering ornamented umbrellas on you; below the leaves and branches of Ashokavriksha protecting your body from the harsh sun-rays.

But my Lord, I know that those three umbrellas are not just making a silent appearance around you. They are cheerfully announcing that they are privileged by their position above yourself and making it known to all that you are the undisputed emperor of all the three Lokas.

शब्दार्थ

तव = आपके, उच्चैः = ऊपर, स्थितम् = स्थित, शशांक कान्तम् = चन्द्रमा की कान्ति के समान, स्थगित भानुकर प्रतापम् = सूर्य की किरणों के प्रताप को रोकने वाले, मुक्ताफल = मोतियों के, प्रकरजाल = समुह वाली झालर से, विवृद्ध-शोभम् = बढ़ रही है शोभा जिनकी ऐसे, छत्र त्रयम् = तीन छत्र, तव = आपके, त्रिजगतः = तीन जगत की, परमेश्वरत्वम् = परमेश्वरता को, प्रख्यापयत् = प्रकट करते हुये, विभाति = शोभयमान् हो रहे हैं ।

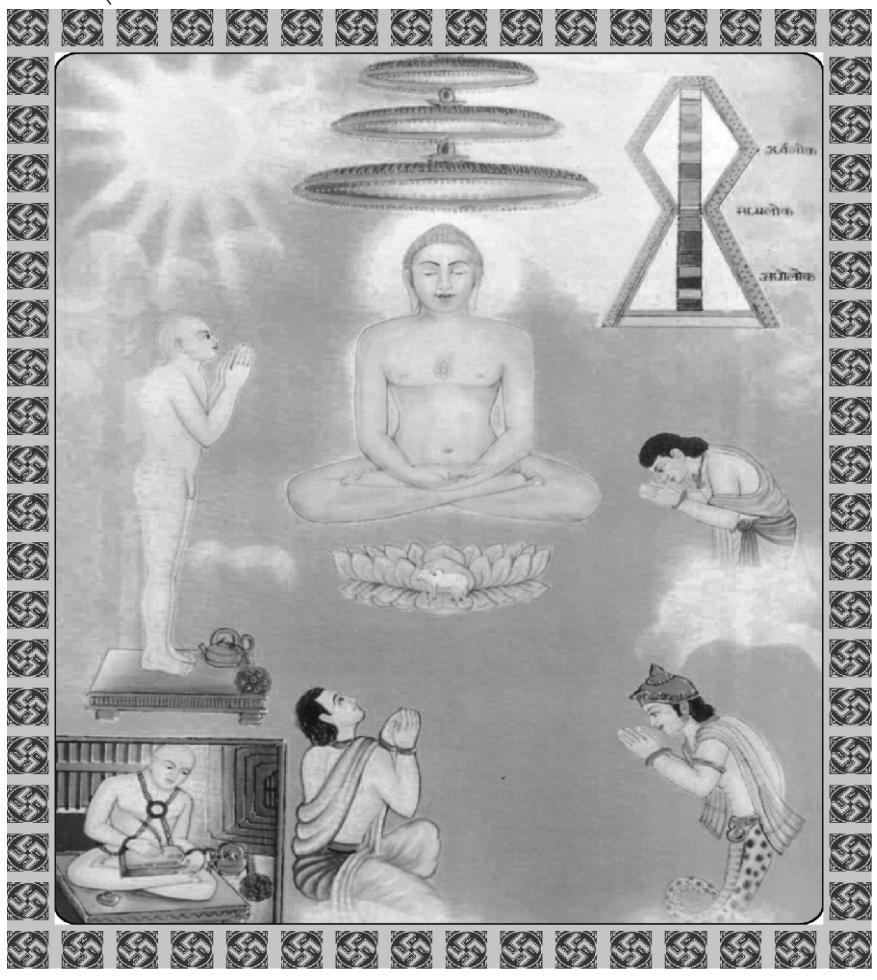

गंभीर–तार–रव–पूरित–दिग्विभाग–
स्त्रैलोक्य–लोक–शुभ–संगम–भूति–दक्षः ।
सद्–धर्मराज–जय–घोषण–घोषकः सन्,
खे दुन्दुभि–र्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ।।३२।।

संग्रणीय उदर पीड़ा संहारक यंत्र–32

ऋद्धि — ॐ ॐ अर्हं णमो घोरगुण बंभचारिणं Ãँ Ãँ नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ नमो ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ सर्व–दोष निवारणं कुरु–कुरु स्वाहा। सर्व सिद्धिं वृद्धिं वांछां पूर्ण कुरु–कुरु स्वाहा।

विधि — पवित्र होकर पीत वर्ण के वस्त्र धारण कर यंत्र स्थापित करें, पार्श्व भाग में मंगल कलश रखे, यंत्र की पूजा करें पश्चात् पूर्वाभिमुख पद्मासन लगाकर 1008 बार पीली माला से ऋद्धि मंत्र जपकर मंत्र सिद्ध करना चाहिये।

राजकुमार रत्नशेखर का विवाह तय हो चुका था, विवाह की तिथि में कुछ ही दिन शेष थे। राजसी वृत्ति का राजकुमार विवाह की तिथि का बेचैनी से इन्तजार कर रहा था। रत्नशेखर के विवाह का दिन आखिर आ ही पहुँचा। अपनी भावी पत्नी के संबंध में वह कल्पनाओं की उड़ान में उड़ रहा था कि मेरी पत्नी अत्यन्त सुंदरी तथा सम्पूर्ण गुणों से युक्त होगी। रत्नशेखर के मित्र तो इस कल्पना की उड़ान में और भी छलांगें लगा रहे थे। कोई मित्र कहता –'रानी तो नृत्य–विशारदा होगी।' दूसरा सहपाठी कहता –'हमारी भाभी सुन्दरता में तो उर्वशी और रम्भा को भी मात करेगी।' अन्य मित्र कहता –'भाई, अपनी प्रियतमा के मुख से तानसेन जैसे स्वर सुनकर राजपाट को मत भूल जाना। विवाह के दिन बड़ी धूमधाम से बारात पहुँची। राजा का इकलौता पुत्र जो था। बाजों की मधुर ध्वनि नगर भर में गूंज रही थी। नर्तकियां जनवासे में बारातियो का मनोरंजन कर रही थीं। चारों ओर हर्षोल्लास छाया था। विवाह कार्य सम्पन्न हुआ। अग्नि और समाज के समक्ष वर ने वधू को अर्द्धांगिनी के रूप में स्वीकार किया।। बारात घर लौट आई। रात्रि के समय राजकुमार रत्नशेखर ने उत्सुकतावश नववधू मदन सुन्दरी का घूंघट हटा दिया। सोच रहा था कि अब अपनी स्वर्ग की अप्सरा का मुखड़ा तो देख लूं परन्तु वहाँ तो माजरा ही कुछ और था। किसी अंधे ने अपना नाम नयनसुख, तो भिखारी ने धनपति रख लिया था। किसी कायर व डरपोक व्यक्ति ने अपना नाम शेरसिंह रख लिया था। यही स्थिति यहां भी थी। नववधू का नाम तो मदनसुंदरी था किंतु वह पूरी तरह बदशक्ल, भूरे–छोटे बाल, चपटीनाक, आगे निकले दांत, मोटी कमर व शरीर पर गलित कुष्ठ के धब्बे और खाँसी व दमे की रोगी थी। राजकुमार उसे देखकर एक बार को तो हतप्रभ रह गया। मानों भावी जीवन के उसके सारे स्वप्न एक बार में ही ढह गये हों। किन्तु फिर भी बोला –'देवी मैंने अग्नि के समक्ष तुम्हें अर्द्धांगिनी के रूप में स्वीकार किया है, अतः इस रूप में पाकर भी मैं आजीवन तुम्हारा शुभचिन्तक रहूंगा। तुम्हारे शारीरिक कष्ट को अपने शरीर की पीड़ा जानकर उसे दूर करने का प्रयत्न करूंगा।'' इस पर मोटी सी फटी आवाज में मदनसुन्दरी ने कहां –'नाथ ! मुझे गलित कुष्ठ की बीमारी है और खांसी व दमा तो मानो मेरा दम ही निकाल डालते हैं।' उसकी ऐसी दर्दभरी आवाज को सुनकर रत्नशेखर अपनी शैय्या पर रुक न सका और राज्य की सीमा से दूर चला गया। राज्य के बाहर रत्नशेखर वहाँ जा पहुँचा जहाँ दिगम्बर मुनि श्री धर्मसेन अपने संघ सहित विराजमान थे। रत्नशेखर उनकी शरण में पहुंचा और धर्म–ध्यान तथा अध्ययन में लीन हो गया। मुनिश्री के निर्देश से वह प्रतिदिन भक्तामर स्तोत्र का पाठ बड़ी भक्ति से करता था। एकदिन धर्मध्यानी राजकुमार रत्नशेखर महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र का पाठ बड़ी तन्मयता से कर रहे थे और उसके 32 वें व 33 वें (गंभीरतारखपूरित दिग्विभाग...) तथा (..मन्दारसुन्दरनमेरू सुपारिजात...) श्लोकों को उनकी जिव्हा बार–बार मधुर कण्ठ से गा रही थी, तभी जैन शासन की अधिष्ठात्री पद्मावती देवी ने प्रकट होकर कहा –'वत्स ! तुम्हारी उम्र अभी घोर तप के योग्य नहीं है। उधर, तुम्हारे वृद्ध पिता तुम्हारी याद में रोग–शैय्या पर पड़े हैं और तुम्हारी विदुषी पत्नी मदन सुन्दरी अपने ससुर की सेवा में रत हैं।'' यह सुनकर राजकुमार की अपनी पत्नी के विषय में उत्सुकता जगी और वह पूछ बैठा –'देवी ! मदनसुन्दरी का रोग कैसा है ?' पद्मावती देवी ने कहा –'वत्स, जब दो दिन पूर्व तुम भक्तामर स्तोत्र का अखण्ड पाठ कर रहे थे, तब ही उसका कुष्ठ पीड़ित शरीर दिव्य देह में परिणत हो गया था।' इतना कहकर देवी अन्तर्ध्यान हो गई। देवी के वचन सुनकर राजकुमार रत्नशेखर प्रसन्न मन से गुरूदेव मुनिश्री के चरणों में गया और आशीर्वाद लेकर राजमहल की ओर चल पड़ा। वहाँ पहुंचते ही वृद्ध पिता ने उसे गले लगा लिया। वृद्ध पिता में तो मानों जान ही पड़ गई और उसकी विदुषी पत्नी उसके पैरों पर गिरकर अपने आनंद अश्रुओं से चरण पखारने लगी।

भावार्थ

हे भगवान ! तीनों लोकों के प्राणियों को एकत्रित कराने वाले नगाड़े को जब देवगण आकाश में स्थित होकर उच्च मधुर ध्वनि से बजाते हैं, तब ऐसा लगता हैं मानो यह देव दुंदुभि तीनों लोकों के प्राणियों को कल्याण करने के लिये आव्हान करती हुई समीचीन जैनधर्म एवं उसके प्रणेता तीर्थंकर देवों की जय-जयकार करती हुई आपकी कीर्ति का ही यशोगान कर रही हो। यह अरहंतों के देव दुंदुभि नामका पांचवां प्रातिहार्य है।

MEANING

Oh glorious God ! You are the Lord of the empire of religion. This empire of religion proclaims its victory when you bestow your divine discourse. This glory is sung by those divine trumpets. It seems as if these divine trumpets are eager to create auspicious communion of the aspirants of salvation existing in three worlds. It seems, as if these divine trumpets are proclaiming your glory in three worlds. Their deep and high pitch voice has filled each and every corner of all the ten directions.

शब्दार्थ

गम्भीर = गूढ़ गहन, तार = ऊंची, रव = ध्वनि से, पूरित = परिपूर्ण हैं, दिग्विभाग = दिशायें जिससे, त्रैलोक्य = तीन लोक के, लोक = लोगों को, शुभ = शुभ, संगम = समागम की, भूति = विभूति देने में, दक्षः = कुशल, सद्धर्मराज = समीचीन धर्म तीर्थ की, जय घोषण = जय घोषणा को, घोषकः = घोषित करनेवाला, दुन्दुभिः = दुन्दुभिवाद्य, ते = आपके, यशसः = सुयशका, प्रवादी = विषद कथन करने वाला, खे = आकाश में, ध्वनति = गुंजायमान हो रहा है।

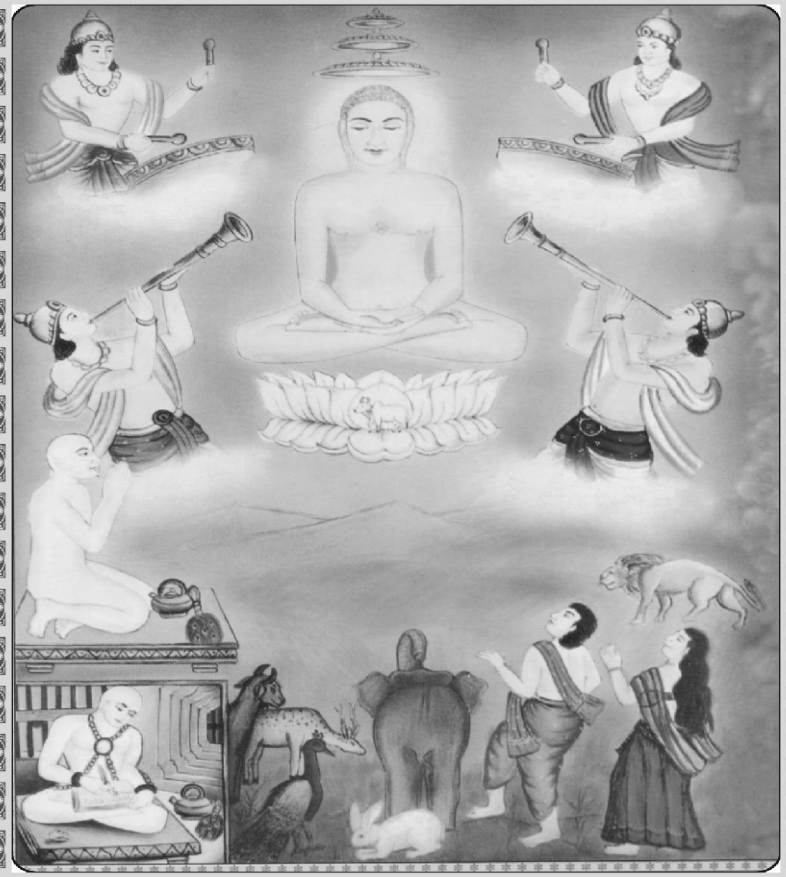

मन्दारसुन्दनमेरु–सुपारिजात–
सन्तानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा ।
गन्धोदबिन्दुशुभमन्दमरुत्प्रपाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ।।33।।

तापज्वर–शमनकारक यंत्र–33

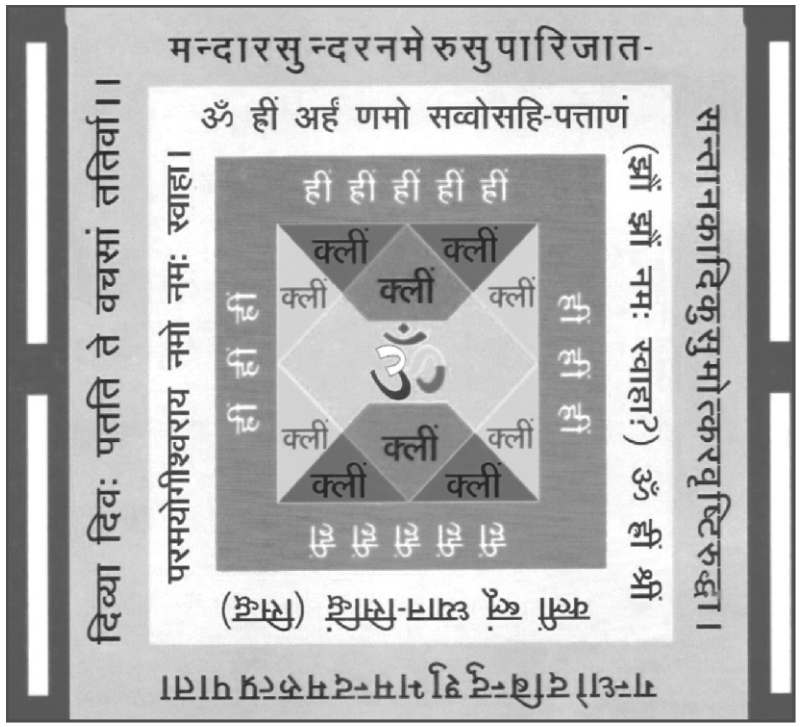

ऋद्धि — ॐ ॐ अर्हं णमो सव्वो सहि–पत्ताणं Ãं Ãं नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ ॐ श्रीं क्लीं ब्लूँ ध्यान सिद्धिं परम–योगीश्वराय नमो नमः स्वाहा।

विधि — पवित्र होकर धवल वस्त्र धारण कर पूर्वाभिमुख यंत्र स्थापित करें, यंत्र की पूजा–अर्चा करें पश्चात् सफेद आसन पर उत्तराभिमुख बैठकर सफेद माला द्वारा घृत मिश्रित गुग्गुल की धूप क्षेपण करते हुए 1008 बार ऋद्धि मंत्र का जाप कर सिद्धि प्राप्त करना चाहिये।

परमपूज्य गणधराचार्यों ने अपनी साधकतम अवस्था की स्थिरता में ओंकारमय दिव्य ध्वनि को, केवलि, श्रुत–केवलि–प्रणीत समीचीन जैनधर्म के तत्त्व को द्वादशांग श्रुत में गूंथकर उद्यतन सुरक्षित रखा है। उसी परम्परा में कालान्तरवर्ती शुद्धानुभवी भावलिंगी सन्तों ने उस वीतराग विज्ञानमयी जैन धर्मामृत के सागर को गागर में भरकर प्राणिमात्र के कल्याणार्थ प्रस्तुत किया। सद्धर्म तत्त्व की वाचक विविध परिभाषाएँ, विविध दृष्टिकोणों से रखते हुए भी उन सबका हृदयगत वाच्य तत्त्व मात्र एक शुद्धात्म– परमात्म तत्त्व की प्राप्ति करना ही रहा। वे कहते हैं कि धर्म क्या हैं ? संसार के जीवों को जो दुःख से छुड़ाकर उत्तम सुख में प्रतिष्ठित कर दे, उसी ही को धर्म कहते हैं। संक्षिप्त सूत्रों में धर्म की परिभाषा को बांधते हुए उन्होंने कहा –'वत्थु सुहावो धम्मो,' 'दंसण मूलो धम्मो,' 'चारित्तं खलु धम्मो', 'अहिंसा परमो धर्मः', 'रत्नत्रय ही धर्म है', 'दशलक्षण ही धर्म है' आदि को ही समीचीन सद्धर्म की संज्ञा दी है। स्याद्वाद चिन्हांकित अनेकान्त मयी जैनधर्म में सम्यग्दर्शन–ज्ञान चारित्र की एकता को ही मुक्ति का अथवा संपूर्णतया निराकुल सुख का एकमात्र मार्ग उन्होंने निरूपित किया है। इस भांति अन्यान्य असत् धर्मों से विलक्षण केवल सद्धर्म की विजय–दुन्दुभि तीनों लोकों मे अनादिकाल से आज तक बजती रही है। सद्धर्म–तीर्थ के उद्घोषक–प्रवर्तक धर्मराज तीर्थंकर भगवन्तों का जयघोष, यशोगान तीनों लोकों में आज तक गूँज रहा है। दुन्दुभि प्रातिहार्य के वर्णन में मुनिवर्य मानतुंग जी कहते हैं कि – हे समवशरण में विराजमान धर्मराज ! हे धर्मसभानायक ! निरन्तर उदात्त और मधुर स्वर से बजने वाला यह नगाड़ा, यह भेरी, यह विजय दुन्दुभि मानों इस बात की घोषणा स्पष्ट रूप से कर रही है कि –'हे संसार के प्राणियों यदि तुम्हें निराकुल सच्चेसुख और आत्मकल्याण की इच्छा है तो यहां आओ ! शाश्वत जैनधर्म और तीर्थेश्वरों की शरण में आओ । उनका गुणगान करो, जय–जयकार करो, उनके चरणचिन्हों पर गमन करो।' नगाड़े की आवाज अपेक्षाकृत अधिक उदात्त और उद्घोषक मानी गई है। वह सोते हुए प्राणी को तुरन्त ही जगाने में समर्थ है। संसारी जीव अनादि काल से विषय–कषायों से मुर्च्छित होकर मिथ्यात्व की कालरात्रि में, मोह–निद्रा में निमग्न हैं। आत्म–कल्याण का यह ढोल उनके कर्णपटलों पर मानों निरन्तर बज रहा है। और वे चैतन्य एवं स्वरूप–जाग्रत होकर अपना आत्म–कल्याण करते हुए, समीचीन, सच्चे जैनधर्म और तीर्थंकरों की जय–जयकार कर रहे हैं – यशोगान कर रहे हैं। अनन्त चतुष्टय के धनी चौंतीस अतिशयों से युक्त केवलि श्रीं अरहंत परमेष्ठी कमलासन पर अन्तरीक्ष विराजमान हैं। समवशरण की धर्म–सभा में उनकी निरक्षरी दिव्यध्वनि खिर रही है। वातावरण, वीतरागता – शान्ति एवं परमानन्द से व्याप्त है। त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर प्रभु के इस सत्यं–शिवं–सुन्दरं साम्राज्य में सर्वत्र अहिंसा का अनुशासन है। चारों ओर सौ सौ योजन तक सुकाल वर्त रहा है। देवों द्वारा दशों दिशाएँ निर्मल स्वच्छ कर दी गई हैं। विविध फल–फूलों एवं धन–धान्यादि से लदी हुई सदाबहार षड् ऋतुएँ सुस्वादु और सुरभित होकर महक उठी हैं। पृथ्वी और आकाश दर्पण की भांति निर्मल हैं। शीतल मंद सुगंध समीर भीनी–भीनी बह रही है। गन्धोदक की बूंदें मानों अमृत वर्षा कर रही है। तथा सच्चिदानंद प्रभु की यह अन्तरंग–बहिरंग विभूति तीनों लोकों के जीवों के आकर्षण का एकमात्र केन्द्रबिन्दु बनी हुई है। भाव विभोर स्तुतिकार भी मानतुंग जी ऐसे मांगलिक पुनीत वातावरण में पुष्पवृष्टि के प्रातिहार्य की भी समायोजना करते हुए कहते हैं कि कितना अलौकिक और धन्य होगा वह दृश्य जब चतुर्मुख दृश्यमान् सर्वज्ञदेव के न केवल श्रीमुख से, अपितु सर्वांग प्रदेशों से निरक्षरी दिव्य ध्वनि खिर रही हो और आकाश में पुष्पों की वर्षा हो रही हो।

भावार्थ

हे वीतरागी देव ! जब आप समवशरण में विराजमान रहते हैं तब आकाश में स्थित देवगण आपके ऊपर मंदार, सुन्दर, नमेरु, पारिजात तथा सन्तानक आदि कल्पवृक्षों के दिव्य मनोहर पुष्पों को मंद मंद पवन के झोकों से सुगंधित जल की बूंदो के साथ बरसाते हैं तब ऐसा लगता है मानो कि आपके श्रीमुख से वचन रुपी दिव्य पुष्प ही पंक्ति बद्ध होकर धरती पर बरस रहे हों।

यह अरिहंतों के अष्ट महाप्रातिहार्यों में से पुष्पवृष्टि नामका छटवाँ प्रातिहार्य है ।

MEANING

O God of Gods! The celestial deities are ever-anxious to serve you. They aspire to remain at your lotus feet forever. But it is not possible for these celestial deities as they are residing in heaven. Therefore they shower the divine flowers of heavenly trees of Kalpavriksha, Mandar, Sundar, Nameru, Parijat, Santanka, etc. These flowers falling from the sky and the flowers grown in water and on earth are mixed with cool, gentle breeze.. But when these flowers come down and reach unto your lotus mouth, it seems as if your divine speech is being showered in from of Rain of Flowers on the earth.

शब्दार्थ

गन्धोक = सुगन्धित जल, बिन्दु = बूंदें, शुभ = सुखकर, मन्द = धीमी, मरुत् = वायु, के साथ प्रपाता = गिरनेवाले, ऊर्द्ध = उर्ध्वमुखी, दिव्य = दैविक, मन्दार = मन्दार, सुन्दर = सुन्दर, नमेरु = नमेरु, सुपारिजात = पारिजात, सन्तानक = सन्तानक, आदि = इत्यादि, कल्पवृक्षों के कुसुमोत्कर = कुसुमों के गुच्छों की, वृष्टि = वर्षा होने पर ऐसा, वा = लगता है मानो, ते = आपके, वचसाम् = वचनों की, ततिः = पंक्ति रुपी पुष्प ही, वा = अथवा, दिवः = आकाश से, पतति = गिर रहे हो ।

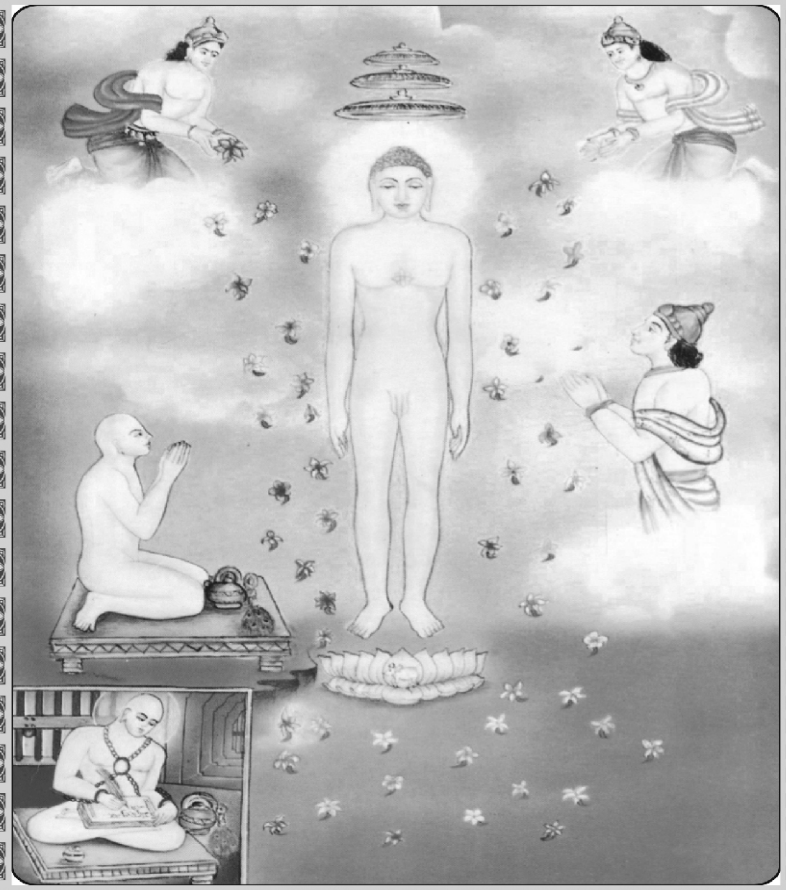

शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते,
लोकत्रयद्युतिमतां द्युति-माक्षिपन्ती ।
प्रोद्यद्दिवाकर-निरन्तर-भूरि-संख्या,
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्याम् ।।34।।

गर्भ-संरक्षक यंत्र-34

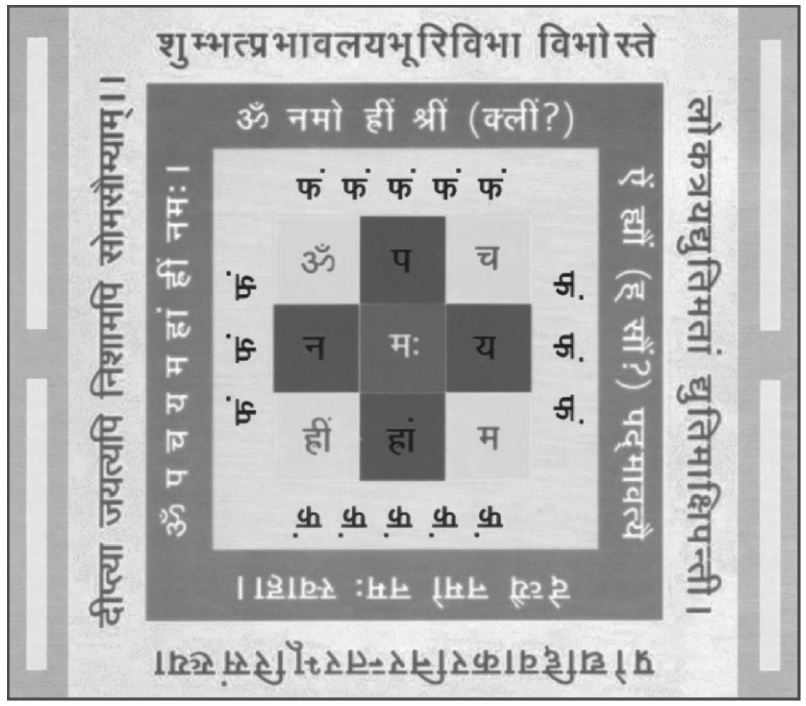

ऋद्धि — ॐ ॐ अर्हं णमो खेल्लो सहि–पत्ताणं ॐ ॐ नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ नमो ॐ श्रीं ऐं ॐ पद्मावत्यै देव्यै नमो नमः स्वाहा।
ॐ प च य म ॐ ॐ नमः।

विधि — पवित्र होकर सफेद रेशमी वस्त्र धारण कर उत्तराभिमुख मंगलकलश तथा यंत्र की स्थापना कर यंत्र पूजा करें पश्चात् सफेद आसन पर पूर्वाभिमुख पद्मासन लगाकर स्फटिक मणि की माला द्वारा 12000 बार ऋद्धि मंत्र जपकर सिद्धि प्राप्त करना चाहिये।

राजा भीमसेन बनारस के महाराजाधिराज थे। राजा भीमसेन के प्रभुत्व का प्रभाव आसपास के क्षेत्रों में भी दूर तक फैला हुआ था। छोटे–छोटे जागीरदार तथा पास के राज्य उनका लोहा मानते थे। राजा में एक ही कमी थी कि खुशामदी व चापलूस लोगों से वे हमेशा चारों ओर से घिरे रहते थे। राजा का झुकाव कुछ धर्म की ओर भी था, किन्तु प्रभुत्व का अहंकार उन्हें सच्चा धर्मनिष्ठ नहीं बनने देता था। इसी स्थिति का लाभ उठाकर चापलूसों ने राजा से निवेदन किया कि वे एक ऐसे नये धर्म की स्थापना करें, जिसमें सभी धर्मों का सार हो। अब क्या था ? राजा को यह धुन लग गई। राजा ने कई विद्वानों को यह कार्य सौंपा किन्तु वे धर्म की ऐसी खिचड़ी तैयार न कर सके। अन्त में राजा भीमसेन ने ही सभी धर्मों के सिद्धान्तों का संकलन किया और एक नवीन धर्म की स्थापना की। नये धर्म की स्थापना के साथ ही राजा में अहंकार भी बढ़ गया। उसने राजमहल के पास नये धर्म के एक देवालय की भी स्थापना की। राजा ने प्रत्येक नागरिक के लिये उस नये धर्म का पालन अनिवार्य कर दिया तथा अन्य मंदिर, मठ आदि छोड़कर नये देवालय में जाना भी अनिवार्य कर दिया। धर्म के मामले में इस जोर–जबर्दस्ती से क्षुब्ध कई अन्य धर्मों के प्रेमी राज्य छोड़कर अन्यत्र जा बसे। कई शक्तिशाली व्यक्ति शासन के विरूद्ध गुप्त षड़यंत्र रचने लगे। इससे खीझकर राजा ने सभी धर्मों के मंदिरों व मस्जिदों को तुड़वाकर उनके स्थान पर नवीन धर्म के देवालय बनवाने शुरू कर दिये, सत्ता के मद में राजा को यह भी ध्यान नहीं रहा कि हर व्यक्ति धर्म स्थापना नहीं कर सकता। हाँ, तीर्थंकरों, देवों या पैगंबरों द्वारा स्थापित धर्म का पालन करके अपना कल्याण कर सकता है। राजा ने तो अन्य धर्मों की निन्दा करके अपना घोर अशुभ कर्मों का बंध कर लिया। इन अशुभ कर्मों का फल भी शीघ्र ही उदय में आ गया, जबकि उस नवीन धर्म के संस्थापक तथा कथित पैगम्बर (राजा) का शरीर छःमाह के अन्दर ही कुष्ठ रोग से पीड़ित हो गया। उनका बलिष्ठ व सुन्दर शरीर अत्यन्त दुर्बल व घिनौना हो गया। अस्थि, चर्म व मांस सब सूख गये। पटरानी सुदर्शना तक उनको देखकर डरने लगी। जिस राजा की आज्ञा को ईश्वर की आज्ञा के समान माना जाता है, प्रजा व कर्मचारी उसकी अवज्ञा करने लगे। कुछ दिन पश्चात् जगह–जगह जिनधर्म की प्रभावना तथा प्रचार करते–करते मुनिश्री बुद्धकीर्ति जी महाराज वाराणसी नगरी में पधारे। राजा भीमसेन भी उनके दर्शनार्थ गये तथा उनके चरणों में लेट गये और अपने दुर्भाग्य का सारा कच्चा चिट्ठा उन्हें कह सुनाया। वीतरागी मुनिश्री अपनी दिव्यदृष्टि से कुछ क्षण सोचते रहे। फिर बोले–'राजन् ! किसी भी धर्म की निन्दा करना महापाप है। मद में चूर हाथी धन–धन की हानि करता है, किन्दु मद (नशा) उतरने पर शक्तिहीन होकर दुःख उठाता है। यौवन के मद में उन्मत्त युवक अपनी संचित शक्ति का दुरुपयोग करते हैं, किन्तु इसका पश्चाताप उन्हें वृद्धावस्था में होता है। इसी प्रकार आपने सत्ता के मद में आकर अन्य धर्मों की निन्दा की, उनकी अवमानना की, उनके पालन पर प्रतिबंध लगाए तथा उन्हें तुड़वाकर घोर महापाप का बंध किया। किन्तु उसके दुष्परिणाम पर अब आप दुःखी हो रहे हैं। राजा भीमसेन का अहंकार अब बिल्कुल गल चुका था अतः अत्यन्त विनम्रता से उन्होंने निवेदन किया –''महाराज श्री ! इस कष्ट का कोई उपचार बताने की कृपा करें।'' मुनिश्री ने राजा को महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र के 34 वें और 35 वें श्लोक, उनका अर्थ तथा मंत्र आदि का ज्ञान कराया और कहा कि 'भक्तिपूर्वक इनका जाप करने से तुम्हारा कष्ट दूर होगा।' राजा भीमसेन ने तीन दिन तक बड़ी कठिन तपस्या की और महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र के 34 वें और 35 वें श्लोकों का अखण्ड पाठ किया और उनके मन्त्रों की साधना में वे ऐसे तल्लीन हुए कि स्वयं जैन शासन की भक्त चक्रेश्वरी देवी ने प्रकट होकर कहा –'उठो वत्स ! तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी। भगवान आदिनाथ के अभिषेक करके गंधोदक से अपने शरीर को पवित्र करो।' यह कहकर देवी अन्तर्ध्यान हो गई। राजा भीमसेन ने ऐसा ही किया। अगले दिन सभी रानियों ने राजा भीमसेन के पुनः स्वस्थ होने पर उनकी आरती उतारी। दरबारियों ने महाराज का स्वागत किया सारा नगर व राजमहल मंगल गीतों से गुंजायमान हो उठा।।।

भावार्थ

हे भ्रभो ! आपके पास स्थित गोलाकार अत्यंत प्रकाशमान भामण्डल करोड़ों सूर्यों की ज्योति से भी अधिक तेजस्वी प्रकाशमान होने पर भी पूर्णिमा के चन्द्रमा से भी अधिक शीतल है और वह रात्रि के अंधकार को जीतता है ।

अर्थात् आपके भामण्डल का प्रकाश सूर्य और चन्द्रमा से अधिक होने पर भी शीतल - सौम्य है । यह अरहंतों के सातवां भामण्डल नामका प्रातिहार्य है ।

MEANING

O Luminous God! A grand Aura-circle, proving him unprecedented achievements of supreme Yoga Sadhana, is glittering behind your head. Oh, what a shining is of the Aura before which the light of all the three worlds fall pale! In the presence of your Aura-circle, the lights not of only one, but of several suns also become dim!! And however, this Aura-circle, but without any heat…! There is beauty of moon in your Aura circle, but without shivering cold in it!!

शब्दार्थ

विभो = हे प्रभो, ते = आपके, निरंतर प्रोद्यत् = एकसाथ उदित होते हुये, भूरि संख्या = बहुत संख्या वाले, दिवाकर = सूर्य के तुल्य, शुम्भत् = शोभायमान, प्रभावलय = भामण्डलकी, भूरि-विभा = अत्याधिक कान्तिमान ज्योति, लोकत्रय = तीन लोक के, द्युतिमताम् = दीप्तिवान् पदार्थों की, द्युतिम् = कान्ति को, आक्षिपन्ती = तिरस्कृत करती हुई, अपि = भी, सोमसौम्याम् = चन्द्रमा के समान शीतल, दीप्त्या = अपनी कान्ति से, निशाम् = रात्रि को, जयति = जीतती है ।

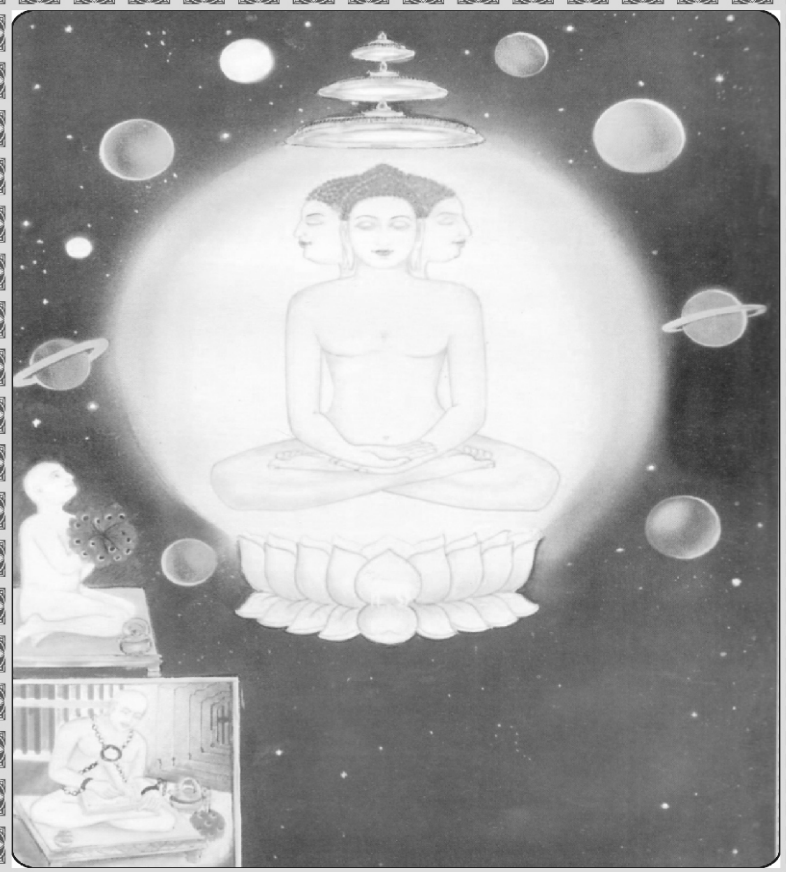

स्वर्गापवर्ग–गम–मार्ग–विमार्गणेष्टः,
सद्धर्म–तत्त्व–कथनैक–पटु–स्त्रिलोक्याः ।
दिव्यध्वनि–र्भवति ते विशदार्थ–सर्व,
भाषा–स्वभाव–परिणामगुणैः प्रयोज्यः ।।35।।

प्रकृति प्रकोप नाशक यंत्र–35

ऋद्धि — ॐ ह्रीं अर्हं णमो जल्लो–सहिपत्ताणं ह्रीं ह्रीं नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ ह्रीं अर्हं नमो जय विजय अपराजिते महालक्ष्मी।
अमृत वर्षिणी अमृतस्रविणी अमृतं भव भव वषट् सुधायै स्वाहा।
ॐ नमो गजगमने सर्वकल्याणमूर्ते रक्ष रक्ष नमः स्वाहा।

विधि — पवित्र होकर पीले रंग के वस्त्र धारण कर उत्तराभिमुख यंत्र स्थापित करें यंत्र की पूजा करें, पीले रंग के फूल चढ़ावें। दीप प्रज्ज्वलित करें पश्चात् पीले रंग की माला द्वारा 4000 बार ऋद्धि मंत्र की साधना कर सिद्धि प्राप्त करना चाहिये पीछे प्रतिदिन 108 बार जाप जपना चाहिये।

निश्चयतः अनन्तगुणों से एवं उपचारतः छयालीस गुणों से मंडित समवशरण स्थित श्री तीर्थंकर प्रभु के प्रभा–मंडल (भामण्डल) प्रातिहार्य का अलंकारिक वर्णन करते हुए भावप्रवण दिगंबर संत मानतुंग जी कहते है कि – हे तेजोराशि ! आपके भामण्डल की प्रभा कोटि–कोटि सूर्यों के समान तेज वाली होने पर भी प्रचण्डता, ऊष्णता और आताप से रहित है। दूसरी ओर इस एक ज्योतिषी सूर्यदेव की प्रचण्डता, ऊष्णता, आताप और चकाचौंध को पृथ्वी के देहधारी सहन नहीं कर सकते। असंख्य सूर्यों जैसी तेजस्विता और प्रताप रखकर भी आपके प्रभामंडल की कान्ति चन्द्र ज्योत्सना के समान निर्मल, शीतल और सुखद है। अनुपमेय प्रभु के भामंडल को 'कोटि सूर्य सम प्रभ' से तुलना करते हुए भी स्तोत्रकार ने यहां सूर्यदेव का तिरस्कार कर दिया और तत्काल ही उनका ध्यान चन्द्रमा की शीतल, निर्मल और सुखद ज्योत्सना की ओर गया, किन्तु दूसरे ही क्षण चन्द्रमा भी उनके अनुपमेय के आगे हतप्रभ हो गया। वे कहते हैं कि आपके भामंडल की कान्ति चन्द्रमा की भांति रात्रि को शोभायमान नहीं करती बल्कि रात्रि को जीतती है। 'आक्षिपन्ती' अर्थात् मिथ्यात्व अन्धकार और कालरात्रि पर भी वह विजय पाती है। श्री जिनबिम्बों के मुख–कमल की पृष्ठभूमि में बहुधा सप्त धातु निर्मित भामण्डलों का प्रयोग किया जाता है परन्तु ऐसा कोई भामंडल केवली सर्वज्ञ प्रभु के पृष्ठांग में होता नहीं। भामंडल तो वस्तुतः उनकी परमौदारिक दिव्य देह से निकलती हुई कैवल्य रश्मियों का ऐसा प्रभावलय, ऐसा अनुपम तेज पुंज है, जिसके आगे कोटि–कोटि सूर्य भी हतप्रभ हो जाते हैं सूक्ष्मतम तैजस वर्गणाओं को स्थूलदृष्टि प्रदान करने के लिए धातु निर्मित भामंडल को ही उनके प्रभा–मंडल का प्रतीक मान लिया गया है। जब सामान्य सन्त महात्माओं और अन्तरात्माओं के मुख पर एक अनुपम तेज–ओज और कान्ति झलकती है, तब साक्षात् परमात्मा की तेजस्विता के प्रताप का तो क्या कहना ? उनकी रूप राशि से निःसृत तैजस–रश्मियों का ही जब इतना अलौकिक प्रताप है कि संतृप्त जीवों दृगों को शीतलता और शान्ति का अनुभव होता है तब कैवल्य रश्मियों से बने हुए आध्यात्मिक प्रभा–मंडल के प्रताप की कितनी अपूर्व महिमा नहीं होगी ? आगमोक्त कथन है कि श्री जिनेन्द्र देव के भामंडल की निर्मल प्रतिच्छाया में भव्य जीवों को अपने अतीत, वर्तमान एवं भावी सात–सात भवों के दर्शन दर्पणवत् होते हैं। जब उनके पौद्गलिक तैजस शरीर की इतनी चकाचौंध है तब उनके विदेह चैतन्य के चमत्कार रूप प्रभा–मंडल का क्या कहना ? वस्तुतः उनके भामंडल की किरणें हमारे आवृत मति–श्रुतज्ञान को भेद कर हमें अपने सात–सात भवों के दर्शन करादें तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। सूर्य के सामने जब हम दर्पण रखते हैं तब सूर्य की किरणों को अपने में एकत्र कर वह दर्पण अपने प्रकाश का परावर्तन करता है तो युगों युगों से अंधकार पूर्ण कन्दरा में भी सूर्य का प्रकाश पहुँच जाता है। भले ही सूर्य वहाँ कभी भी न पहुँचे। परम वीतराग सर्वज्ञ हितोपदेशी तीर्थंकर भगवन्तों की ॐकारमयी दिव्य ध्वनि का सातिशय चमत्कार बतलाते हुए आचार्य श्री इस प्रातिहार्य द्वारा धर्मसभानायक श्री आदीश्वरदेव की स्तुति करते हुए कहते हैं कि – हे समवशरणाधिपते ! आपकी निरक्षरी दिव्य ध्वनि स्वर्ग और मोक्ष का परम पथ दिखाने वाली है। लोकोत्तम समीचीन जैनधर्म के तत्त्वार्थों को समझाने में समर्थ है, सक्षम है। उसमें वह अलौकिक शक्ति है कि भूमिका अनुसार श्रोताओं की भाषाओं में ही तद्रूप परिणत होती जाती है।'' वस्तुतः जितना भी द्वादशांगमय श्रुतज्ञान है वह सब समवशरण में विराजमान केवली भगवान की ओंकार ध्वनि का ही सार है। जो गणधराचार्यों द्वारा सूत्रबद्ध किया जाता है। तीनों लोक के जीवों का कितना कल्याण होता है उनकी इस दिव्य देशना से ? अनंत ।

भावार्थ

हे परमेश्वर ! संसारी जीवों का कल्याण करनेवाली आपकी दिव्यध्वनि स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग बताने वाली है । आपकी अलौकिक दिव्य वाणी अत्यन्त गंभीर, मधुर एवं विशद अर्थ करनेवाली है । भव्य जीवों को अपनी-अपनी भाषा में परिणत होकर समझ में आनेवाली है एवं आपकी दिव्य ध्वनि संसार के प्राणियों को समीचीन तत्व (धर्म) के रहस्य को समझाने में समर्थ है ।

भक्तामर के इस काव्य में भगवान की दिव्यध्वनि का वर्णन करते हुये आठवें दिव्यध्वनि नामके प्रातिहार्य का उल्लेख किया है ।

MEANING

O Sweetest, Supreme most Lord! Your discourse always flows in Raga Malkauns, but where there is song the music should be there. In this speech of yours, the celestial deities provide accompaniment of their divine musical instruments… As a result, your speech seems to be divine speech. This divine speech, flowing wherever and whenever very exactly clears the path of heaven and salvation. It wisely proclaims the sense of righteous religion. And the greatest of surprise is that this speech is understood in their respective languages by all celestial beings, by human beings of all the nations and by the animals If all the places. All the living beings understand this speech of yours in their own languages… and all the substances of the world become crystal-clear to these listeners.

O God ! Your speech only is the saviour and uplifts of those worthy people who want salvation.

शब्दार्थ

स्वर्ग = स्वर्ग, अपवर्ग = मोक्ष के, गम मार्ग = जोने के मार्ग को, विमार्गणेष्टः = अन्वेषण करने में, अभीष्ट = इष्ट, त्रिलोक्यः = त्रिलोक वर्ती प्राणियों को, सद्धर्म तत्व = सत्य धर्म के तत्व का, कथनैकपटु = कथन करने में अतयन्त समर्थ, विशदार्थ = विशद अर्थ, सर्वभाषा = सर्व भाषाओं के, स्वभाव परिणाम = स्वभाव में परिणत होने के, गुणैः = गुणों से, प्रयोज्य = युक्त, ते दिव्यध्वनिः = आपको दिव्यध्वनि, भवति = होती है ।

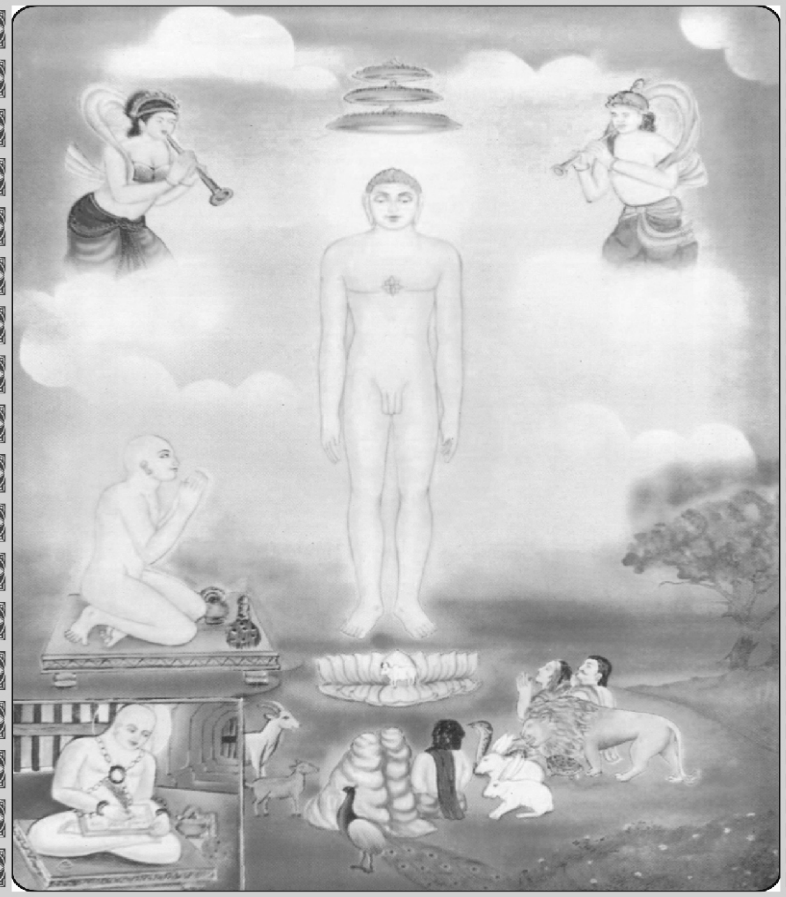

उन्निद्र–हेमनव–पंकज–पुÄजकान्ति,
पर्युल्लसन्नख–मयूख शिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ।।36।।

सर्वसम्पत्ति लाभदायक यंत्र–36

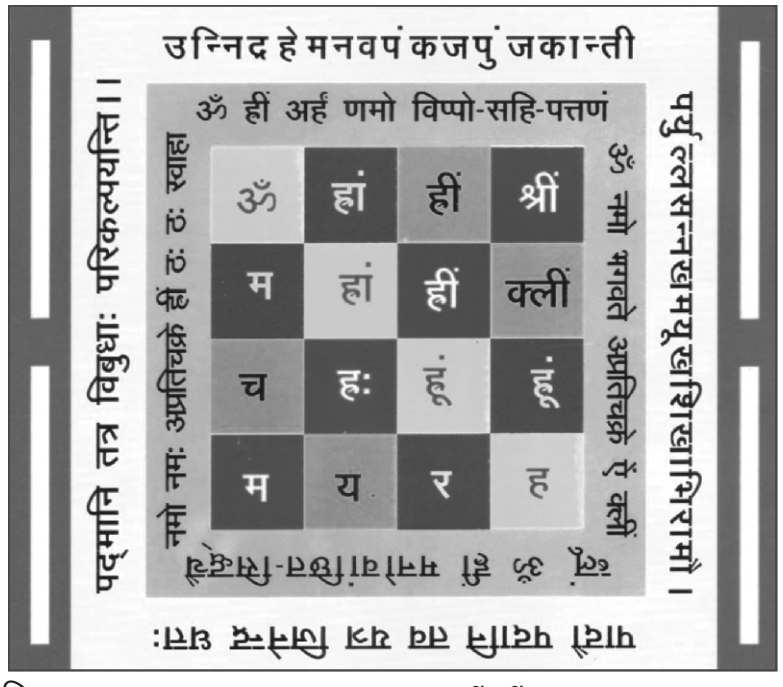

ऋद्धि — ॐ ÕÕं अर्हं णमो विप्पो–सहिपत्ताणं ÃÕं ÃÕं नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ ÕÕं श्रीं कलिकुण्ड दण्ड स्वामिन् आगच्छ आगच्छ, आत्ममन्त्रान्, आकर्षय–आकर्षय, आत्ममंत्रान् रक्ष रक्ष, परमंत्रान् छिन्द–छिन्द मम समीहितं कुरु–कुरु स्वाहा।

विधि — स्नान करके पीले वस्त्र धारण कर उत्तराभिमुख यंत्र स्थापित कर यंत्र की पूजा लीले फूलों से करें, दीपक जलावें पश्चात् पीले आसन पर पद्मासन लगाकर पीली माला द्वारा 12000 जप पूर्ण कर मंत्र सिद्ध करना चाहिये।

पटना नरेश की पुत्री राजकुमारी सुरसुन्दरी गगनचुम्बी राजमहल की सातवीं मंजिल पर बैठी हुई अपनी सखियों के साथ अठखेलियां कर रही थी। उसके हास–परिहास तथा खिलखिलाकर हंसने से राह चलते राहगीरों की पैनी नजरें बरबस ही ऊपर उठ जाती थीं। यद्यपि वे अपने लक्ष्य की ओर आगे कदम बढ़ाते रहते, किन्तु उनकी आंखें तो पीछे ही हटकर किसी आकर्षण के कारण वहीं स्थिर रहना चाहती थीं। यह केवल आंखों की बात नहीं है, पूरे संसार की बात है। इस संसार में जब भी यह जीवात्मा अपने लक्ष्य (मोक्ष) के प्रगति पथ पर आगे बढ़ रही होती है, तो संसार के विविध आकर्षण ही तो उसे पीछे खींचकर, भव–भव में फंसाए रखते हैं। पर्वत की चोटी पर बैठे व्यक्ति को धरती पर चलने वाले सभी जीव क्षुद्र दिखाई देते हैं और अपना अहंकार बड़ा दिखाई देता है। परन्तु वह मूढ़ यह नहीं सोचता कि सारी दुनिया को वह भी तो छोटा या क्षुद्र दिखाई देता होगा। राजकुमारी सुरसुन्दरी की स्थिति भी कुछ ऐसी ही थी। रूप और यौवन के अहंकार में चूर हो रही थी वह। उसी मदान्धता में उसने राजमहल के नीचे से विहारते हुए आत्मलीन दिगम्बर साधु पर जान–बूझकर पान की पीक थूक दी। पर इससे उन महान आत्मन् का क्या बिगड़ा ? नैतिक पतन तो सुरसुन्दरी का हुआ न ? और जब नैतिक पतन हो जाता है, तो भौतिक पतन होने में क्या देर लगती है ? सही भी है, राजसी वैभव और नाज नखरों में पली वह सुन्दरी बालिका क्या जाने वीतरागता के मूल्य को ? भोगी क्या जाने, योग के रहस्य व उसकी महानता को ? पानी का बुलबुला कब तक अपनी पर्याय पर गर्व करेगा ? सौन्दर्य की हाट कितने दिन चलेगी ? पुद्गल परमाणुओं से बना और रक्त, मांस, मज्जा, मल, पीव आदि घृणित वस्तुओं से भरा यह नाशवान शरीर आखिर कितने दिन तक कीमती तेल, फुलेल, क्रीम, पावडर जैसी कृत्रिम वस्तुओं से अपनी कान्ति को बनाए रख सकेगा ? जब बुढ़ापे की मार पड़ती है शरीर के सब अंग और उनकी कांति फीकी पड़ जाती है। और सुरसुंदरी के पाप का फल देने में भाग्य ने भी कोई देर नहीं की, फलतः कल की रूपवती सुरसुन्दरी आज रोगी और कुरूपा हो गई। आज का इंसान इतना भौतिकवादी हो गया है तथा अपने वर्तमान में ही इतना भटक गया है कि उसे न तो पूर्व में की गई गलती से सचेत रहने की फुर्सत है, और न अपने भविष्य को संवारने की चिन्ता । सुरसुंदरी का आज का दुर्भाग्य कल की काल करतूत का ही तो परिणाम था। उसकी कुरूप काया देखकर जहां दुनिया नाक भों सिकोड़ती थी, वहीं उसका नाम उसका मखौल उड़ा रहा था। दूसरों पर पान की पीक थूकने वाली पर आज दुनिया थू–थू कर रही थी। यही तो है कर्मों का खेल। कर्मों के कारण ही यह दुनिया भी परिवर्तनशील है। यहां दिन है तो रात भी है, दुःख है तो सुख भी है, रोग है तो इलाज भी है, बंधन है तो मुक्ति भी है, और आवश्यकता होती है तो उसके लिये प्रयत्न भी होता ही है। पटना नरेश धारिवाहन ने अपनी इकलौती बेटी के इस दुर्भाग्य को सौभाग्य में बदलने हेतू क्या नहीं किया? किन्तु जब समय आता है तो निमित्त भी मिल ही जाता है। ऐसे दुर्भाग्य को टालने के लिये 'भेत्तारं कर्मभूभृताम्' अर्थात् कर्मों के समूह को भेदने या नष्ट कर देने वाले, स्व–पर कल्याणकारी निर्ग्रन्थ मुनि के अलावा और निमित्त कौन हो सकता है ? फलतः राजा धारिवाहन का साक्षात्कार जब एक दिगम्बर जैन मुनि से हुआ, तो दया के सागर, तपस्वी मुनिराज ने एक घड़ा भर जल मंगवाया और महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र का 36 वाँ श्लोक (अन्निद्र हेम नव–पंकज–पुंज कान्ति.) ऋद्धि व मंत्र सहित पढ़ा और राजा से कहा –'यह जल किसी जलाशय में डालना। प्रतिदिन उस जलाशय में स्नान करने से राजकुमारी 36 दिन बाद शारीरिक कष्ट से मुक्त हो जायेगी। किन्तु मैं तुम्हें यह मंत्रित जल इस शर्त के साथ दे रहा हूँ कि स्वस्थ होने के बाद वह तुम्हारी 'ममता' न रहकर भवतारिका आर्यिका बनेगी। इस भव्य जीव कन्या की होनहार इसे पुनः सुरसुन्दरी बनाकर ही चुप नहीं रहेगी, अपितु इसके माथे पर लिखी भव्यता इसे शिवसुंदरी बनने का आमंत्रण दे रही है। राजा धारिवाहन ने मुनिश्री के चरणों में नमन करते हुए कहा –'महाराज श्री ! ऐसा ही होगा। और फिर उचित समय आने पर आर्यिका माता की शरण में जाकर सुरसुन्दरी ने आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर ली ।।।।

भावार्थ

हे जिनेन्द्र ! आपके पावन चरण युगल नूतन स्वर्ण कमल के समान कान्तिमान हैं। उनके नखों से चारों दिशाओं में चमचमाती मनोहर किरणें विस्तृत हो रही हैं।

धर्मोपदेश करने के लिये गमन करते समय आर्यक्षेत्र में जहाँ जहाँ आपके चरण युगल रखे जाते हैं, वहाँ-वहाँ पर भक्ति में रत देवगण, आपके चरण युगल के नीचे स्वर्णमयी दिव्य कमलों की रचना करते जाते हैं।

MEANING

O my God! Oh Indra of Jinas!

Your personality clad with offerings of flowers by the deities at the time of your imparting enlightenment is lovely. How to explain the scene of your movements! The deities make offerings of golden lotus at all the places where your holy feet are to be stepped.

To fulfill the desire of having you in their hearts, the deities wish that they could have pulled their heart out of their body to record your footprints on it. Alas, they could not do so, and to show their deep feelings of gratitude, they spread golden lotuses on the places where you step on.

शब्दार्थ

जिनेन्द्र = हे जिनेन्द्र, उन्निद्र = खिले हुये, हेम = स्वर्ण से, नव = नवीन, पंकज = कमलों के, पुञ्ज = समूह के समान, कान्ति = कान्तिवाले, पर्युल्लसन्नख = नखों की किरणों की, शिखाभिरामौ = प्रभा से सुन्दर, तव = आपके, पादौ = चरण युगल, यत्र = जहां पर, पदानि = पद, धत्तः = रखते है, तत्र = वहाँ पर, विबुधा = देवगण, पद्मानि = कमलों की, परिकल्पयन्ति = रचना करते है।

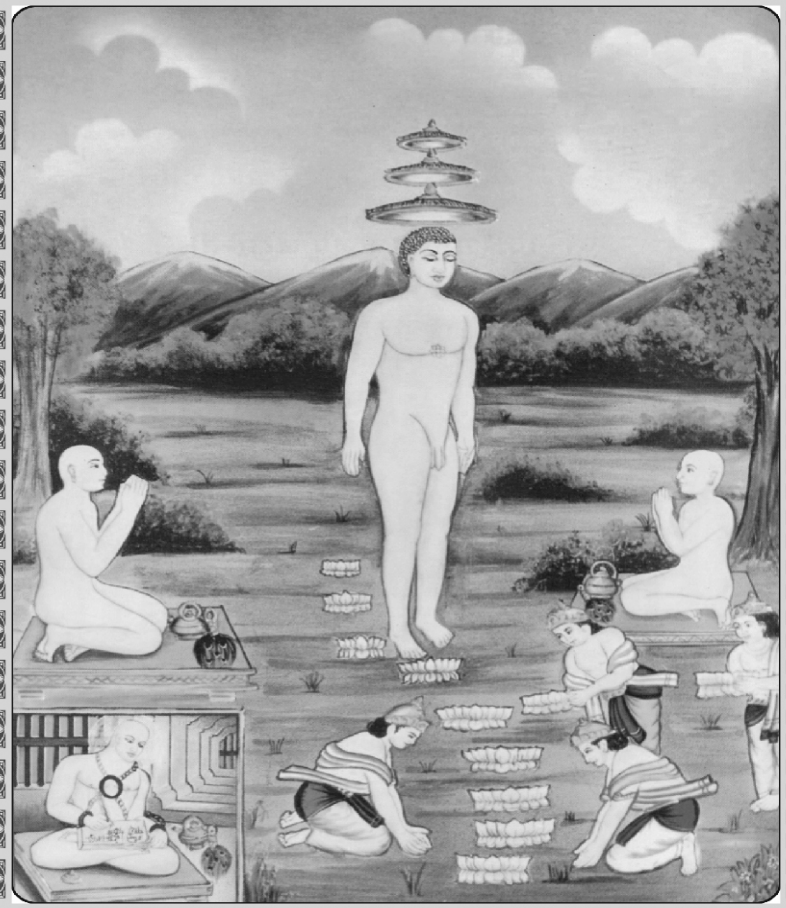

इत्थं यथा तव विभूति-रभूज्-जिनेन्द्र,
धर्मोपदेशन-विधौ न तथा परस्य ।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,
तादृक्कुतोग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ।।37।।

दुष्ट वचन अवरोधक यंत्र-37

ऋद्धि — ॐ ॐ अर्हं णमो सव्वो-सहि-पत्ताणं Ãं Ãं नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ नमो भगवते अप्रतिचक्रे ऐं क्लीं ब्लूं ऊँ ॐ मनोवांछित-सिद्धयै नमो नमः अप्रतिचक्रे ॐ ठः ठः स्वाहा।

विधि — स्नान करके सफेद वस्त्र धारण कर उत्तराभिमुख यंत्र स्थापित कर उसकी पूजा अर्चा करें पश्चात् धवलासन पर बैठकर गुग्गुल कपूर केशर कस्तूरी मिश्रित 1008 गोली बनावे और ऋद्धि मंत्र का जाप करते हुए एक एक गोली अग्नि में छोड़ता जावे। इस प्रकार मंत्राराधन कर सिद्धि प्राप्त करना चाहिये।

सोना, कनक, धन, दौलत, रुपया आदि ये सब समानार्थी शब्द हैं और 'लक्ष्मी' के ही बोधक हैं। कहा जाता है कि धन, दौलत या सोना पाकर आदमी बौरा जाता है, पगला जाता है। शायद इसीलिये एक कवि ने कहा है कि कनक (स्वर्ण) में कनक (धतूरे) से भी सौ गुनी अधिक मादकता पाई जाती है। क्योंकि धतूरे को तो खाकर आदमी पगलाता है किन्तु सोने को तो पाकर ही आदमी बौरा जाता है। धन–दौलत के बारे में एक और भी कहावत प्रसिद्ध है कि जब दौलत किसी के पास आती है तो उसकी पीठ पर एक लात मारती है जिससे उसका सीना तन जाता है और उसमें अकड़ आ जाती है। पर जब दौलत उसके पास से जाती है तो दूसरी लात जोर से उसकी तनी हुई छाती पर मारती है जिससे उस की छाती झुक जाती है। दौलत (दो–लात) की इन दो लातों को खाकर मानव समाज में दो वर्ग बन गये हैं – एक 'अकड़े रईस' और दूसरे बिगड़े रईस। ऐसे ही एक बिगड़े रईस पीली पगड़ी बांधे और मामूली से वस्त्र पहने अपने बीते वैभव को याद करते हुए जल्दी–जल्दी चले जा रहे थे। बात यह थी, व्यापार में हुई भारी हानि ने उन्हें अकड़े रईस से बिगड़े रईस बनाकर उनकी कमर ही तोड़ दी थी। ऐसी चिन्ता में भी अपने भविष्य को संवारने की आशा से आज पहली बार उन्होंने करोड़पति सेठ सुदत्त जी के घर में कदम रखा था और उन्हें विनम्र अभिवादन कर बैठने ही वाले थे कि अत्यन्त सौजन्यपूर्ण शिष्टाचार दिखाते हुए सेठ सुदत्त जी बोल उठे –'आइये ! सेठ जिनदास जी विराजिये, बहुत दिनों बाद दर्शन हुए।' मुँह से लगे हुक्के की नल को रखकर तथा तकिये का सहारा छोड़कर सेठ सुदत्त ने पान की पीक सोने की पीकदान में थूकी और पुनः बोले –'कहिये, मेरे योग्य सेवा'। बिगड़े रईस जिनदास कुछ कहते, किन्तु उनका सारा ध्यान तो सोने की पीकदान में ही उलझकर रह गया। विवेक की जगह आश्चर्य ने ले ली। बार–बार उनके मन में विचार आकर तूफान सा मचा जाते। कि इस लक्ष्मी की उपासना करते करते मैं तो मरा जाता हूँ, फिर भी वह मुझसे दूर भागती है जबकि यहां गद्दे–तकियों पर बैठे इन सेठों से उसे थुकवाने में भी लज्जा नहीं आ रही है। सेठ सुदत्त उनके भावों को भांपकर बोले –'मित्र, देखो न, मुनियों, चक्रवर्तियों व तीर्थंकरों ने मोह त्याग कर त्यागवृत्ति धारण की, तो बड़े–बड़े राजा भी उनके चरणों में मस्तक रखने लगे। मनुष्य की वास्तविक निधि (आत्मा) तो स्वयं उसके पास है। उसे भूलकर न जाने क्यों उसने जड़ पदार्थों को सर्वोच्चमान लिया है और परमात्मा बनने की क्षमता रखने वाला यह जीवात्मा आज दर–दर का भिखारी बन गया है।'' सेठ सुदत्त के मुख से हृदय के तार–तार को छू लेने वाला उपर्युक्त संबोधन सुनकर जिनदास के विवेक की तो आंखें ही खुल गईं। वे सन्तुष्ट होकर वहाँ से उठकर जाने ही वाले थे कि रुपयों से भरी एक थैली सुदत्त सेठ ने उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा –'लीजिये, इस रकम से पुनः व्यापार आरंभ कीजिये' जिनदास थैली लेकर अपने घर की ओर चल पड़े। भाग्य का अथवा लक्ष्मी का खेल देखिये। रास्ते में न जाने कैसे, थैली के सारे रुपये अकस्मात् सड़क पर बिखर गये। खन–खन की आवाज से भीड़ इकट्ठी हो गई और लोगों द्वारा बटोरकर देने के नाम पर वे मुहरें लूट ली गयीं। इस प्रकार वे मुहरें उनके पास पहुंच गईं जिनके भाग्य में थी। आखिर हुआ क्या ? क्या थैली फट गई थी ? हाँ थैली तो नहीं फटी थी, पर जिनदास की किस्मत जरूर फट गई थी। कुछ लोग कह रहे थे कि यदि सड़क पर केले का छिलका न डाला गया होता, तो सेठ जिनदास फिसलकर न गिरते और उनकी यह हालत न होती। पर केले का छिलका तो निमित्त था, असल तो उनके भाग्य में ही मुनाफा न था। किन्तु जिनदास इस घटना से जरा भी विचलित नहीं हुए क्योंकि माया की प्रकृति तथा उसकी प्राप्ति के रहस्य को वे समझ ही चुके थे। अगर अपने भाग्य में होगी तो अवश्य मिलेगी। यही सोचकर वापिसी में वे उसी नगर में विराजमार मुनिश्री के दर्शनार्थ गये और उनके उपदेश अनुसार अगले सप्ताह आने वाली दीपावली के दिन उन्होंने श्री भक्तामर स्तोत्र के 37 वें श्लोक की मंत्र सहित आराधना की। तब जैनशासन की भक्त लक्ष्मी देवी ने उन्हें एक चमत्कारी रत्न मुद्रिका भेंट की और जिनदास का भवन दीपों की रोशनी से जगमगा उठा।।

भावार्थ

हे जिनेश्वर देव ! समवशरण में विराजमान, धर्मोपदेश करने के समय जैसी अष्ट महाप्रातिहार्य रुप दिव्य विभूतियाँ आपके पास होती है, वैसी विभूति अन्य कल्पित देवों के पास किंचित् मात्र भी नहीं होती है ।

सो यह ठिक ही है कि अन्धकार को नाश कर देनेवाली जैसी ज्योति सूर्य में होती है, वैसी ज्योति टिम-टिमाते हुये तारे - नक्षत्र आदि में कहाँ से हो सकती है ? अर्थात् नहीं हो सकती है ।

MEANING

Oh my Lord of Jinas, Many prophets deliver sermons of their religions and beliefs in their own ways; but the method of imparting the philosophy and religion by you is quite unique. I have not even seen such a unique décor at all.

My Lord, let indeed the planets like Jupiter, Venus or all of them rise together, but they cannot break the supremacy of the pitch darkness of the night. It is only the light of the Sun which melts the darkness instantaneously and single handed.

Oh God, those so called proud and big prophets and preachers are, in reality, twinkling starts only, whereas you are the King of the Galaxy- the Sun. Where is the comparison? No match!

Oh my Lord, bless me to enjoy your preaching and righteousness forever.

शब्दार्थ

जिनेन्द्र = हे जिनेन्द्र, तव = आपके, धर्मोपदेशन विधौ = धर्मोपदेश देने के समय, इत्थं = इस प्रकार, यथा = जैसी (आठ प्रातिहार्य रुप), विभूति = विभूति, अभूत् = हुई, तथा = वैसी, परस्य = अन्य किसी देव की, न अभूत = नहीं हुई है, प्रहतान्धकारा = अन्धकार को नाश करनेवाली, यादृक् = जैसी, प्रभा = प्रभा, दिनकृतः = सूर्य की होती है, तादृक् = वैसी, विकासिनः = चमकते हुये, अपि = भी, ग्रहगणस्य = तारागणों की, कुतः = कैसे हो सकती है ?

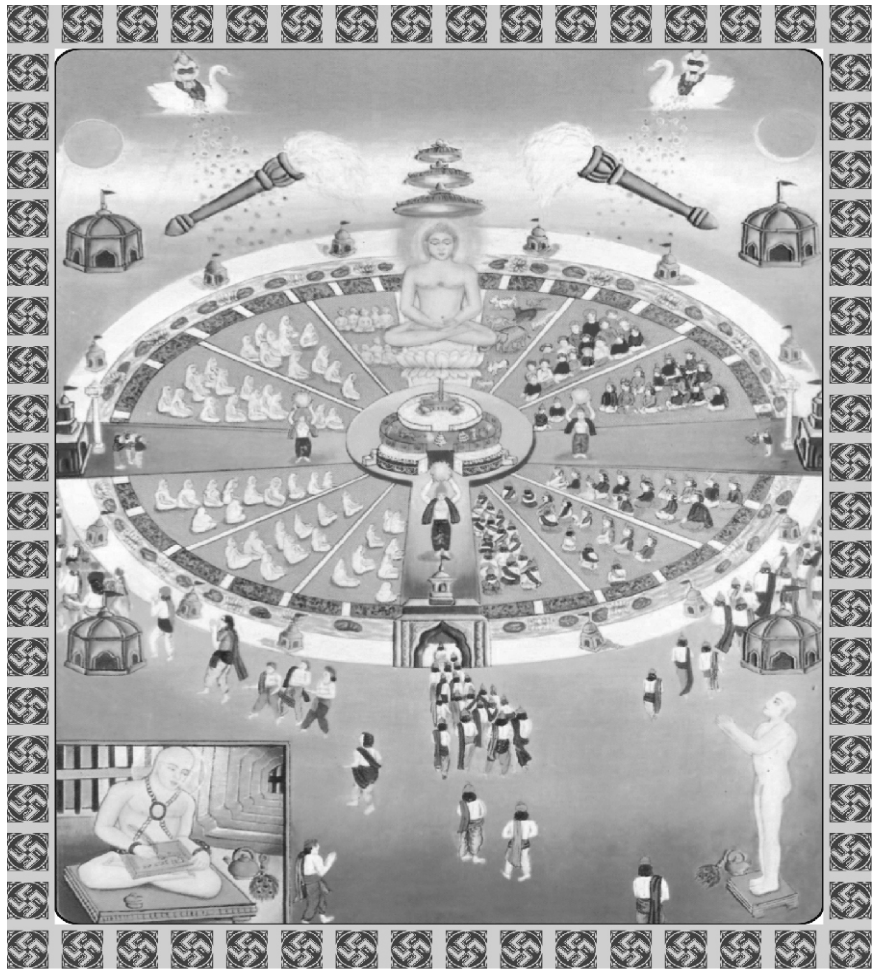

श्च्योतन्मदाविल–विलोल–कपोल मूल–
मत्त–भ्रमद्–भ्रमर–नाद–विवृद्ध–कोपम् ।
ऐरावताभ मिभ मुद्धत मापतन्तम्,
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ।।38।।

मदोन्मत्त हाथी वशीकरण यंत्र–38

ऋद्धि — ॐ ॐ अर्हं णमो मण–बलीणं Ãं Ãं नमः स्वाहा

मन्त्र — ॐ नमो भगवते अष्ट महानाग–कुलोच्चाटिनी काल द्रष्ट्र–मृतकोत्थापिनी, पर मंत्र प्रणाशिनी देवि शासन देवते õt नमो नमः स्वाहा। ॐ õt शत्रु विजय रण रणाग्रे ग्राँ ग्रीं ग्रूँ ग्रः नमो नमः स्वाहा ।।

विधि — पवित्र होकर पीले वस्त्र पहिन कर उत्तराभिमुख यंत्र स्थापित कर यंत्र की पूजार्चा करने के पश्चात् पीले आसन पर बैठकर पीली माला द्वारा 1008 बार ऋद्धि मंत्र का स्मरण करते हुए मंत्र सिद्ध करना चाहिये।

उन्माद तो उन्माद ही है। यह जब किसी पर सवार होता है तो वह आतंक व उपद्रव का पर्याय बन जाता है। एक साधारण सा कुत्ता भी जब उन्माद से पागल हो जाता है तो उत्पात मचा देता है। उस के आतंक से बचने के लिये लोग घरों के दरवाजे बन्द कर लेते हैं। इसी प्रकार यदि कोई मदोन्मत्त हाथी निरंकुश होकर उत्पात मचाना आरंभ कर दे, तो उस नगर की जनता को कैसे भयानक संकट का सामना करना पड़ता है, इसकी कल्पना करके भी मन काँप उठता है। वैसे आजकल तो नगरों में ऐसे डरावने दृश्य देखने में आते ही नहीं, क्योंकि मनुष्य की बढ़ती हुई हिंसक प्रवृत्ति तथा आर्थिक लोभ के कारण जंगली पशुओं की संख्या वैसे ही घट रही है। दूसरे, युद्धों में हाथियों की जगह अब टेंकों, तोपों व बमों ने ले ली है। किन्तु प्राचीन ऐतिहासिक युग में राजाओं की सेनाओं में हाथियों का महत्वपूर्ण स्थान होता था। युद्ध के समय हाथियों को शराब पिलाकर मदोन्मत्त किया जाता था। फिर वे शत्रु–सेना को पैरों तले रौंदते थे। कभी ऐसा भी होता था कि हाथी पागल होकर अपनी ही सेना के योद्धाओं का सफाया कर देते थे। ऐसी स्थिति में उन्हें वश में करना बड़ी टेड़ी खीर होता था। जो मदोन्मत्त हाथी बड़े–बड़े पेड़ों को उखाड़कर फेंक रहा हो, अपनी विकराल चिंधाड़ों से आसमान सिर पर उठाए फिर रहा हो, जिसके गालों से मद चू–चू कर गिर रहा हो, लाशों से जिसने धरती पाट दी हो – ऐसे मदोन्मत्त पागल हाथी को वश में करने के लिये कौन अपनी जान हथेली पर रखकर उसके सामने आयेगा ? परन्तु जैसे सपेरे भी तो अपनी जान को खतरे में डालकर जहरीले काले नाग को मंत्र मुग्ध कर लेते हैं वैसे ही सोमदत्त ने भी किया। तो वे सोमदत्त थे कौन ? और किनकी कृपा व अनुकम्पा से वे मदोन्मत्त पागल हाथी को वश में करने जैसे जानलेवा कार्य में सफल हुए थें ? सोमदत्त वीरपुर नरेश थे। दुर्भाग्यवश उनका एक पुत्र था और वह था कपूत और कलंकी उनके कपूत ने दुराचार में पड़कर न केवल अपना ही सर्वनाश किया, बल्कि अपने पिता के साम्राज्य को भी तीन–तेरह करके उन्हें दर–दर का भिखारी बना दिया। सोमदत्त अपने कुपुत्र की करतूतों के कारण बड़े चिन्तित रहते थे। तब आखिरकार वे वीरपुर छोड़कर हस्तिनापुर जा पहुँचे वहाँ रहकर उन्होंने न केवल अपने ही साम्राज्य को वापिस पाया, बल्कि वहां की सुन्दरी राजकुमारी मनोरमा से विवाह करके दहेज में विजयनगर का राज्य भी प्राप्त किया। परन्तु यह सब चमत्कारिक परिर्वतन हुआ किसकी कृपा से ? किसकी अनुकम्पा से ? किसके आशीर्वाद से ? यह हुआ था, वीतरागी दया के सागर श्री वर्द्धमान मुनिराज की कृपा से। जिन्होंने सोमदत्त को धर्म–साधना, कराने के साथ ही साथ महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र के 38 वें श्लोक 'श्च्योतन मदा विल विलोल कपोल मूल...' का पठन ऋद्धि व मंत्र सहित सिखा दिया था जो कि उसके दुर्दिनों में हर अवसर पर काम आया था। वास्तम में, भक्तामर स्तोत्र का यह 38 वाँ काव्य ऐसा ही चमत्कारिक काव्य है जिससे हाथी व अन्य जंगली व खूंखार पशु तो वश में होते ही हैं, यह राक्षसी प्रवृत्ति के घोर हिंसावादियों तथा आतंकवादियों की बर्बरता व खूंखारपन को भी शान्त करने में वशीकरण मंत्र सिद्ध होता है ।

भावार्थ

हे जिनेन्द्र देव ! गण्डस्थल से मद झर-झर कर जिसके कपोलों तक बह रहा हो और मद पीने के लिये बेसुध मंडराने वाले काले भ्रमर की गुंजार से जिसका क्रोध और भी अधिक बढ़ रहा है ऐसे ऐरावत के समान विशालकाय उन्मत्त हाथी के सामने आने पर भी आपकी शरणागत होने वाले भक्त को किसी भी प्रकार का भय नहीं रहता है ।

MEANING

Oh my God of the Gods! Oh my Lord, I was just praying and singing the hymns of your virtues till now. I know that those who come to your shelter grow into great people.

There is a mammoth elephant amidst the thickest wood with very erratic and obstinate mind. His madness is multiplied by several wasps muttering around the temple. He looks most frightening and powerful like the Airavat (mythological elephant having extraordinary strength, adorned with royal clothing and jewellery, who serves Lord Indra, the King of Devas) Even these type of mighty mammals are incapable of frightening your disciples because of the greatest strength in your shelter.

Obviously, I am not worried of such elephants approaching me. However, there is a dragonic elephant in form of uncontrollable mind that creates a big chow in my life. Lord, provide me sufficient strength to control the mammal of my wavering mind and feel the conclusive touch of your warm lap.

शब्दार्थ

श्च्योत्न = झरते हुये, मदाविल = मद से मलिन, विलोल = चंचल, कपोल मूल = गण्डस्थल पर, मत्त = उन्मत्त, भ्रमद = मंडराते हुये, भ्रमर = भौरों की, नाद = गुंजनसे, विवृद्ध कोपम् = बढ़े हुये क्रोध वाले, ऐरावताभम् = ऐरावत हाथी के समान, आपतन्तम् = सामने आते हुये, उद्धतम् = उदण्ड, इभम् = हाथी को, दृष्टवा = देखकर भी, भवदाश्रितानाम् = आपके आश्रित जनों के, भयम = भय, नो = नहीं, भवति=होता है ।

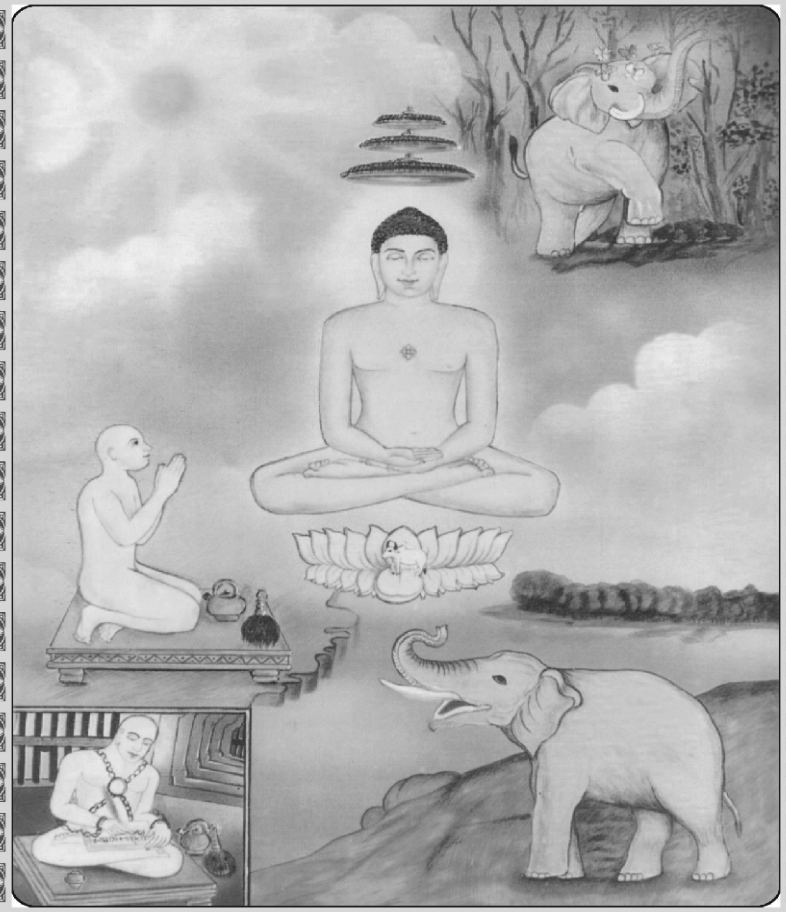

भिन्नेभ–कुम्भ–गलदुज्ज्वल–शोणिताक्त,
मुक्ताफल–प्रकर–भूषित–भूमिभागः ।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रम युगाचल–संश्रितं ते ।।39।।

सन्मार्ग दर्शक यंत्र–39

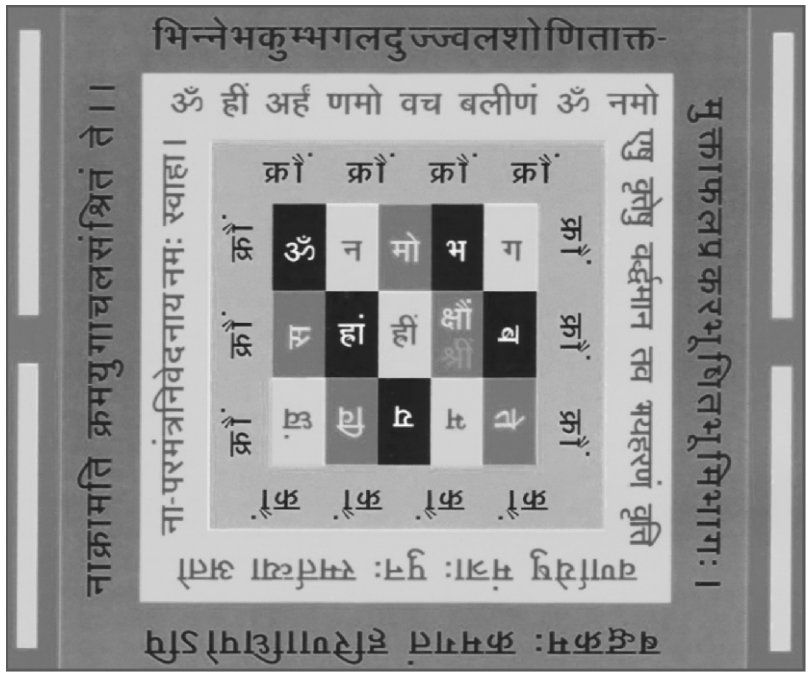

ऋद्धि — ॐ õt अर्हं णमो वयण–बलीणं Ãीं Ãीं नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ नमो एषु वृत्तेषु वर्द्धमान तव भयहंर वृत्ति । वर्णायेषु मन्त्राः पुनः स्मर्तव्या अतो ना–पर–मन्त्र निवेदाय नमः स्वाहा।

विधि — पवित्र होकर पीले वस्त्र पहिनकर पूर्वाभिमुख यंत्र स्थापित कर उसकी पूजा करें। पश्चात् पीले आसन पर उत्तराभिमुख बैठकर पीत वर्ण की माला द्वारा 1008 बार ऋद्धि मंत्र का शुद्ध मन से आराधन करें तथा प्रत्येक मंत्र के बाद गुग्गुल, केशर, कर्पूर, कस्तूरी, घृत मिश्रित धूप को खेते रहना चाहिये।

सर्कस तो कभी न कभी आप ने देखा ही होगा। उसमें जितने भी कौशल या कलाकारी के करतब दिखाए जाते हैं, उनमें सबसे जोखिम भरा कार्य होता है – सिंहो, बर्बर शेरों, बाघों व चीतों जैसे हिंसक जानवरों के बीच रहकर उन पर कठोर नियंत्रण रखते हुए उनके करतब दिखाना। बर्बर व खूंखार शेरों के साथ खिलवाड़ करना क्या अपने जीवन से खिलवाड़ नहीं है ? इन दृश्यों को देखते हुए हम दांतो तले उंगली तो दबाते हैं, परन्तु क्या कभी हमने सोचा है कि सर्कस के कलाकारों की इस सफलता का रहस्य क्या है ? गंभीर चिन्तन से ज्ञात होता है कि वे बचपन से ही इन जानवरों पर ऐसे संस्कार डालते हैं कि वे मानवीय नियंत्रण में रहने के अभ्यस्त हो जाते हैं। कोमल शाखा के समान बचपन में पशुओं की आदतों को किधर भी मोड़ा या ढकेला जा सकता है। फिर वे उन्हें मनचाहा प्रशिक्षण देते हैं तथा तंत्र विद्या से जड़ीभूत करके पशु–करतबों से जनता को सम्मोहित करते हैं। तन्त्र विद्या क्या है ? स्वयं चेतन व जागृत बने रहकर, दूसरों को जड़ बनाकर उनपर नियंत्रण रखना और फिर मनमाने ढंग से उन्हें उंगलियों पर नचाना यही सब तो तंत्र विद्या है। किन्तु मंत्र विद्या का सम्बन्ध चेतना या आत्मा से होता है। यदि मंत्र के शब्दों में चेतना की या अहिंसा के परमाणुओं का पुट है तो अवश्य ही उनसे सफलता मिलती है। भगवान महावीर, महात्मा बुद्ध आदि अनेक योगीश्वरों के तपस्या काल में इनके निकट सिंह और बकरी एक घाट पर पानी पीते थे। इन बर्बर सिंहों पर आधुनिक सर्कसों की भांति बिजली के हन्टर के आतंक से नियंत्रण नहीं किया जाता था। अपितु उन महान् तीर्थंकरों व मुनिगण के चारों ओर विद्यमान अहिंसा के परमाणुओं से प्रभावित होकर हिंसक पशुओं के भाव परिवर्तित हो जाते थे। सचमुच अहिंसा के परमाणु में बड़ी भारी शक्ति निहित होती है। आज से लगभग 100 वर्ष पूर्व की सत्य घटना है – राजस्थान में जयपुर के दीवान अमरचन्द्र जी का नाम आज भी गौरव के साथ लिया जाता है। वे सम्यग्दृष्टि श्रावक थे, किन्तु दरबार के अन्य मिथ्यात्वी व्यक्ति उनसे बड़ा द्वेष रखते थे। एक दिन उनके ईर्ष्यालु सहयोगियों ने जयपुर नरेश से चुगली की कि दीवान अमरचन्द्र अहिंसा की बड़ी डींगें हांका करते हैं और कहते हैं कि अहिंसा के सामने बर्बर सिंह भी श्वान की तरह पूँछ हिलाने लगता है। क्यों न उसकी परीक्षा ली जाये ? निदान, राजा आज्ञा से दीवान अमरचन्द्र को शेर के पिंजरे में अकेले छोड़ दिया गया। दीवान अमरचन्द्र इससे विचलित नहीं हुए, उनकी अहिंसा पर दृढ़ आस्था थी। उनका शरीर, मन व भावनाएँ अहिंसा के परमाणुओं से ओतप्रोत थी। सिंह के पिंजड़े में प्रवेश करने से पूर्व उन्होंने ताजी गर्म जलेबियों का एक थाल अपने साथ ले लिया। वे निर्भय भाव से शेर के सामने पहुँचे और ऊंची व प्रभवी आवाज में बोले –'हे स्वयंसिद्ध मृगेन्द्र ! हे वनराज मांसाहार तुम्हारी आदत बन गई है। परन्तु क्या तुम्हारा पेट केवल ताजे मांस से ही भरा जा सकता है ? हाथी, घोड़े जैसे अन्य बलशाली व शाकाहारी पशुओं की तरह दूसरी खाद्य वस्तुओं से नहीं ? मांस खाने की अपनी लोलुपता को कम करो वनराज। 24 वें तीर्थंकर भगवान महावीर भी पूर्व भव में तुम्हारी योनि में ही थे, तुम भी भव्य जीव बन सकते हो अतः अपनी दृष्टि बदलो और आत्म–कल्याण करो।' दीवान अमरचन्द्र के अहिंसा के परमाणुओं से युक्त सम्बोधन के ये शब्द ऐसी करुण व दयामयी भाषा में कहे गये थे कि उससे वनराज का किसी पूर्वभव का कोई भाव मानो जागृत हो गया हो। थोड़ी देर पहले ही दहाड़ने वाला बर्बर सिंह कुछ क्षण मूर्तिवत खड़ा रहा तथा फिर उसकी खूनी आँखों से टप–टप आंसू गिरने लगे और उसी भावुकता में उसने थाल की जलेबियां खाकर पेट भर लिया। अब क्या था ? सारा दरबार 'अहिंसा धर्म की जय' के नारों से गूंज उठा। श्रीमन् मानतुंगाचार्य के भक्तामर स्तोत्र के 39 वें काव्य में भी कुछ ऐसी ही चेतनता, करुणा तथा अहिंसामयी परमाणुओं की शक्ति विद्यमान है कि उसके वाचन से सिंहादि हिंसक पशुओं को भी वश में किया जा सकता है।।

भावार्थ

हे जिन देव ! अत्यंत बलीष्ट क्रुद्ध जिस सिंह ने बड़े-बड़े हाथियों के गण्डस्थलों को अपने नुकीले नाखूनों से चीरकर उनसे निकले हुये रक्त मिश्रित गज मुक्ताओं को बिखेर कर पृथ्वी को शोभायमान कर दिया है, ऐसे खूंखार सिंह के पंजों के बीच में पड़े हुये आपके चरण युगल रुपी पर्वत का आश्रय लेनेवाले परम भक्त का, वह सिंह कुछ भी नहीं कर सकता है। अर्थात् हिंसक वृत्ति काा खूंखार सिंह भी आपके भक्त के सामने क्रूरता छोड़कर शांत होकर बैठ जाता है ।

MEANING

Oh my Lord! I saw a lion; dangerous even than that mammal, After all, lion is the king of all animals.
That roaring lion just drilled the head of an elephant with his powerful teeth and nails. The earth is now shining with the bright pearls red with bloodshed which fell on the earth from the elephant's temple. The lion is extremely irate; he is not ready to let go anyone seen by him.
Incidentally your disciple is just in the way of that lion. The lion is not aware that the person is having shelter in your lotus feet. God, now your feet become the insurmountable mountain for the lion. His fanatic efforts to jump and bleed your Bhakta prove in-vain, futile and fruitless. The lion pales and becomes quiet.
God, the question of attach by such a lion may or may not arise in my life. But the lion of desires and envies in my mind are constantly attacking me. Lord, protect me from these enemies of my soul!

Protect me O Jineshwara !

शब्दार्थ

भिन्न = छिन्न-भिन्न, इभ = हाथी के, कुम्भ = गंडस्थल (मस्तक से), गलद् = झरते हुये, उज्ज्वल = श्वेत वर्ण वाले, शोणितात्त = रक्त से सने हुये, मुक्ताफल = गज मोतियों के, प्रकर = समूह से, भूषित = शोभित किया है, भूमिभागः = भूमि भाग को, ऐसा हरिणाधिपः = सिंह, अपि = भी, क्रमगतं = पॉवों के नीचे आये हुए, ते क्रमयुगाचल = आपके चरण युगल रुप पर्वत के, संश्रितम् = आश्रित व्यक्ति पर, बद्धक्रमः = बंधे हुए पैरों वाला जैसा होकर, न आक्रमण नहीं करता ।

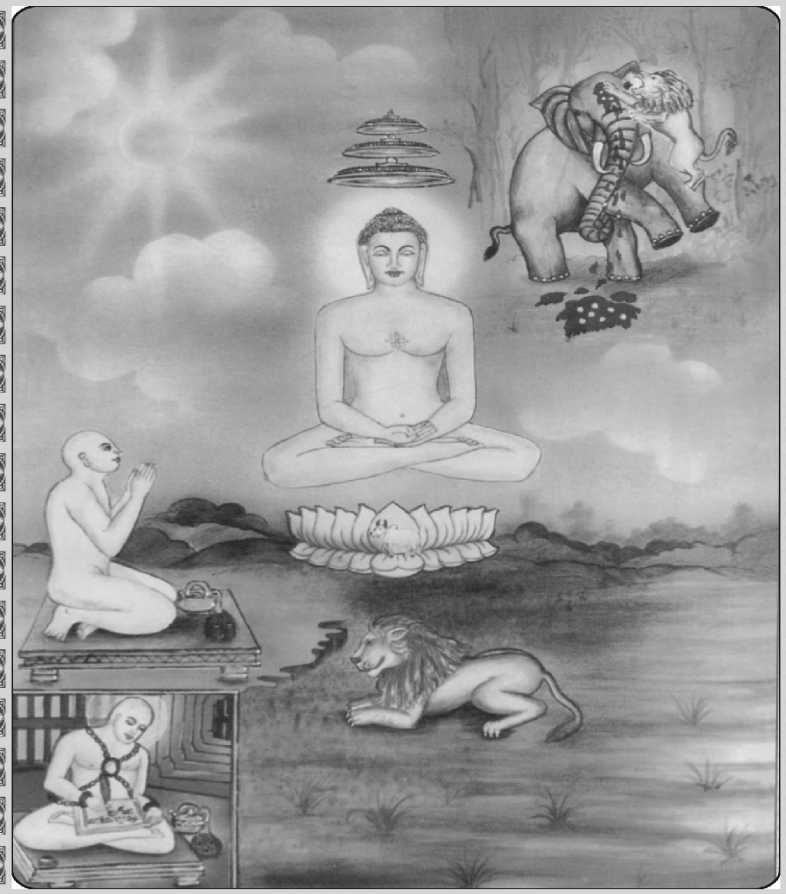

कल्पान्त–काल–पवनोद्धत–वि कल्पम्,
दावानलं ज्वलित–मुज्ज्वल–मुत्स्फुलिंगम् ।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुख मापतन्तम्,
त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम् ।।40।।

अग्निप्रकोप शामक यंत्र–40

ऋद्धि — ॐ õt अर्हं णमो कायबलीणं Ãौं Ãौं नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ õt श्रीं क्लीं õौं õt अग्निमुपशमनं शान्तिं कुरु–कुरु स्वाहा।
ॐ सौं õt क्रों ग्लौं सुन्दरपाय नमः ।।

विधि — पवित्र होकर लाल रंग के वस्त्र पहिनकर पूर्वाभिमुखा मंगल कलश तथा उत्तराभिमुख यंत्र स्थापित कर यंत्र की पूजा करें। पश्चात् लाल आसन पर पूर्वाभिमुख बैठकर लाल रंग की माला से ऋद्धि मंत्र का 12000 बार जप करके मंत्र सिद्ध करना चाहिये।

और देखते ही देखते जंगल की आग सारे व्यापारिक लश्कर तथा डेरों में फैल गई। लक्ष्मीधर जी की माल से भरी बैलगाड़ियाँ तथा अन्य सब कीमती सामान, लगता था कि आग की भेंट ही चढ़ जायेगा और लाखों की संपदा यूं ही स्वाहा हो जायेगी। चारों ओर कोलाहल मच गया –'पानी लाओ, पानी लाओ।' मगर पानी लाने के लिये चिल्लाने वाले जितने अधिक थे, पानी लाने वाले उतने ही कम। लक्ष्मीधर के सहयोगी व्यापारी तो ऐसे घबराये कि उन्हें कुछ सूझ ही नहीं रहा था। मानों उनकी अक्ल पर ताला पड़ गया हो। उधर, लपटें आकाश को छूने की होड़ लगा रही थीं। उस जमाने में आजकल की तरह अग्निशामक यंत्र (फायर ब्रिगेड) तो थे नहीं, जो आग पर एकदम काबू पा लेते । हाँ उस समय 'अग्निशामक मंत्र' जरूर होते थे। और धर्मप्रेमी तथा श्रद्धालु लोग उसी का सहारा लेकर प्रकृति के इस रौद्र रूप पर विजय प्राप्त करते थे। जब सीता जी के सतीत्व की परीक्षा लेने के लिये बनाया गया अग्निकुंड जैन धर्म के प्रभाव से सरोवर बन सकता है, तो कोई कारण नहीं कि जैनधर्म के भक्त सम्यक् दृष्टि सेठ लक्ष्मीधर उस अग्नि के प्रचंड रूप को शान्त करने में सफल न होते। सेठ लक्ष्मीधर जी घोर संकट के समय भी घबराये नहीं। उन्होंने अपने धार्मिक जीवन में विषय–वासनाओं की होली जलाकर, न जाने कितने पापों को भस्म किया था। वे बड़े धैर्य व शान्त भाव से इस आज के होलीकाण्ड को उसी तरह देखते रहे, जिस प्रकार कि जिनेन्द्र भगवान अपने अष्टकर्मों के ईंधन को अपनी अन्तर की आँखों से देखते रहे थे। लक्ष्मीधर जी सोचते कि जब अशुभकर्म का उदय आता है तो क्या नहीं होता ? रावण की तो सोने की लंका ही जलकर राख हो गई थी। फिर मेरी सम्पत्ति किस गिनती में है। अतः अशुभकर्म को टालने के लिए वे महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र के 40 वें श्लोक का पाठ बड़े एकाग्र चित्त से ऋद्धि व मंत्र सहित मधुर स्वर में जोर–जोर से करने लगे। इस पर कुछ लोक क्रूर एवं व्यंग्यात्मक सी हंसी हंसते हुए बोले –'सेठ जी ! आग बुझाने के लिए कुछ पानी–वानी का प्रबन्ध करो। यहाँ भक्तिभावना काम आने वाली नहीं है।' किन्तु सेठ जी अविचलित, अपनी साधना में लीन रहे। सरकारी संविधान में चाहे देर या अंधेर भले ही हो, उसमें चाहे मनुष्य को न्याय मिले या न मिले। किन्तु विधाता के विधान में, कर्मों के विधान में तथा सच्चे धर्म के विधान में देर या अंधेर नहीं होता। यहां धर्मश्रद्धालु सम्यग्दृष्टि सेठ लक्ष्मीधर जी भक्तामर स्तोत्र के उस 40 वें श्लोक के जाप में तल्लीन थे, वहाँ जैन शासन की अधिष्ठात्री चक्रेश्वरी देवी उनके सामने हाथ जोड़े खड़ी थी। पाठकगण यह जानने को उत्सुक होंगे कि आखिरकार ये लक्ष्मीधर कौन थे ? आग कैसे लगी? कहाँ लगी ? और किन परिस्थितियों में लगी ? तो लीजिये सुनिये लक्ष्मीधर जी पोदनपुर के एक धनी सेठ थे। वे दीपावली के दिन ही शुभ बेला में अपने कई व्यापारी साथियों के साथ व्यापार के लिए सिंहल द्वीप को चले थे। सायं को रास्ते में एक जगह विश्राम के लिये डेरे डाले गये। संध्या के समय सेठ जी ने सोचा कि आज त्यौहार का पवित्र दिन है, लक्ष्मी पूजन कर ली जाए। यह सोचकर उन्होंने भौतिक लक्ष्मी की उपासना करने के लिये आरती हेतू दीपक जलाया। भौतिक लक्ष्मी की चकाचौंध में वे यह भूल गये कि दीपावली का पर्व भौतिक लक्ष्मी की पूजा का नहीं, वरन् महावीर भगवान की पूजा करके मोक्ष लक्ष्मी की पूजा करने का है। सो सेठ जी भौतिक लक्ष्मी की पूजा करके सो गये। एक घण्टे बाद शोरगुल व कोलाहल से उनकी आँख खुली तब देखा कि आज की शुभ दीवाली तब तक होली का रूप ले चुकी थी। अतः लक्ष्मीधर की भक्तामर भक्ति के मधुराग से प्रभावित होकर जैन शासन की अधिष्ठात्री चक्रेश्वरी देवी ने जिन प्रतिभा का गन्धोदक लाकर सेठजी को दिया और वह जहाँ भी छिड़का गया, आग शीतल व शान्त होती चली गई।।।

भावार्थ

हे भगवान ! प्रलय कालीन महावायु के झकोरों से धधकती हुई भीषण दावानल की प्रचण्ड आग भी, जिसकी चिनगारियाँ आकाश की ओर उड़ रही है और जो आग समस्त संसार को ही भस्मसात करती हुई सी जान पड़ती है, ऐसी भयंकर दावाग्नि भी आपके पवित्र नाम-स्मरण रुपी जल से तुरंत ही बुझ (शांत हो) जाती है ।

MEANING

Oh my Lord! The wild fire is a fire advancing in leaps and bounds, emitting glittering sparkles in all directions. The fire is as stupendous as the one at the end on an eon, narrated in scriptures.

I see that the furious flames are spreading to engulf your Bhakta too. He prays to you; he remembers you as Adideva; and to a great surprise, the wildest of the fire extinguishes. God! What a cooling soothing and watery effect of your name! The fire is cooled down. God! I know that the Glory of your name will save me from such a fire, I desire so, but I earnestly pray to please relieve me of fiery thoughts, jealousy and envy. Extinguish the evil fire burning in my mind.

I am not going to dive up chanting your pious name till then.

शब्दार्थ

कल्पान्त काल = प्रलय का की, पवनोद्धत = तीव्र वायु से उत्तेजित, वन्हिकल्पम् = अग्नि के समान, ज्वलितम् = जलती हुई, उज्ज्वलम् = धधकती हुई, उत्स्फुलिंगम् = ऊपर को फैंकती हुई चिनगारियां, इव = मानो, विश्वम् = संसार को, जिघित्सुम् = निगलने की इच्छुक हों ऐसी, सम्मुखम् = सामने, आपतन्तम् = आती हुई, दावानलं = दावाग्नि को, त्वत् नाम कीर्तन जलम् = आपके नाम कीर्तन का जल, अशेषम् = पूर्ण रुप से, शमयति = शान्त कर देती है ।

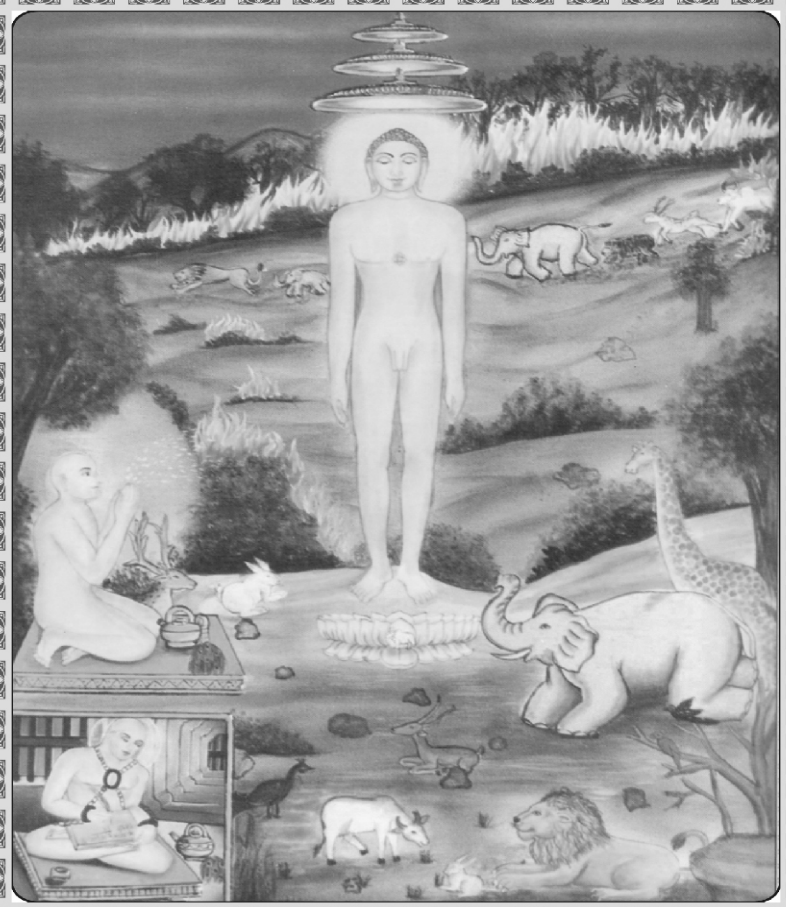

रक्तेक्षणं समद-कोकिल कण्ठ-नीलम्,
क्रोधोद्धतं फणिन-मुत्फण-मापतन्तम् ।
आक्रामति क्रमयेगेण निरस्त-शंक-
स्त्वन्नाम-नागदमनी-हृदि यस्य पुंसः ।।41।।

विष प्रभाव प्रतिरोधक यंत्र-41

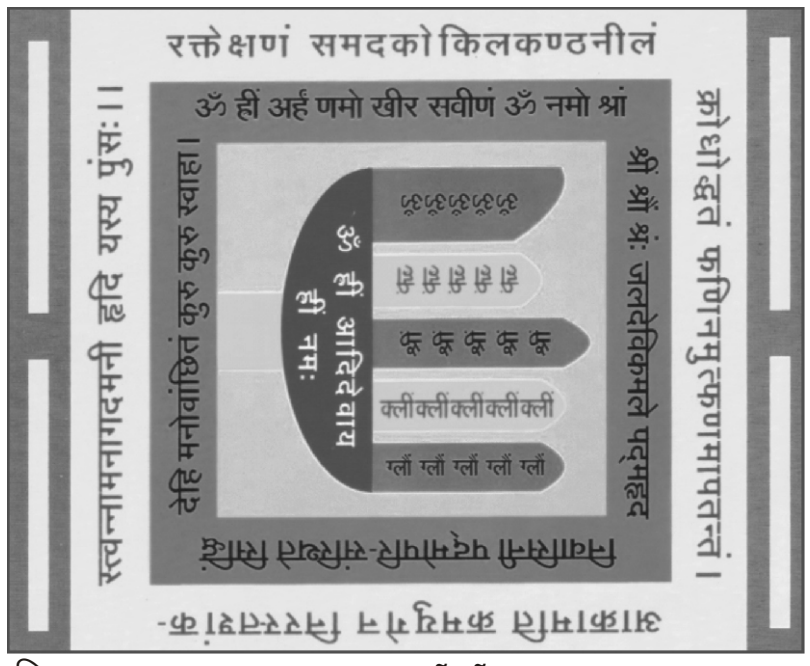

ऋद्धि — ॐ õt अर्हं णमो खीर–सवीणं Ãं Ãं नमः स्वाहा।

मन्त्र — ॐ नमो श्रां श्रीं श्रौं श्रः जल देवि कमले पद्महृद निवासिनी, पद्मोपरि–संस्थिते सिद्धिं देहि मनोवांछितं कुरु–कुरु स्वाहा ।। ॐ õं आदिदेवाय õं नमः ।।

विधि — स्नान करके सफेद वस्त्र धारण कर पूर्वाभिमुख यंत्र स्थापित कर उसकी पूजा करें, दीपक जलावें, आरती उतारें। पश्चात् सफेद आसन पर उत्तराभिमुख बैठकर स्फटिकमणि की माला द्वारा ऋद्धि मंत्र का 12000 बार आराधन कर मंत्र सिद्ध करना चाहिये।

गाड़ी में दो पहिये होते हैं यदि ये दोनों पहिये समान हों व समान गति से चलें, तो गाड़ी द्रुतगति से बिना किसी बाधा के आगे बढ़ती जाती हैं किन्तु यदि दोनों पहियों में से एक मजबूत व एक कमजोर हो अथवा एक टेढ़ा व एक सीधा हो, तो गाड़ी की गति मन्द या अवरुद्ध हो जाती है। इसी प्रकार गृहस्थ जीवन की गाड़ी के दो पहिये अर्थात् पति–पत्नी में गति–मति–रति गुणों की अथवा उनके विचार, स्वभाव व आचरण की समानता होना अत्यन्त आवश्यक है। अन्यथा उनकी गृहस्थी की गाड़ी चलेगी नहीं अपितु खिंचेगी–सेठ सुदत्त की गृहस्थी की ही तरह। उनके गृहस्थ जीवन की गाड़ी भी चल नहीं रही थी, अपतु चूँ–चूँ, चर्र–मर्र करती हुई ज्यों–त्यों कर आगे सरक रही थी। कभी एक पहिया चलता तो दूसरा जाम हो जाता कारण यही था कि पत्नी तो जैनधर्म की अनुयायी थी और पति उसका विरोधी था। पति यदि रात्रि भोजन करता, तो पत्नी उसका विरोध करती थी और समझाती थी। और यदि पत्नी जैन मंदिर जी के पूजा–पाठ में लगती तो पति उसे ताड़ना देता। फलतः आये दिन की तू–तू–मैं–मैं के कारण दोनों में 63 के बजाय 36 का अंक बना हुआ था। परन्तु सेठ सुदत्त की पत्नी चूंकि धर्म–परायणा, सदाचारीणी, सर्वगुणसंपन्ना और पतिव्रता थी अतः वह पति को सद्मार्ग पर लाने के लिये सदा प्रयत्नशील रहती थी। प्रश्न यह है कि समाज में कितनी स्त्रियां हैं जो अपने पति को इस प्रकार सद्मार्ग पर लाने का साहस जुटाती हैं ? यहां के घटना क्रम में प्रसंगवश यह बताना जरूरी है कि बहू की धार्मिक प्रवृत्ति के विरोध में उसकी सास तथा पति ने क्या षडयंत्र रचा और महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र के 41 वें काव्य के प्रभाव से वह कैसे विफल हुआ? सेठ सुदत्त एक दिन अपने शयन–कक्ष में अपनी पत्नी दृढ़वता सहित बैठे थे। आज सेठ अपनी पत्नी के प्रति असीम प्रेम का प्रदर्शन कर रहे थे। किन्तु जैसा कि शास्त्रो में कहा है – कि दुर्जन व्यक्तियों के मन में कुछ होता है, वचन में कुछ और व्यवहार व आचरण में कुछ और ही होता हैं। उस समय की इस नाट्य लीला को देखने के लिये शयन–कक्ष में इस दम्पति के अलावा कोई दर्शक न था। हाँ फूलमालाओं, श्रीफल आदि से सजा एक स्वर्ण का कलश अवश्य वहाँ रखा हुआ था। यह कलश यद्यपि षड्यंत्र की एक पूर्व नियोजित योजनानुसार ही रखा हुआ था किन्तु दृढ़वता जैसी धर्मनिष्ठा का संपर्क पाकर वह सत् व धर्मरक्षा का अपूर्व निमित्त बन गया था। तो, उस स्वर्णकलश की ओर संकेत करते हुए सुदत्त बोले –'प्रिये हमारा प्रेम गंगाजल सा निर्मल है, मैं तुम्हारी जिनेन्द्र भक्ति से बहुत प्रभावित हूँ, चहता हूँ कि आज अपने पैतृक धर्म को छोड़कर मैं जैनधर्म को अपना लूँ। 'फलतः मैं तुम्हें अपना दीक्षागुरू मानकर तुम्हारे लिये भेंट स्वरूप एक रज्नजड़ित हार लाया हूँ जो इस कलश में सुरक्षित है। तुम इसे अपने गले में पहनकर मेरी भेंट स्वीकार करो।' दृढ़वता बड़ी प्रसन्न थी कि पति जैनधर्म को अंगीकार करने जा रहे हैं अतः वह बड़े आत्मविश्वास से कलश के पास पहुंची और उसमें से रत्नजड़ित हार निकालकर पति के समीप लाते हुए बोली –'नाथ, यह अनुपम हार मेरे गले की शोभा नहीं बढ़ा सकता यह तो मैं आपके गले में डालकर आपको सम्मानित करना चाहती हूँ।' यह कहते हुए उसने श्रद्धा पूर्वक वह हार पति को पहना दिया और पीछे हटी कि देखूं कैसा लगता है ? परन्तु यह क्या ? वहाँ तो हार की जगह काला नाग सेठ सुदत्त के गले में लहरा रहा था। कुछ देर बाद सर्पदंश के कारण सुदत्त सेठ मूर्च्छित पड़े थे और उनके पास विष उतारने वाले तांत्रिकों का जमघट लगा था, किन्तु उन्हें सफलता न मिल रही थी। उधर, सास अपनी बहू को कोसे जा रही थी कि इस डायन की भूख आज पति को खाकर ही शान्त होगी। देखिये उस सास की मायाचारिता का यह नाटक, जो स्वयं इस सारे षड़यंत्र की कर्ता–धर्ता थी और स्वर्ण–कलश में काला नाग रखकर बहू को मारना चाहती थी। परन्तु दृढ़वता अपने पति की यह दशा देखकर एकाग्र मन से अत्यंत भक्तिपूर्वक भक्तामर स्तोत्र के 41 वें श्लोक को बार बार दुहरा रही थी। वह उस श्लोक के पाठ व मंत्र साधना में ऐसी लीन थी कि सास के विष उगलते कटु वचनों का भी उस पर कोई असर नहीं हो रहा था। तभी एकाएक जैन शासन की अधिष्ठात्री पद्मावती देवी ने प्रकट होकर कहा 'दृढ़वते! आंखे खोलो और उस स्वर्ण कलश के जल को अपने पति के शरीर पर छिड़को।' दृढ़वता ने उस कलश के जल को पति के शरीर पर छिड़का तो वह ऐसे उठ बैठे जैसे सोकर उठे हों। नाग को वश में करने वाले सपेरों, तांत्रिकों आदि ने जब यह दृश्य देखा तो दंग रह गये। सभी ओर जैनधर्म की जय–जयकार होने लगी और अब सेठ सुदत्त कुमार ने ही नहीं अपितु उसकी माता सहित सभी परिवारीय जनों ने जैनधर्म का अंगीकार करने की घोषणा सहर्ष की।।

भावार्थ

हे वीतरागी प्रभो ! जिस भक्त पुरुष के हृदय में, सर्प को शान्त कर देनेवाली, आपके नाम रुपी नाग दमनी जड़ी बूटी है वह भक्त पुरुष भय रहित होकर क्रोध से ऊपर की ओर फन को उठाये हुये, लाल-लाल आंखों वाले, कोयल की गर्दन समान काले सांप के सामने आ जाने पर निर्भय होकर सांप को लांघ कर चला जाता है ।

MEANING

Oh my Lord! An enraged snake rushes vehemently. Its eyes sparkle like carbuncles and poisonous black throat resembling the swollen neck of an overjoyed cuckoo.
However, your Bhakta has no fear, because he is reciting your name all the time. Your name works as Nagadamani, (the ancient herb to neutralize the effect of snake poison.) Your Bhakta is aware of this and hence, without any fright whatsoever, he crosses the cobra. The killer cobra becomes a tiny harmless insect before your Bhakta.
My God, I am not afraid of any such snake; but there is a most ferocious cobra-in the form of anger-in my mind. Please control my tongue of anger, which is ever ready to quarrel with others. Please protect me from the cobra of anger, because its single bite can destroy my age-old penance.

शब्दार्थ

यस्य = जिस, पुंसः = पुरुष के, ह्रदि = हृदय में, त्वत् = आपका, नाम = नाम उच्चारण रुपी, नागदमनी = ''नागदौन'' नामक जड़ी बुटी, (विद्यते) = विद्यमान है, सः = वह, निस्तशंकः = शंका रहित होकर, रक्तेक्षणं = लाल नेत्रों वाले, समद कोकिल = मद युक्त कोयल के, कण्ठनीलम् = कण्ठ के समान काले, क्रोधोद्धतम = क्रोध से फुंकारते हुये, आपतन्तम् = सामने आते हुये, उत्फणं = ऊपर को फण उठाये हुये, फणिनम् = सांप को, क्रमयुगेन = दोनों पैरों से, आक्रामति = लांघ जाता है ।

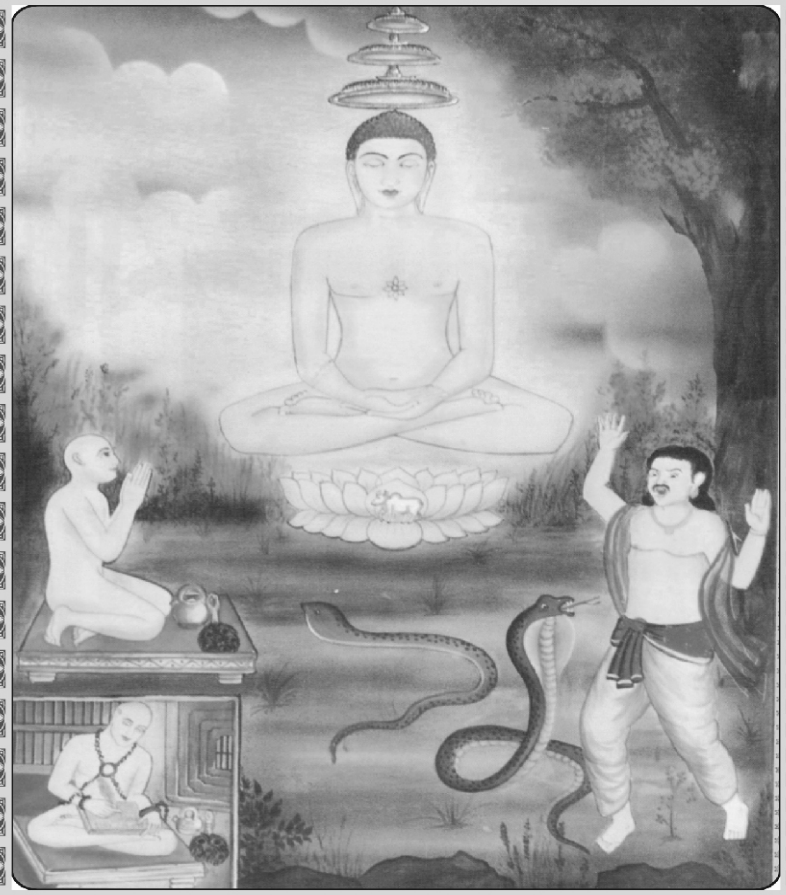

वल्गत्तुरंग–गज–गर्जित–भीमनाद–
माजौ बलं बलवता–मपि भूपतीनाम् ।
उद्यद्दिवाकर–मयूख–शिखापविद्धम्,
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदा–मुपैति ।।42।।

युद्ध अवरोधक यंत्र–42

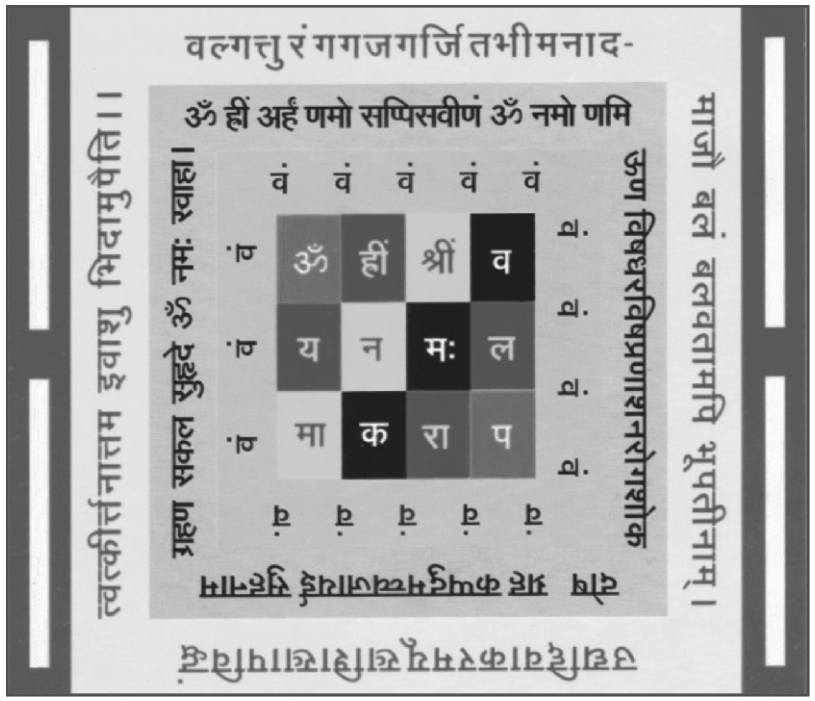

ऋद्धि — ॐ õt अर्हं णमो सप्पि–सवीणं Ãीं Ãीं नमः स्वाहा ।

मन्त्र — ॐ नमो णमिऊण विषधर–विष–प्रणाशन–रोग–शोक–दोष–ग्रह–कप्पदुमच्च–जायई सुहनाम ग्रहण सकल सुहृदे ॐ नमः स्वाहा।

विधि — पवित्र होकर धवल वस्त्र पहिनकर रक्तचंदन से लिखे यंत्र को पूर्वाभिमुख स्थापित करें, यंत्र की पूजा करें, दीपक जलावे, आरती उतारे। पश्चात् रक्त आसन पर उत्तराभिमुख बैठकर लाल रंग की माला द्वारा 12500 बार ऋद्धि मंत्र का जाप जपे तथा मंत्र सिद्ध करें ।

मनुष्य को कभी भी कान का कच्चा नहीं होना चाहिये। उसे चाहिये कि प्रत्येक बात तथा प्रत्येक परिस्थिति को अपने विवेक की तुला पर तोल कर ही अपना कर्त्तव्य निर्धारित करे। यदि सुनने वाला सावधान और विवेकी हो तो कान भरने वाले का जादू टाँय–टाँय फिस्स हो जाता है। आजकल परिवारों में आये दिन तू–तू मैं–मैं होती रहती है तथा भाई–भाई के मनों के बीच दीवारें खड़ी हो जाती हैं, इसका कारण क्या है ? इसके कारणों में इन काण्डों की रना करने वाली स्त्री ही मुख्यतः सर्वत्र पाई जाती है। पता नहीं अपने पति के कानों में वे क्या जादू फूंकती हैं कि दूध और पानी की तरह मिले रहने वाले सहोदर भी एक दूसरे के जानी दुश्मन बन जाते हैं। परन्तु ऐसा काण्ड तभी होता है जबकि पति सावधान व विवेकी न हो, अथवा उसमें स्वयं की कोई अक्ल न हो। उपर्युक्त परिस्थितियों जैसी ही यह सत्यकथा है – गुणवर्मा ने जिनालय से आकर मथुरा के राजमहल की संगमरमर जड़ित देहली पर पग रखा ही था कि बड़े भाई ने लाल–लाल आंखे निकालकर चिल्लाकर कहा –''खबरदार ! जो दरवाजे में घुसा । मूर्ख, तू मुझ जैसे राजा का भाई होने के योग्य नहीं है। मैं तेरी शक्ल भी नहीं देखना चहाता। चला जा, उल्टे पैरों यहां से। अन्यथा तुझे रक्षकों से धक्के देकर निकलवा दूंगा।'' परिस्थितियों से बेखबर तथा अपने में ही लीन गुणवर्मा अपने बड़े भ्राता की उपरोक्त कठोर आज्ञा सुनकर क्षणभर को तो सन्न रह गया, परन्तु फिर उसे ध्यान आया कि यह बड़े भाई की नहीं, राजा की आज्ञा है। क्योंकि पिताजी के स्वर्गवास के पश्चात् बड़े भाई ही तो उनके उत्तराधिकारी बने थे। उसने सोचा कि सत्ता व प्रभुता पाकर अहंकार तो हो ही जाता है और जब सत्ता का मद सर पर सवार हो जाता है तो व्यक्ति उचित–अनुचित, अत्याचार–अनाचार सभी कुछ करने लगता है। ऐसी स्थिति में सदा ही कुछ ऐसी विभूतियां जगत में आती रही हैं जो अपने सुखों पर लात मारकर परोपकार हेतू अथवा धर्मरक्षा हेतु मदान्धों का मानमर्दन करती रही हैं ! रावण ने विभीषण के साथ जो किया, भरत ने बाहुबली के साथ जो किया, कुछ वैसा ही मथुरा नरेश रणकेतु ने किया, जब कि उसने अपने विवेक की आँखें बन्द करके अपनी रानी द्वारा कान भरने से अपने छोटे धर्मनिष्ठ भाई गुणवर्मा को देश–निकाला दे दिया। कैसी करुणामयी स्थिति थी उस छोटे, भोले–भाले युवराज गुणवर्मा की, जोकि राजनीति व शासन सत्ता का तो 'क', 'ख', 'ग' भी न जानता था। शास्त्र–स्वाध्याय व पठन–पाठन ही जिसकी दिनचर्या हो, सत्संगति जिसके जीवन का आधार हो और भगवत्–भजन से ही जिसे प्यार हो.. फिर उसके साथ छल, प्रपंच और कूटनीति द्वारा ऐसा अन्याय ? परन्तु इस अन्याय को रोकने को कौन बीच में पड़कर राजा का विरोध मोल ले ? किसकी खोपड़ी फालतू है जो सत्य की रक्षा का पक्ष ले। इतिहास बताता है कि दुनिया शक्तिशाली का ही पक्ष लेती आई है। किन्तु राज्यमंत्री ने अपना कर्तव्य निभाया और राजा को लाख समझाया। पर उसकी बुद्धि तो 'विनाशकाले विपरीत बुद्धि' जैसी ही हो गई थी। ऐसी स्थिति में बदले की भावना तो आसानीसे मन में उत्पन्न हो जाती है। लोक कथाओं में आता नहीं क्या ? सुग्रीव ने अपने बड़े भाई बाली से और विभीषण ने अपने बड़े भाई रावण से बदला लेने के लिये श्रीरामचन्द्र जी का आश्रय लिया था। किन्तु गुणवर्मा का हृदय बड़ा उदार, पवित्र और विशाल था। अपमान के हलाहल को पीकर भी उसने चूँ तक नहीं की। बाहुबली के समान उसने इस परिस्थिति को अपने वैराग्य का कारण माना। देखा गया है कि यदि कामना करके साधना की जाती है तो उससे ऋद्धि–सिद्धियाँ दूर भागती हैं। किन्तु निष्काम भाव से यदि साधना की जाती है तो ऋद्धि–सिद्धियाँ हाथ बांधे उसके आगे खड़ी रहती हैं। गुणवर्मा ने श्रद्धापूर्वक भक्तामर स्तोत्र के 42 वें व 43 वें काव्य का पाठ किया तथा राज्य, शासन व सत्ता के प्रति वैराग्य भाव के कारण जैनेश्वरी दीक्षा धारण की और इन्द्र के रूप में स्वर्ग का राज्य प्राप्त किया।

भावार्थ

हे आदिश्वर विभो ! जिस भीषण रणक्षेत्र में घोडे उछाल मारकर हिनहिनाते हों, हाथी भयंकर चिंघाड़ करते हों, शत्रु पक्ष के राजा की सेना अत्यन्त शक्तिशाली हो तो भी शत्रु राजा की सेना आपके नाम का उच्चारण होते ही क्षणभर में ऐसे तितर-बितर हो जाती है जैसे सूर्य के उदय होते ही अंधकार छिन्न-भिन्न हो जाता है ।

अर्थात् आपके भक्त को शत्रुओं का भय नहीं होता है ।

MEANING

Oh Great Almighty! Your Bhakta, a King, is attacked by another King with a mighty army. A war is declared. The noises of warring elephants and horses have added the horror and hostility in the atmosphere of battle field.

Your Bhakta neither pulls his sword, nor does he call his army. He recites your hymns and sings with songs of your worship. Surprisingly, the whole attack gets helter-sheltered in no time, as the darkness is dispelled by the rays of the Sun.

God ! It was the impact of your Bhakta's hymns and prayers that did the miracle.

Like armies of the enemies, the distress and disturbances do attack me time and again. They vigorously try to obstruct my faith and devotion. My Saviour, please take me through all such situations harmlessly throughout my life.

शब्दार्थ

त्वत् = आपके, कीर्तनात् = स्तवन से, आजी = युद्ध में, बलवताम् = बलवन्त, भूपतीनाम् = शत्रु राजाओं की, वल्गत = उछलते हुये, तुरंग = घोड़े, गज = हाथियों की, गर्जित = गर्जना से, भीम नादम् = भयानक शब्द वाली, बलम् = सेना, अपि = भी, उद्यद्दिवाकर = उदित होते हुये सूर्य की, मयूख शिखा = किरणों के अग्रभाग से, अपविद्धम् = नष्ट हुए, तम इव = अन्धकार के समान, आशु = शीघ्र ही, भिदाम् = छिन्न भिन्न, उपैति = हो जाती है ।

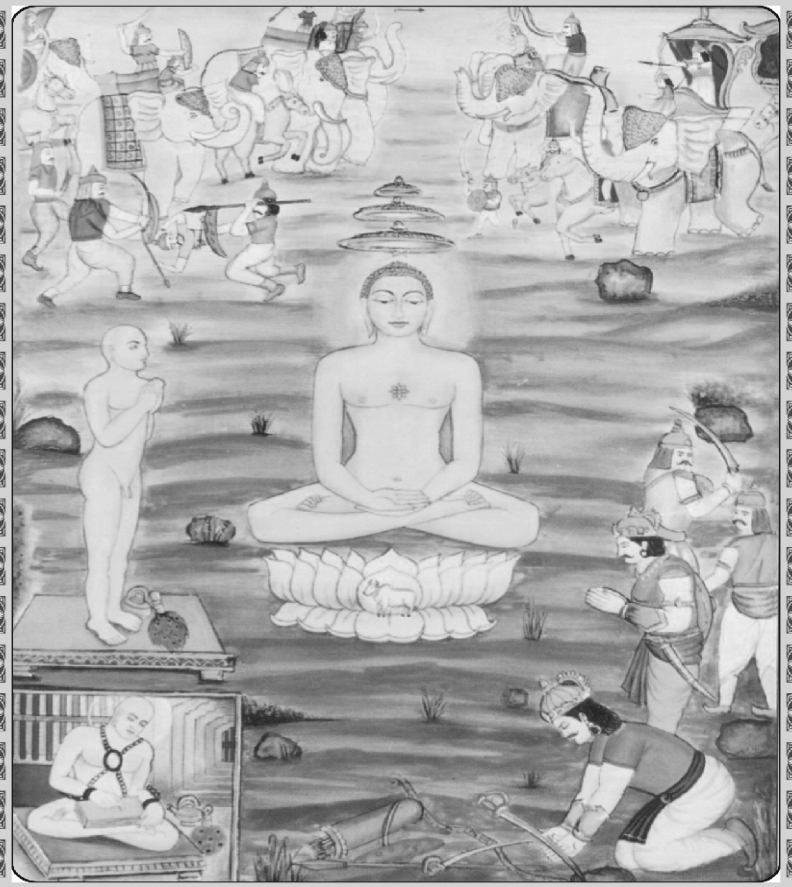

कुन्ताग्र–भिन्न–गज–शोणित–वारिवाह–
वेगावतार–तरणातुर–योध–भीमे ।
युद्धे जयं विजित–दुर्जय–जेय–पक्षा–
स्त्वत्पाद–पंकज–वनाश्रयिणो लभन्ते ।।43।।

अस्त्र–शस्त्र प्रभावहीन कारक यंत्र–43

ऋद्धि — ॐ õt अर्हं णमो महुरसवाणं Ãीं Ãीं नमः स्वाहा

मन्त्र — ॐ नमो चक्रेश्वरीदेवी चक्रधारिणी जिनशासन–सेवाकारिणी–क्षुद्रोपद्रव –विनाशिनी धर्मशान्तिकारिणी नमः शान्ति कुरु–कुरु स्वाहा।

विधि — स्नान करके शुद्ध स्वच्छ सफेद वस्त्र धारण कर पूर्वाभिमुख यंत्र स्थापित कर यंत्र की पूजा करना चाहिये पश्चात् उत्तराभिमुख सफेद आसन पर बैठकर सफेद माला द्वारा 12500 बार ऋद्धि मंत्र का आराधन कर मंत्र सिद्ध करें ।

विविध प्रकार के लौकिक भयों से मुक्ति दिलाने वाले श्लोकों की रचना करने के पश्चात् स्तुतिकर्त्ता मुनिवर्य्य मानतुंग जी 38 तथा 39 वें छंद में भीषण रणसंग्राम का दृश्य उपस्थित करते हुए कहते हैं कि आपका भक्त भले ही अपराजेय, शक्तिशाली शत्रु सैन्य के बीच घिर गया हो, कभी भी परास्त नहीं होता, बल्कि सामान्य होते हुए भी शत्रुओं की फौजों को तुरन्त तितर–बितर कर देता है। साक्षी है महाभारत का युद्ध कि पांडव पक्ष अल्पसंख्यक, राज्य सत्ता विहीन और साधन हीन होने पर भी अंततोगत्वा विजयी हुआ। इसके विपरीत उनके शत्रुपक्ष वाले कौरवगण न केवल बहुसंख्यक सुभट महारथियों से युक्त थे, अपितु साम–दाम–दण्ड–भेद आदि शक्तियों के कूटनीतिज्ञ भी थे। दुःशासन, दुर्योधन, कर्ण, द्रोण आदि सभी शूरवीर सुभटों की शक्ति एक ओर ही लगी थी। सचमुच में ऐसे एकपक्षीय सबल शत्रुओं से लोहा लेना और उन्हें जीतना किसी दैवी कृपा का ही फल होता है। वह दैवी कृपा और कुछ नहीं बल्कि साक्षात् नारायण कृष्ण का स्वयं पांडव–पक्ष की ओर झुकाव था। तात्पर्य यह कि जिसने भगवद्भक्ति का पक्ष लिया वह भले ही असंख्य प्रबल शत्रु सेनाओं के बीच घिर गया हो। भले ही उस पर अनायास जबर्दस्त आक्रमण कर दिया गया हो। शत्रु पक्ष के घोड़े उछल–उछल कर हिनहिना रहे हों !! हाथी चिंघाड़ रहे हों !! चारों ओर भागदौड़ और लूटपाट मची हुई हो, घोर निराशा का वातारण हो, इतने पर भी भक्त यदि अपनी विजय चाहता हो, शत्रुओं को नष्ट कर देना चाहता हो, एक वीर की भांति अपनी छाती पर ही शत्रु–शास्त्रों के वार झेलना स्वीकार करता हो; विपक्षी पीठ दिखाने की स्थिति में हो, तो ऐसे आड़े वक्त में जिसने भी आपका स्मरण किया, किर्तन किया, आपका पक्ष ग्रहण किया, वह तत्काल ही प्रबल से प्रबल शत्रुओं को परास्त कर देता है। शत्रु–सेना उसी प्रकार छिन्न–भिन्न हो जाती है जैसे सूर्य की किरणों की नुकीली नोकों से अंधेरा पलायमान हो जाता है। अर्थात् जिसने एक अतिशक्तिमान शुद्धात्मा – परमातमा का सहारा लिया उसके सामने अनन्त निर्बल शक्तियां क्षण भर भी नहीं टिकतीं। यह श्लोक आचार्य महाराज नये विशेष रूप से संग्राम विजय, राज्य विजय, शत्रु विजय की कामना रखने वाले राजाओं के निमित्त ही रचा है। यह श्लोक विजय का मूलमंत्र ही नहीं बल्कि उनमें वीरता और जोश भरने वाले है। प्रस्तुत श्लोक में युद्ध क्षेत्र के बहाने रौद्र, भयानक, वीर और वीभत्स रस का स्पष्ट चित्र खींचा गया है। परन्तु भगवान के चरण कमल रूपी शीतल शान्त रस के आगे वे सभी रस अपने घुटने टेक देते हैं। देखिये, कितना वीभत्स दृश्य है युद्ध क्षेत्र का कि हाथी घोड़ों के खून की नदियां जल की भांति बह निकलती हैं। योद्धा लोग उन्हें तैर–तैर कर लड़ने को उतावले हो रहे हैं। यह वीर रस का शब्दांकन है। शत्रुओं के क्रोध का ठिकाना नहीं है। यह रौद्र रस का चित्रांकन है। संग्राम इतना भीषण भयंकर और घमासान है कि हृदय कांप–कांप उठता है, दिल दहल उठता है... आदि–आदि भयानक व करुण रस के उदाहरण हैं – तो भी प्रशान्त रस उन पर विजयी होता है। क्योंकि आपके शीतल शान्त चरण कमल वन की छत्रछाया में आपका भक्त आ पहुँचा है। क्रोधादिक सारे वैभाविक रस एक स्वाभाविक शान्त रस के समक्ष अपना अस्तित्व विलीन कर देते हैं। 'त्वत्पादपंकजवनाश्रयिणो लभन्ते' पद से यही आध्यात्मिक अर्थ ध्वनित होता है। भक्त शिरोमणि आचार्य मानतुंग मुनि जिनेन्द्र भक्ति में इतने ओत प्रोत हैं कि तथा–कथित साहित्यिक नव रस भी अपनी अलंकारिक छटा उसमें बिखेरते हैं।।

भावार्थ

हे प्रभो ! जिस घनघोर भीषण संग्राम में बरछी-भालों की नोंकों से छिन्न-भिन्न किये हुये हाथियों के खून की नदियाँ सी बह निकली हों, ऐसी युद्ध भूमि से बच निकलने के लिये आतुर योद्धा भी जब आपके चरण कमल रुपी वन का आश्रय ले लेता है, तब वह भक्त योद्धा भी बात ही बात में दुर्जेय शत्रुपक्ष को जीतकर विजयश्री को प्राप्त कर लेता है ।

MEANING

Oh my God! You are not only my defender; but you are the architect of my victory over the unconquerable foes.

Let the enemies inflict the ears. The wars may be so horrifying that the points of spears and arrows may cause rivers of blood from the wounds of the elephants. The vengeful soldiers may be eager to swim through blood to win the opponents.

But when your Bhakta approaches your lotus feet, he is bound to emerge victorious.

God, I am aware that I do not have to worry at the time of such or even a greater war than this; but my past deeds and sins have already declared the war against me. However, they may not stop warring at all. But I am sure; I will attain victory by your grace. You are bound to make me victorious. I am your disciple, having taken the refuge in your lotus feet.

शब्दार्थ

कुन्ताग्र = भालों के अग्रभाग से, भिन्न = छिन्न-भिन्न हुए, गज = हाथियों के, शोणित = रक्त रुपी, वारिवाह = जल के प्रवाह में, वेगावतार = वेग से उतरने और, तरणातुर = तैरने के लिये आतुर, योधभीमे = योद्धाओं के कारण भयानक युद्ध में, त्वत् पादपंकज =आपके चरण कमल रुपी, वनाश्रयिणः=वन का आश्रय लेने वाले पुरुष, विजित दुर्जय जेय पक्षा=दुर्जय शत्रु पक्ष को पराजित करके, जयम्=विजय, लभन्ते = प्राप्त करते हैं ।

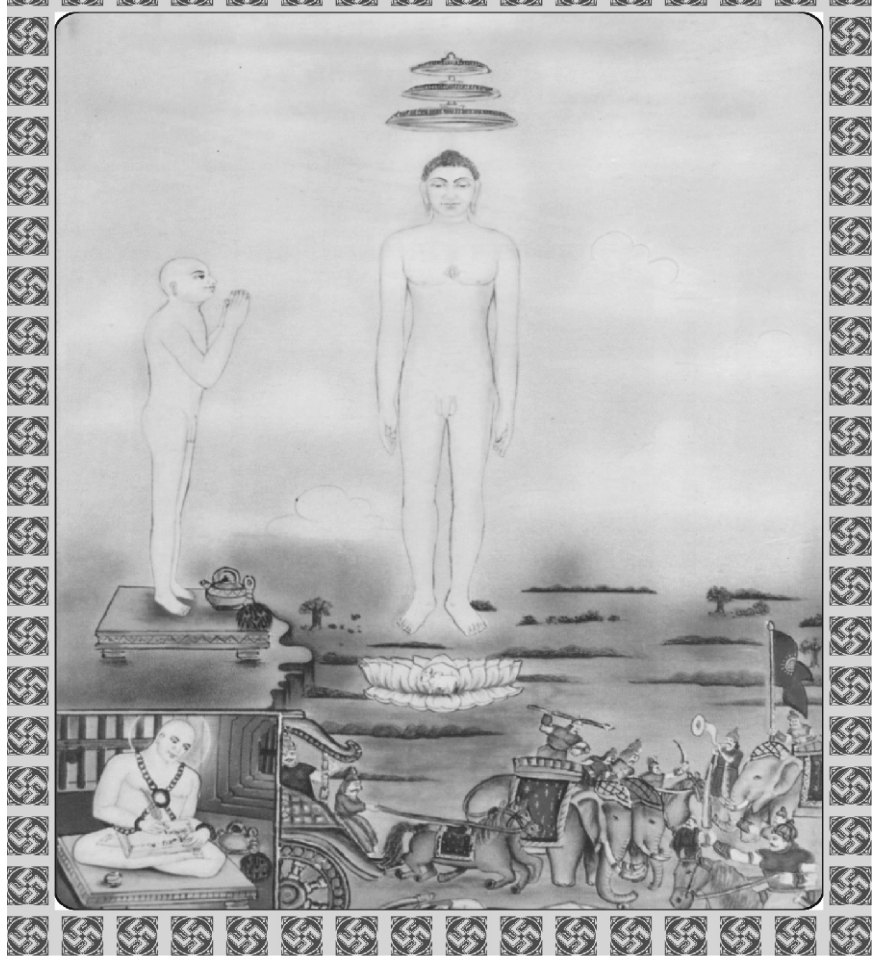

अम्भोनिधौ क्षुभित–भीषण–नक्र–चक्र–
पाठीन–पीठ–भय–दोल्वण–वाड़वाग्नौ।
रंगत्तरंगशिखरस्थितयानपात्रा–
स्त्रासंविहायभवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ।।44।।

प्रलय तूफान भय निवारक यंत्र–44

ऋद्धि — ॐ õt अर्हं णमो अमीयसवाणं Ãीं Ãीं नमः स्वाहा

मन्त्र — ॐ नमो रावणाय विभीषणाय कुम्भकरणाय लंकाधिपतये महाबल पराक्रमाय मनश्चिन्तितं कार्य कुरु–कुरु स्वाहा।

विधि — स्नानानन्तर सफेद स्वच्छ वस्त्र धारण करर उत्तराभिमुख यंत्र स्थापित कर यंत्र की पूजा करें, मंगल कलश रखें, दीपक जलावें, आरती उतारें पश्चात् धवलासन पर बैठकर स्फटिकमणि की माला द्वारा 1008 बार ऋद्धि मंत्र का आराधन कर मंत्र सिद्ध करना चाहिये ।

प्राचीन काल में समुद्री व्यापार की दृष्टि से ताम्रलिप्ति बड़ा महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह माना जाता था। उस समय का सारा व्यापार बगैर सरकार के हस्तक्षेप के, वणिक्जनों के हाथ में ही था। उनमे सेठ ताम्रलिप्त का नाम सर्वोपरि था। उनके अभूतपूर्व वैभव का लोग एक ही कारण पाते –'जैनधर्म का पुण्यप्रसादं।' वास्तव में ताम्रलिप्त जी थे तो एक कुशल व्यापारी, परन्तु धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों में उनका लक्ष्य अर्थ पुरुषार्थ से पहले धर्म–पुरुषार्थ पर रहता था। उनका विश्वास था कि जिसने धर्मपुरुषार्थ साधन यथाविधि कर लिया उसके द्वारा ही अन्य तीनों पुरुषार्थ सरलता व सफलता पूर्वक संपादित हो सकते हैं। देवदर्शन आदि गृहस्थ के छः आवश्यक कर्त्तव्यों का पालन तथा भक्तामर स्तोत्र की भक्तिपूर्वक आराधना करना ताम्रलिप्त जी की दैनिक चर्या के अंग थे और किसी भी स्थिति में वे इन्हें करना नहीं भूलते थे। प्राचीन समय में समुद्री यात्राओं में अनेक भारी मुसीबतों का सामना करना पड़ता था। समुद्री तूफान का खतरा चौबीसों घंटे नंगी तलवार की तरह सिर पर लटका रहता था। ऊँची–ऊँची पहाड़ जैसी लहरों के बीच यदि जहाज फंस जाये, तो लेने के देने पड़ जाते थे। समुद्री जीव–जन्तु व व्हेल मछलियों जैसे विशालकाय जल जीवों के हमलों से भी उस समय के छोटे–छोटे जहाजों को बड़ा खतरा बना रहता था। ऐसे विकट व भयानक अवसरों पर किसी की अक्ल काम नहीं आती थी। केवल पवित्र मन से भगवान का स्मरण करने के अलावा उस समय कोई दूसरा चारा न रहता था। एक बात और, वह यह कि व्यंतर जाति के देव जल, थल व नभ में सब जगह विद्यमान रहते हैं। जल की विशाल राशि में रहने वाले व्यंतर देव बदला लेने की दृष्टि से अथवा अपनी पूजा–प्रतिष्ठादि कराने के लिये समुद्री जहाजों को कील देते हैं और यात्रियो को सच्चे धर्म से डिगाने के लिये नाना प्रकार की यातनाएँ देते हैं। वे हिंसापूर्ण बलिदानों की मांग करते हैं और इस प्रकार मिथ्यात्व की दुष्प्रभावना करने की कुचेष्टा करते हैं। ऐसी स्थिति आने पर जिन यात्रियों की श्रद्धा सच्चे धर्म पर नहीं होती, वे नर बलि या पशुबली देकर उन कुदेवों को सन्तुष्ट करते हैं, जिससे हिंसा का बोलबाला बढ़ता है। किन्तु अहिंसक व सम्यक्त्वी कभी ऐसे कुदेवों से भयभीत या प्रभावित नहीं होते। इसी प्रकार सेठ ताम्रलिप्त जब अपनी वणिक् मण्डली के साथ अपने जहाज में हीरे–जवाहरात आदि भर कर देश को वापिस आ रहे थे तो एक जलवासिनी कुदेवी ने उनके जहाज को बीच समुद्र में ही कील दिया। फलतः वह जहाँ का तहाँ स्थिर हो गया। जलवासिनी कुदेवी का कहना था कि बिना पशु बलि दिये जहाज आगे नहीं बढ़ सकता। परन्तु सेठ ताम्रलिप्त तो सच्चे धर्मनिष्ठ, दृढ़ निश्चयी, सम्यक्त्वी तथा पूर्ण अहिंसावादी श्रावक थे। उनका विश्वास था कि हिंसा कभी अहिंसा पर विजय नहीं पा सकती। सत् कभी असत् से मात नहीं खा सकता। मैं पशु हिंसा कभी नहीं होने दूंगा। अपने लाभ व सुख के पीछे मैं इस राक्षसी देवी को सन्तुष्ट करने के लिये कभी भी मूक व निर्दोष प्राणियों की बलि नहीं दूंगा, चाहे इसका कुछ भी परिणाम क्यों न हो। इन्हीं भावनाओं के साथ ताम्रलिप्त जलवासिनी कुदेवी से कड़क कर बोले –''दुष्टे ! तू सीधी तरह मेरे मार्ग से हट जा, अन्यथा मेरे सच्चे धर्म की शासन देवी तेरा नाम निशान भी न रहने देगी। मैं वह ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती तो हूँ नहीं, जिसने जिनधर्म में अश्रद्धा करके जल के व्यंतर देव से बचने के लिए णमोकार मन्त्र को पानी में लिखकर पैर से मिटाया था, और फिर उस कुदेव द्वारा जल में ही डुबो दिया गया था, तथा जो आज भी नरकों के दुःख भोग रहा है। मैं तो अहिंसा धर्म का दृढ़ श्रद्धानी हूँ, तू मेरा क्या बिगाड़ सकती है ?'' यह कहकर ताम्रलिप्त भक्तामर स्तोत्र के 44 वें श्लोक 'अम्भोनिधौ क्षुभित–भीषण–नक्र–चक्र...' का पाठ ऋद्धि व मंत्र सहित करने लगे। उनकी आंखें तो बन्द थीं किन्तु अन्तः करण जागृत था। कुछ देर बाद जहाज के हिलने–डुलने तथा यात्रियों की जयजयकार से आँख खुली तो देखते हैं कि जहाज शांति से आगे बढ़ रहा है और उसके आगे दिव्य रूपधारिणी चक्रेश्वरी देवी उस कुदेवी की चोटी पकड़कर घसीटती ले जा रही है। जहाज के यात्रियों की आवाजें गूंज उठी थी –''अहिंसा धर्म की जय हो।''

भावार्थ

हे तीर्थंकर देव ! विकराल मगर-मच्छों से सहित उछाल मारते हुये जलचर प्राणियों के समुदाय युक्त, बड़वानल की आग की लपटों से सहित महासमुद्र में तुफानी हवाओं से उछलती हुई ऊंची-ऊंची तरंगों के कारण डगमगाता हुआ जहाज जब समुद्र में फंस जाता है तब वहां भी आपका नाम-स्मरण करते ही, भक्त सब विपदाओं से बचकर सकुशल अपनी मंजिल तक पहुंच जाता है ।

MEANING

O Lord ! Your disciple is sailing his ship in the mid-sea. A great thunderstorm is raising gigantic waves. Horrifying creatures like crocodiles, sharks and whales are seen around the ship and moving about at their sweet will.
A frightening sea fire has also erupted from the bottom of the sea, to engulf the large quantum of sea waters.
It appears that the ship is about to wreck in the storm and sink your Bhakta is silent and serene. These calamities make no effect on him. He recites and remembers your name and reaches his destination without harm or hindrance.
God, I do not know as to when shall I have to be in such a vicious thunderstorm; but this ocean of sorrow and grief disturbs me now and again, bent upon to sink my ship of penance. Oh god, please protect me. Please take me safely through the Ocean of Births and Deaths to my ultimate destination, Moksha. I would sink myself in recitals rather than in the sea of sorrow and grief.

शब्दार्थ

क्षुभित = क्षोभ युक्त, भीषण = भयंकर, नक्र-चक्र = मगर के समूह और, पाठीन-पीठ = मच्छों की पीठ की टक्कर से, भयदोल्वण = भय के उत्पादक एवं भयंकर, वाड़वाग्नी = बड़वानल से युक्त, अम्भौनिधौ = समुद्र में, रंग-तरंग = लहराती हुई लहरों के, शिखर स्थित = शिखर पर डगमगाते हुये, यान पात्राः = जहाज के व्यक्ति, भवतः = आपके, स्मरणात् = स्मरण से, त्रासं = घबराहट को, विहाय = छोड़कर व्रजन्ति = किनारे पर चले जाते हैं ।

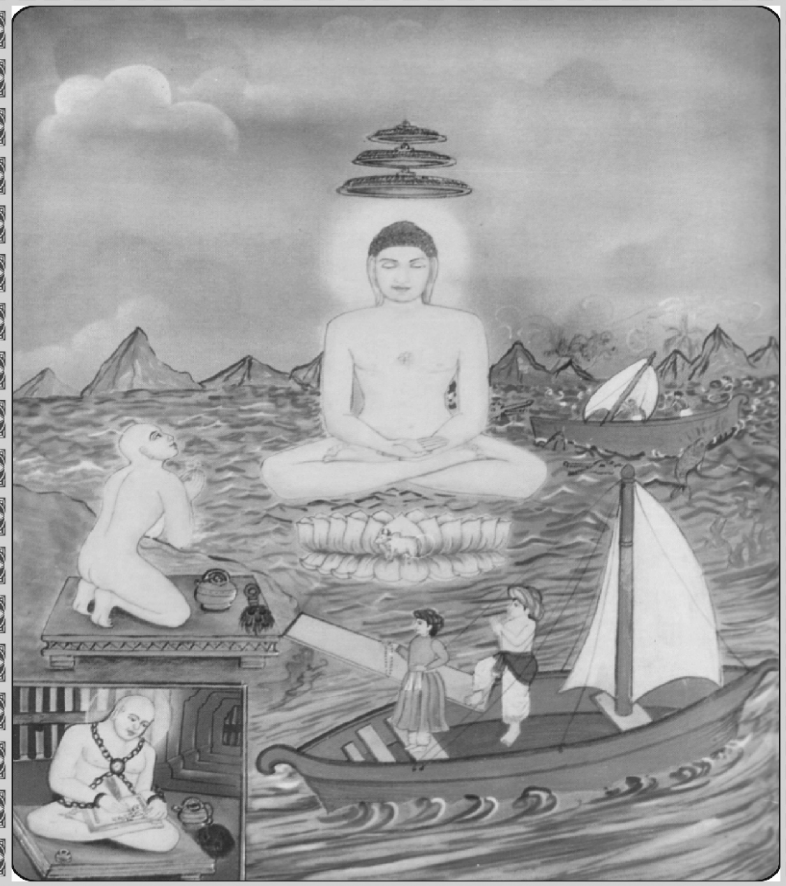

उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार-भुग्नाः
शोच्यां दशामुपगताश्च्युत-जीविताशाः ।
त्वत्पाद-पंकज-रजोऽमृत-दिग्ध-देहा,
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्य-रूपाः ।।45।।

असाध्य रोग निवारक यंत्र-45

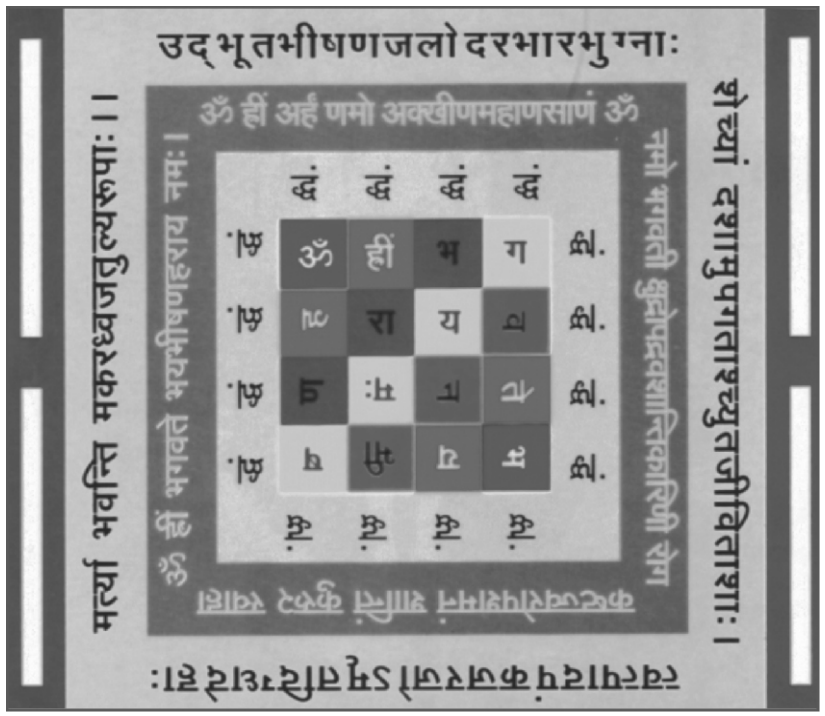

ऋद्धि — ॐ õt अर्हं णमो अक्खीण महाण–साणं Ãीं Ãीं नमः स्वाहा

मन्त्र — ॐ नमो भगवती क्षुद्रोपद्रव शान्तिकारिणी रोग कष्ट ज्वरोपशमनं शान्तिं कुरु–कुरु स्वाहा। ॐ õीं भगवते भयभीषणहराय नमः।

विधि — पवित्र होकर पीले रंग के वस्त्र पहिनकर दक्षिण दिशा की ओर यंत्र स्थापित कर यंत्र की पूजा करें पश्चात् पीले आसन पर बैठकर पीले रंग की माला द्वारा 1008 बार ऋद्धि मंत्र का स्मरण कर मंत्र सिद्ध करना चाहिये ।

इन कर्मों की गति सचमुच बड़ी न्यारी है । ये कर्म ही तो है जो कभी हमें रुलाते हैं, तो कभी हंसाते हैं । नागपुर नरेश मानगिरि अपने साथियों सहित भ्रमण को निकले थे कि उन्होंने रास्ते में एक वृक्ष के नीचे पड़े दुर्बल व बीमार युवक को देखकर पूछा -'कयों भाई, कौन हो तुम ? क्या नाम है तुम्हारा ? युवक ने उत्तर दिया -''मैं उज्जयीनी नरेश नृपशेखर का इकलौता पुत्र युवराज हंसराज हूं ।'' राजा ने पुनः कहा -''तुम्हारा यहाँ कैसे आना हुआ ?'' युवक बोला -'दुर्भाग्य का मारा कोई कहीं भी जा सकता है राजन् । कर्मों के अधीन है मनुष्य का भाग्य तो । कर्मों की हवा उसे जहां भी उड़ा ले जाये, उसे जाना ही पड़ता है ।' राजा बोला -'वत्स ! बातचीत से तो तुम युवराज ही लगते हो, परन्तु तुम यहां अर्थात् पेड़ के नीचे अनाथ की तरह पड़े हुए क्यों कराह रहे हो ? क्या तुम्हें कोई बीमारी हैं ?'' युवक बोला -''हाँ महाराज, मैं बीमार हूँ । लेकिन एक बीमारी हो तो बताऊँ । वात, पित्त, कफ, की विषमता से मैं पीड़ित हूँ । राजवैद्य ने 'जलोदर' रोग बताया था, परन्तु वह इलाज न कर पाया । मेरे घुटनों में गठिया के कारण पीड़ा होती है । कफ व खांसी तो चैन ही नहीं लेने देती । अब तो कोढ़ के धब्बे भी दिखने लगे हैं । मौत की घड़ियां गिन रहा हूँ, पर निगोड़ी वह भी नहीं आती ।'' इतना कहते-कहते युवक का कंठ अवरुद्ध हो गया । तथा उसकी आंखों से सावन की झड़ी लग गईं। राजा मानगिरि यद्यपि बड़े कठोर व निष्ठुर स्वभाव के थे, किन्तु युवराज की करुण कहानी सुनकर व उसकी नारकीय पीड़ा देखकर वे विचलित से हो उठे । किन्तु तभी उनकी आंखों से एक छिपी मुस्कान सी आती दिखाई दी इस मुस्कान के पीछे शायद उनका कोई फैसला था, लगता था मानों उन्हें कोई खोई चीज मिल गई हो । अगले दिन राजा मानगिरि की पुत्री कलावती दुल्हिन के रूप में सजी हुई विवाह-मंडप में खड़ी थी और उपरोक्त युवराज हंसराज उसी अवस्था में दूल्हा बना खड़ा था । बस फेरे पड़ने की देर थी । वैसे कर्म के फेरे तो पड़ ही रहे थे । पुरोहित, मंत्री तथा दरबारी, सभी राजा को रोक रहे थे कि 'महाराज! क्यों अपनी लाड़ली इकलौती बेटी का अमूल्य जीवन एक सड़े गले मुर्दे समान युवक से विवाह करके नष्ट कर रहे हो ? ऐसा करने से तो नरक में भी जगह न मिलेगी ।'' किन्तु राजा के दंभ व अहंकार का तो कोई ठिकाना ही न था, वे तो आपे से बाहर थे, किसी की सुनने को तैयार नहीं । बोले -'यह लड़की हमारे आसरित है, हमारा दिया हुआ खाती है, फिर भी यह कर्म-कर्म चिल्लाती है, कहती है कि मैं अपने कर्मों का ही खाती हूँ । यह मेरे उपकार की कोई कद्र ही नहीं करती । देखें, कर्म इसे अब कैसे तारेंगे ? कर्मों का सताया युवराज ही इसके लिये योग्य वर है।' विवाह तो हुआ, कर्मों के फेरों ने विवाह के फेरे भी डलवाये किन्तु मातमी वातावरण में । माता की ममता मानों दीवार से सिर फोड़ रही थी । किन्तु कलावती..? वह अपने पति के विरोध में एक शब्द भी कैसे बोल सकती थी ? अतः अपने भावी जीवन की आशाओं के सहारे वह तो मौन धारण किये रही । और जब कर्मों की गति ने करवट ली तो निमित्त्व भी मिल गया । वह यह कि जिस दिन युवराज हंसराज व कलावती विवाह सूत्र में बंधे, उसी दिन से उनका प्रत्येक दिन सोने का और रात चांदी की बनती चली गयी । जिस प्रकार विपत्तियां अकेले नहीं आती, उसी प्रकार सौभाग्य भी जब आता है तो सारा वैभव अपने साथ लाता है । बात यह हुई कि उक्त दोनों दम्पत्ति को एक परम दिगम्बर मुनिराज के द्वारा महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र के 45 वें श्लोक का निमित्त मिल गया । उस श्लोक के सात दिन तक निरन्तर अखण्ड जाप से युवराज की घिनौनी काया कंचन सी हो गई । इसके बाद वे दम्पति पूज्य मुनिराज के चरणों में पुनः पहुंचे, नमन किया और बैठ गये । तब मुनिराज ने बताया कि कुमार की यह हालत उसकी सौतेली माँ कमला द्वारा दुर्भावनावश प्रच्छन्न रूप से दिये गये विषैले खाद्य पदार्थ के कारण हुई थी । अच्छा हुआ कि युवराज ने राजमहल छोड़ दिया और अब निमित्त पाकर उन्हें पुर्नजीवन मिल गया । इन अच्छे या बुरे कर्मों ने तो तीर्थंकरों तक को नहीं छोड़ा । इन कर्मों के कारण ही हमारा बार-बार का संसार भ्रमण समाप्त नहीं होता । ये कर्म ही हैं जो कभी तो मनुष्य को दुःखों से रसातल में पहुंचा देते हैं और कभी सुखों के उच्च शिखर पर बैठा देते हैं । जब तप-बल से हमारे सब कर्म नष्ट हो जाते हैं तब तो हमारे संसार-भ्रमण का ही अंत हो जाता है । सभी अष्ट कर्मों का नष्ट हो जाना ही तो मोक्ष का कारण है ।।

भावार्थ

हे प्रभो ! जिस मनुष्य को भयंकर जलोदर आदि दारुण रोग हो जाने से जिनकी कमर एकदम झुक गई है, मूल्यवान औषधियों को लेते रहने पर भी जिनके घर वालों को उनके जीने की आशा नहीं रही है, ऐसी जो शोचनीय दयनीय अवस्था को प्राप्त हो गये हैं वे भी जब आपके चरण कमलों की रज रुपी अमृत को भक्ति पूर्वक अपने शरीर पर लगाते हैं, तो वे भी स्वस्थ होकर कामदेव के समान सर्वांग सुन्दर हो जाते हैं ।

MEANING

Persons, bent down under the weight of the horribly risen dropsy, being in pitiable plight and with lost hopes of life, attain equality with the cupid in beauty by applying to their bodies the nectar of pollen of your lotus-like feet.

शब्दार्थ

उद्भूत = उत्पन्न हुये, भीषण = भयानक, जलोदर = जलोदर के, भारभुग्ना = भार से पीडित, शोच्यां = शोचनीय, दशाम् = दशा को, उपगतः = प्राप्त तथा, च्युत जीविताशाः = छोड़ दी है जीने की आशा जिसने, मर्त्या = ऐसे मनुष्य, त्वत्पादपंकज = आपके चरण कमलों की, रजोमृत = रजरुपी अमृत से, दिग्ध देहा = देह, को लिप्त करके, मकर ध्वज = कामदेव के, तुल्यरुपा = समान रुप वाले, भवन्ति = हो जाते हैं ।

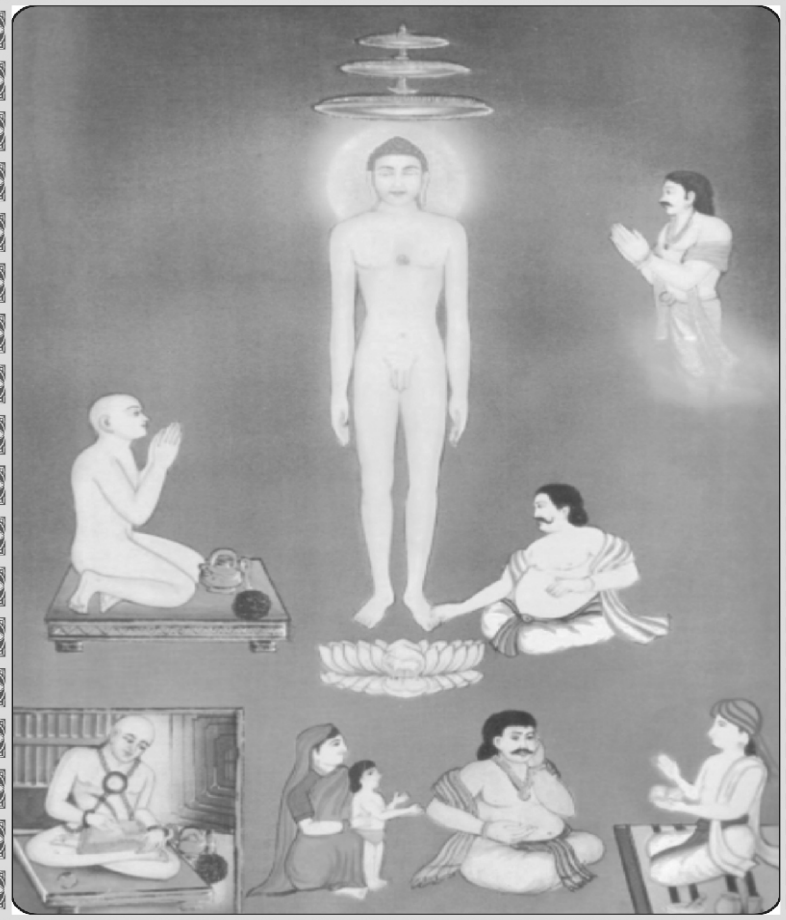

आपादकण्ठ–मुरु–शृंखल–वेष्टितांगा,
गाढं बृहन्निगड–कोटि–निघृष्ट–जंघाः।
त्वन्नाम–मन्त्र–मनिशं मनुजाः स्मरंतः,
सद्यः स्वयं विगत–बन्ध–भया भवन्ति ।।46।।

कारागार बन्ध मोचक यंत्र–46

ऋद्धि — ॐ õt अर्हं णमो वड्ढ–माणाणं Ãीं Ãीं नमः स्वाहा

मन्त्र — ॐ नमो õीं õीं श्रीं हूँ õीं õः ठः ठः जः जः क्षां क्षीं क्षूं क्षः क्षयः स्वाहा।

विधि — स्थानान्तर पीलं रंग के वस्त्र पहिनकर पूर्वाभिमुख यंत्र स्थापित कर पीले फूलों से यंत्र की पूजा करना चाहिये। मंगल कलश की स्थापना भी करें, दीपक जलाकर आरती उतारें पश्चात् पीले आसन पर उत्तराभिमुख बैठकर पीली माला द्वारा ऋद्धि मंत्र का 12000 बार जप पूरा करें तो मंत्र सिद्ध होवे ।

भारत के मध्यकालीन इतिहास के पन्नों को यदि हम पलटें, तो जहाँ हमें भारत की संस्कृति और धर्म की गौरव–गरिमा का सूर्य ढलता सा दिखाई देता है, वहीं उसमें कुछ ऐसे स्वर्णिम अध्याय भी हैं जिनमें भक्तिकाल का उगता सूर्य अपनी प्रखर किरणों से राजा तथा प्रजा, दोनों को ही चमत्कृत कर रहा था। राजपूताने की वीरता का इतिहास भी विश्व में अनूठा है। राजपूताने का जैन वीर युवराज रणपाल एक सुन्दर, स्वस्थ, सुशील, साहसी और सुशिक्षित युवक था। उसके पिता अजमेर नरेश उरपाल दरबार में सिंहासन पर बैठे थे कि उसी समय पडोसी मित्र राज्य वासुपुर के नरेश का दूत उनका एक गुप्त पत्र लेकर आया। पत्र में लिखा हुआ था ''महामान्य नृपतिवर ! उभ्यत्र कुशलं । अपरंच, जोगिनपुर के नबाव शाह सुलतान आप पर आक्रमण करने की योजना बना रहे हैं। मित्र–राज्य होने के नाते मेरा यह राजधर्म है कि मैं आपको इस सम्बन्ध में अग्रिम सूचना देकर सचेत कर दूँ। शेष शुभ। आदेश की प्रतीक्षा में – विनीत–वासुपुर नरेश।'' पत्र पढ़कर अजमेर नरेश उरपाल प्रथम तो कुछ गंभीर हुए, किन्तु क्षण भर बाद ही उन्होंने साहस और वीरता के शब्दों में यह घोषणा की –'क्या इस सभा में कोई ऐसा वीर है जो युद्ध कर के शाह सुलतान को जीवित पकड़कर ला सके ?'' मैं ला सकता हूँ राजन् ! इन वीरता पूर्वक शब्दों में युवराज रणपाल ने चुनौती को स्वीकार किया और वे युद्ध के लिये दल बल सहित चल दिये। भारत का मध्यकालीन इतिहास इस बात का साक्षी रहा है कि भारत के वीरों ने युद्धों में वीरता व शौर्य का अद्वितीय प्रदर्शन करके भारत के भाग्य में रक्तिम तिलक तो अवश्य अंकित कराये हैं, किन्तु जिसे 'विजयलक्ष्मी' के नाम से पुकारा जाता है, वह सदैव राजपूतों व हिन्दुओं से रूठी ही रही और अपनी वरमाला बहुधा मुस्लिमों तथा फिरंगियों के गले में डालती रही है। और यह ही परिणाम रणपाल और शाह सुलतान के मध्य होने वाले घमासान युद्ध का भी हुआ। युवराज रणपाल को बंदी बना लिया गया और साधारण कैदी की भांति बेड़ियों से जकड़ कर जेल में डाल दिया गया। राजकुमार रणपाल कारागार में दो दिन तक निराहार पड़े हुए अपने कर्मों के खेल पर विचार करते रहे। वास्तविकता यह है कि संकट काल के ऐसे समय में केवल एक ही पुरुषार्थ शेष रहता है। जिसका प्रयोग कारागार के एकान्तवास तक में भी किया जा सकता है, और वह है –'आत्मा से परमात्मा तक का कनेक्शन जोड़ने का पुरुषार्थ।' बचपन में पड़े अच्छे संस्कार जीवन भर मनुष्य का मार्गदर्शन करते हैं। रणपाल ने छात्रजीवन में गुरुदेव से सीखे हुए महाप्रभावी भक्तामर स्तोत्र का तन्मयता से भक्तिपूर्वक पाठ आरम्भा किया। 46 वें पद तक पहुंचते–पहुंचते ही लोहे की बेड़ियां टूटकर नीचे गिर गई और बन्धन मुक्त युवराज शाह सुलतान के दरबार में जा पहुंचा। सुल्तान तथा सभी दरबारी यह देख भौचक्के रह गये। कोतवाल, दरोगा, पहरेदार व सैनिक सभी से पूछताछ की गई। परन्तु सब चकित होकर मौन खड़े रहे। अन्त में, शाह सुलतान ने स्वयं अपनी देखरेख में लोहे की बेड़ियों से जकड़वाकर युवराज रणपाल को फिर से जेल में बंद कराया, सख्त पहरा बैठाया और स्वयं भी भवन के एक झरोखे से देखकर निगरानी करने लगा। सुलतान ने स्वयं अपनी आँखों से देखा कि रणपाल अपनी भक्तामर भक्ति के प्रभाव से पुनः बंधनमुक्त हो कर दरबार में जा रहे थे। शाह चकित रह गये और उन्होंने तुरन्त दरबार में पहुँचकर युवराज रणपाल का स्वागत किया और कहा –'युवराज आपकी भगवद् भक्ति में इतना बल है, यह तो मैंने आज ही जाना है। आप सचमुच एक सच्चे व नेक इंसान हैं। आपसे बैर नहीं, मित्रता करने की जरूरत है।' यह कहकर शाह सुलतान ने युवराज रणपाल को गले लगा लिया और अत्यन्त सम्मान के साथ अपनी मित्रता के सन्देश के साथ उनको विदा किया। युवराज रणपाल के वापिस आते ही अजमेर नगर में खुशियाँ छा गईं। और जब भरे दरबार में रणपाल ने यह कहा कि 'राजन् ! मैं शाह सुलतान के शरीर को नहीं, उनके मन और हृदय को मित्रता की डोर से बन्दी बनाकर लाया हूँ।' तब तो नरेश उरपाल की खुशियों का ठिकाना न रहा। सारा अजमेर जैन धर्म की जय–जयकार से गूंज उठा। आज अहिंसा ने हिंसक को भी अहिंसक बनाकर शत्रुता को मैत्री में बदल दिया था। इति ।।

भावार्थ

हे परमात्मन् ! जिनका शरीर पैरों से लेकर गले तक लम्बी चौड़ी बड़ी-बड़ी सांकलों से जकड़ दिये जाने के कारण जंजीरों के किनारों की रगड़ से जिसकी जंघाये बुरी तरह छिल गई हैं, ऐसा कारागृह में बन्दी पुरुष भी आपके नाम स्मरण रुपी मन्त्र का निरन्तर पठन करने मात्र से तुरन्त ही बन्धन के भय से अपने आप मुक्त हो जाता है ।

MEANING

Perhaps, constantly in irons from top to toe and with their thighs scratched over with the edges of the fast (bound) strong chains instantly get themselves off the fear of confinement by restoring to the charm of your name.

शब्दार्थ

आपाद कण्ठं = पैरों से लेकरर कण्ठ तक, उरुश्रृंखल = बड़ी-बड़ी सांकलों से, वेष्टितांग = वेष्ठित शरीर वाले, गाढ़म् = अत्यन्त कसकर बांधी गई, बृहन्निगड कोटि = बड़ी-बड़ी बेडियों के किनारों से, निघृष्ट जंघा = जिसकी जंघाये घिस गई हैं, मनुजाः = ऐसे मनुष्य, त्वन्नाममन्त्रम् = आपके नाम रुपी मन्त्र को, अनिशं = निरंतर, स्मरन्तः = स्मरण करते हुये, सद्यः = शीघ्र ही, स्वयं = अपने आप, विगतबन्धभया = बन्धनन के भय से रहित, भवन्ति = हो जाते हैं ।

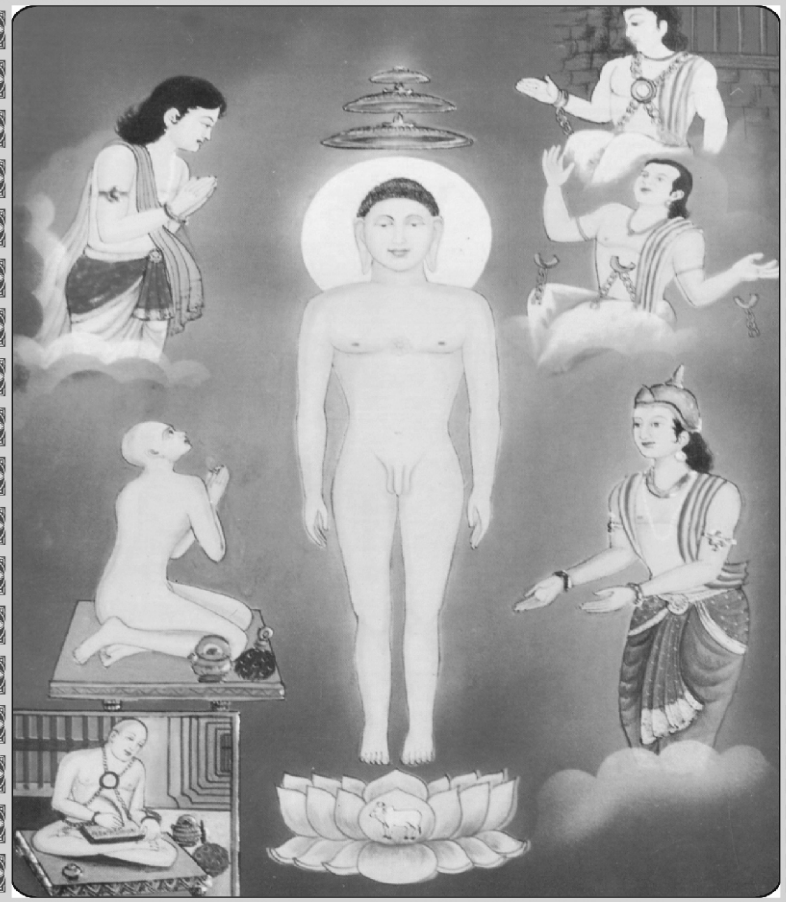

मत्त–द्विपेन्द्र–मृगराज–दवानलाहि–
संग्राम–वारिधि–महोदर–बन्धनोत्थम्।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ।।47।।

अस्त्र शस्त्र निष्क्रिय कारक यंत्र–47

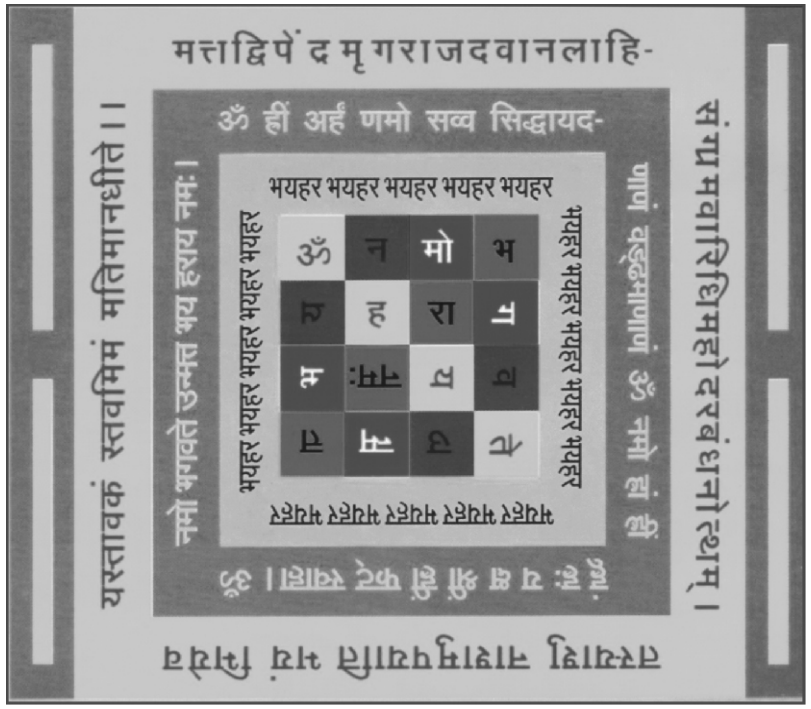

ऋद्धि — ॐ õt अर्हं णमो सव्व सिद्धायदणाणं वड्ढमाणाणं Ãं Ãं नमः स्वाहा

मन्त्र — ॐ नमो õँ õt õू õः य क्ष श्रीं õं फट् स्वाहा।
ॐ नमो भगवते उन्मत्त भय हराय नमः ।।

विधि — स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहिनकर उत्तरदिशाभिमुख यंत्र स्थापित कर उसकी पूजा अर्चा करना चाहिये। पश्चात् धवल आसन पर पूर्वाभिमुख बैठकर सफेद माला द्वारा 9000 बार ऋद्धि मंत्र का आराधन कर मंत्र सिद्ध करना चाहिये।

बहु प्रचलित प्रख्यात महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र का यह 47 वां श्लोक है। कार्यसिद्धि या अन्यान्य उपायों के लिए मंत्र साधना या मंत्राराधना भी एक उपाय है। मंत्र साधकों को दान, दया, परोपकार, सदाचार आदि शुभ–कर्मों द्वारा पुण्य का संचय करते रहना चाहिये। आराधक का अभीष्ट तो यह होना चाहिये कि सांसारिक विषय वासनाओं को छोड़ने तथा कर्मबंधन से मुक्त होने के लिये मन्त्र आराधना करे परन्तु यदि इस भूमिका को प्राप्त न कर सके और मात्र सांसारिक मुसीबतों से छुटकारे के लिये इष्ट मनोरथ सिद्धि के लिये ही मंत्राराधन का आश्रय ले तो उसे इतना लक्ष्य सामने अवश्य रखना चाहिये कि हमारे इस कृत्य से किसी के प्राणों का हनन न हो, कोई दुःखी न हो। मन्त्र साधकों को अपने हित के लिये मुख्य रूप से शान्ति, तुष्टि, पुष्टि के लिये इनका आश्रय लेना चाहिये। प्राण हनन रूप क्रिया जैसे उग्र कर्म का आश्रय कदापि नहीं लेना चाहिये, क्योंकि ऐसे कृत्य करने से मंत्र साधक को भविष्य में बहुत दुःख सहन करने पड़ते है और कितने ही बार ऐसे अधम प्रयोग करते समय यदि साधक से कोई भूल हो जाये तो तत्काल उसे बहुत बड़ा दण्ड प्राप्त होता है। यह बात सही है कि मन्त्र शास्त्र में उच्चाटन मारण आदि प्रयोग बताये हैं, परन्तु उसका प्रयोग दंश, समाज, धर्म की रक्षा के प्रसंग में आ पड़ी मुसीबत से छूटने के लिये है। निजि स्वार्थ साधन के लिये नहीं। मंत्र सिद्ध करने का मूल उपाय श्रद्धा है। जो साधक मंत्र देवता, मंत्र तथा मंत्रदाता गुरू के प्रति पूर्ण आस्थावान होता है, उसी की मंत्र–साधना सफल होती है। जो डगमगाते हृदय से अथवा शंकाशील मन से मंत्र–साधना प्रारंभ करते हैं, उनको कभी भी सिद्धि नहीं होती। मंत्र साधना को सफल बनाने के लिए बाह्य तथा अभ्यंतर शुद्धि की परम आवश्यकता होती है। बाह्य शुद्धि अर्थात् स्नानादि और अभ्यन्तर पवित्रता काम क्रोधादि मलिन विचारों के परित्याग से आती है। इस प्रकार की पवित्रता प्राप्त करने के लिये खान–पान तथा दिनचर्या में जितना अधिक बन सके उतनी शुद्धि अवश्य करनी चाहिये। ऐसे व्यक्ति ही मंत्र–साधना में सफलीभूत होते हैं। मंत्र साधना के लिये और भी अधिक परमावश्यक है कि किसी मंत्र विशारद सद्गुरू की देखरेख में यह कार्य आरंभ करना चाहिये – क्योंकि मंत्र सिद्ध करना कोई मामूली कार्य नहीं है। मंत्र सिद्ध करते समय कई भयप्रद दृश्य उपस्थित होते हैं। यदि उस समय साधक डर गया तो स्थिति भयंकर रूप धारण कर लेती है। डरपोक व्यक्ति को कदापि मंत्र–साधना का प्रयास नहीं करना चाहिये। जिस प्रकार सिंहनी का दूध स्वर्ण–पात्र में ही ठहर सकता है उसी प्रकार निर्भय हिम्मत वाले मनुष्य ही मंत्र साधना करके सफलता को पा सकते हैं। मंत्र साधना एक विज्ञान है। अस्तु मंत्र साधक को मंत्र साधने के पूर्व तत्सम्बन्धी पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेना चाहिये, ताकि वह अपने कार्य में सफल हो सके। भक्तामर स्तोत्र की महिमा महाप्रभावक है, अपूर्व है। जो पुरुष श्रद्धापूर्वक नित्य–नियमित इस महान् स्तोत्र का पाठ करता है, उसके हृदय रूपी कमल की पांखुड़ियां प्रस्फुटित होने लगती है, उसमें दिव्य–प्रकाश की किरणें फूटने लगती हैं और उस आराधक के आध्यात्मिक विकास के पथ को प्रशस्त करने लगती है। दूसरे शब्दों में मानव जीवन का सर्वोत्कृष्ट एवं मधुर फल मोक्ष–सुख भक्तामर स्तोत्र के आराधक को अवश्य ही प्राप्त होता है और वह अपने को कृत्कृत्य अनुभव करने लगता है। इसके नियमित पाठ से अनेकों व्यवहारिक लाभ होते हैं।।

भावार्थ

हे प्रभो ! जो विवेकशील बुद्धिमान भद्र पुरुष आपके इस परम पवित्र स्तोत्र का श्रद्धा सहित पाठ करता है; वह हमेशा - हमेशा के लिये, मदोन्मत हाथी, क्रुद्ध सिंह, भभकता दावानल, भयंकर सर्प, भयानक युद्ध, विक्षुब्ध समुद्र, असाध्य जलोदर (बीमारी), बेड़ियों के बन्धन से सहित कारागृह जनति आठ प्रकार के भय से मुक्त हो जाता है ।

अर्थात् भय स्वयं ही भक्त पुरुषों से भयभीत होकर नाश हो जाता है ।

MEANING

Of a wise man who recites this eulogy of yours the fear, arising from these eight sources, such as intoxicated elephant, lion, fire, serpent, battle, ocean, dropsy and bonds suddenly dies away, as it were, being frightened.

शब्दार्थ

यः = जो बुद्धिमान, तावकम् = तुम्हारे, इमं = इस, स्तवम् = स्तोत्र को, अधीते = पढ़ता है, तस्य = उसके, मत्तद्विपेन्द्र = मत्त गजराज, मृगराज = सिंह, दावानल = दावाग्नि, अहि = सांप, संग्राम = युद्ध, वारिधि = समुद्र, महोदर = जलोदर और, बन्धनोत्थम् = बेडियों के बन्धन से उत्पन्न, भयम् = भय, भिया इव = डर कर ही मानो, आशु = शीघ्र, नाशम् = नाश को, उपयाति = प्राप्त हो जाते हैं ।

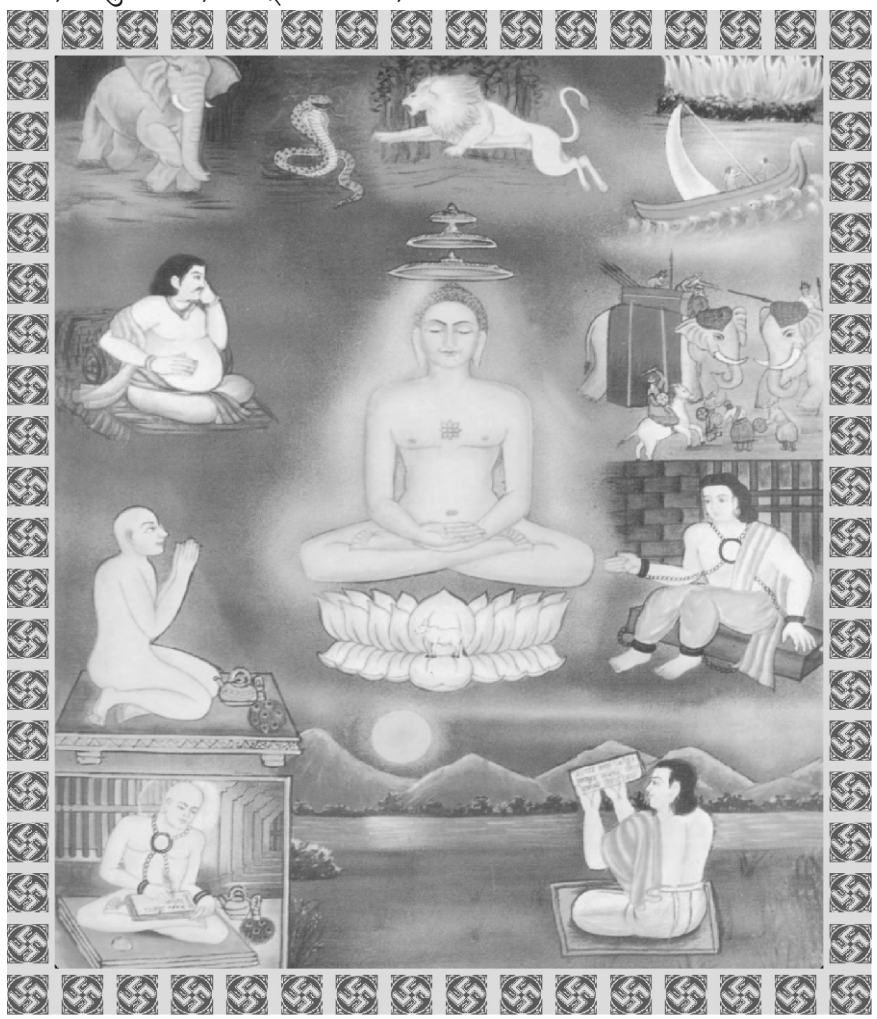

स्तोत्रÒजं तव जिनेन्द्र ! गुणै-र्निबद्धाम्,
भक्त्या मया रुचिरवर्ण-विचित्र-पुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठगता-मजÒं,
तं ''मानतुंग''-मवशां समुपैति लक्ष्मीः ।।48।।

सर्वाधीन कारक यंत्र-48

ऋद्धि — ॐ õt अर्हं णमो सव्व साहूणं
ॐ णमो भयवदो महदि महावीर वड्ढमाणं बुद्धिरिसीणं Ãौं Ãौं नमःस्वाहा

मन्त्र — ॐ õँ õt õू õौं हः अ सि आ उ सा Ãौं Ãौं स्वाहा।
ॐ नमो बंभचारिणे अष्टादश सहÒ सीलांगरथधारिणे नमः स्वाहा।

विधि — स्नान करके पीले रंग के वस्त्र धारण कर उत्तराभिमुख यंत्र स्थापित कर पीले पुष्पों से यंत्र की पूजा करके पीले आसन पर पूर्वाभिमुख बैठकर पीले रंग की माला द्वारा 4500 बार अथवा 100000 बार ऋद्धि मंत्र का

संसार का प्रत्येक प्राणी अर्थात् जीवमात्र स्वतंत्रता–प्रिय होता है। भले ही वह स्वतंत्रता का शाब्दिक अर्थ न समझता हो, परन्तु उसकी अनुभूति और भाव–भासन का आनन्द उसे अवश्य ही आता रहता है। पराधीनता, परतन्त्रता, परवशता कितनी ही सुन्दर व सुखदायी क्यों न हो, उससे छुटकारा पाकर स्वच्छंदता और खुले वातावरण में प्रत्येक जीव सांस लेना चाहता है। तोते को भले ही आप स्वर्ण पिंजरे में कैद करके रखिए, उसे विविध मेवा–मिष्ठान्न खिलाइये, तब भी वह खुली खिड़की पाकर यथावसर खुले आकाश में उड़ ही जायेगा। स्वतंत्र और स्वावलंबी जीव लाख–लाख कष्ट और अभावों में भी आजादी के आनंद की अनुभूति के लिए छटपटाता रहता है। उसे परावलम्बन, परमुखापेक्षिता से प्राप्त सोने के ग्रास भी जहर के कौर से लगते हैं। कैदी चाहे लोहे की बेड़ियों से बंधा हो, या सोने की मोटी जंजीरों से; आखिर कहलाएगा तो वह कैदी ही। यही कारण है कि भारत जब–जब पराधीन हुआ, गुलाम हुआ, तब–तब उसने स्वतंत्रता के लिये संग्राम किये। कहते हैं कि अंग्रेजी राज्य इतना सुव्यवस्थित व अनुशासित था कि उसके शासनकाल में सूर्य नहीं डूबता था सभी प्रकार की सुख सम्पन्नता होने पर भी देशभक्त नेताओं ने पराधीन भारत को यह नारा लगा–लगाकर मुक्त करा ही लिया कि 'स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।' इतिहास साक्षी है कि परतंत्र और गुलाम भारत मुगलों और अंग्रेजों से मुक्ति पाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहा। यह तो हुई राजनैतिक स्वतंत्रता की व्यवस्था। दार्शनिक व्यवस्था तो केवल दो ही तत्त्वों पर आधारित है। वे दो तत्त्व हैं बंध और मोक्ष । बंध अर्थात् गुलामी–पराधीनता। सम्पूर्ण मोक्ष अर्थात् स्वतंत्रता, आजादी, सम्पूर्ण स्वावलंबीपन। जैनधर्म में कणकण, परमाणु–परमाणु की स्वतंत्रता डंके की चोट पर घोषित की गई है। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र, गुण स्वतंत्र और पर्याय स्वतंत्र है। एक दूसरे का कर्त्ता कोई द्रव्य है ही नहीं। एक में दूसरे का मिलाने की मान्यता, जानकारी और आदत ही यथार्थ में बंध है। जबकि वस्तु स्वरूप यह है कि जीव त्रैकालिक स्वभाव से निर्बन्ध ही है। वैभाविक बन्धन तो काल्पनिक ही है। द्रव्यदृष्टि से तो वह त्रिकाल ही स्वतंत्र है। पर्याय दृष्टि से उसकी अवस्था में बंधन है। गाय यद्यपि हमको खूंटे और रस्सी से बंधी हुई प्रतीत होती है, परन्तु परमार्थ दृष्टि से देखा जाये तो गाय उस समय भी निर्बन्ध व मुक्त ही है क्योंकि गाय रस्सी नहीं बन गई। गांठ तो रस्सी की रस्सी में लगी है। तात्पर्य यह है कि स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव में रहना ही स्वतंत्रता है; स्वावलंबन है, आजादी है, स्व–समय हैं परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभव में रहना ही परतंत्रता, पराधीनता, बंधन और गुलामी है। अध्यात्म और आगम ग्रन्थों का कथन है कि जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष तत्त्वों के अर्थों को जो यथार्थ रूप से मान लेता है, जान लेता है, अनुभव कर लेता है, वह कर्म बंधन से मुक्त हो जाता है। उनको ज्ञेय–हेय और उपादेय रूप से जानना ही प्रथम कर्तव्य है। परतन्त्रता अन्य कुछ नहीं, बलिक अपनी दृष्टि में, श्रद्धा में स्व और पर का मिश्रण करके देखना–जानना–मानना और तदनुसार चलाना ही है। इसे ही जिनभाषा में मिथ्यात्व कहा है। मिथ्यात्व ही बंधन है। सम्यक्त्व ही स्वतंत्रता है। स्वभावाश्रय ही स्वतंत्रता है। विभावाश्रय ही बंधन है – गुलामी है। यहां पर आचार्य महाराज श्री लौकिक और राजकीय बंधनों से मुक्ति का उपाय बतलाते हुए कहते हैं कि जो व्यक्ति आपके नाम स्मरण रूपी मंत्र को निरन्तर रटता है, जपता है वह अपने आप तुरन्त ही मुक्त हो जाता है। संसारी जीव कर्म बन्धनों की मजबूत सांकलों से जकड़ा हुआ है।।

भावार्थ

मणि जड़ित मुकुटों से देवगण जब भक्ति पूर्वक इस युग के धर्म प्रवर्तक प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ के चरणों में नमस्कार करते हैं तब उनके मुकुट मणियो की कान्ति और भी अधिक दैदीप्यमान हो जाती है ।

प्रभु के चरण चुगल का सहारा ही प्राणियों के पापों का नाश करता है और प्रभु भक्ति में लीन भक्त संसार से पार हो जाता है ।

युग सृष्टा आद्य धर्म प्रणेता प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ के चरण युगल में अच्छी तरह नमस्कार करके ।

MEANING

The Goddess of wealth of her own accord resent to that man of high self respect in this world, who always place round his neck, O Jinendra this garland of orisons, which has been strung by me with the strings of the excellences out of devotion, and which looks charming on account of the multi-coloured flowers in the shape of beautiful words.

शब्दार्थ
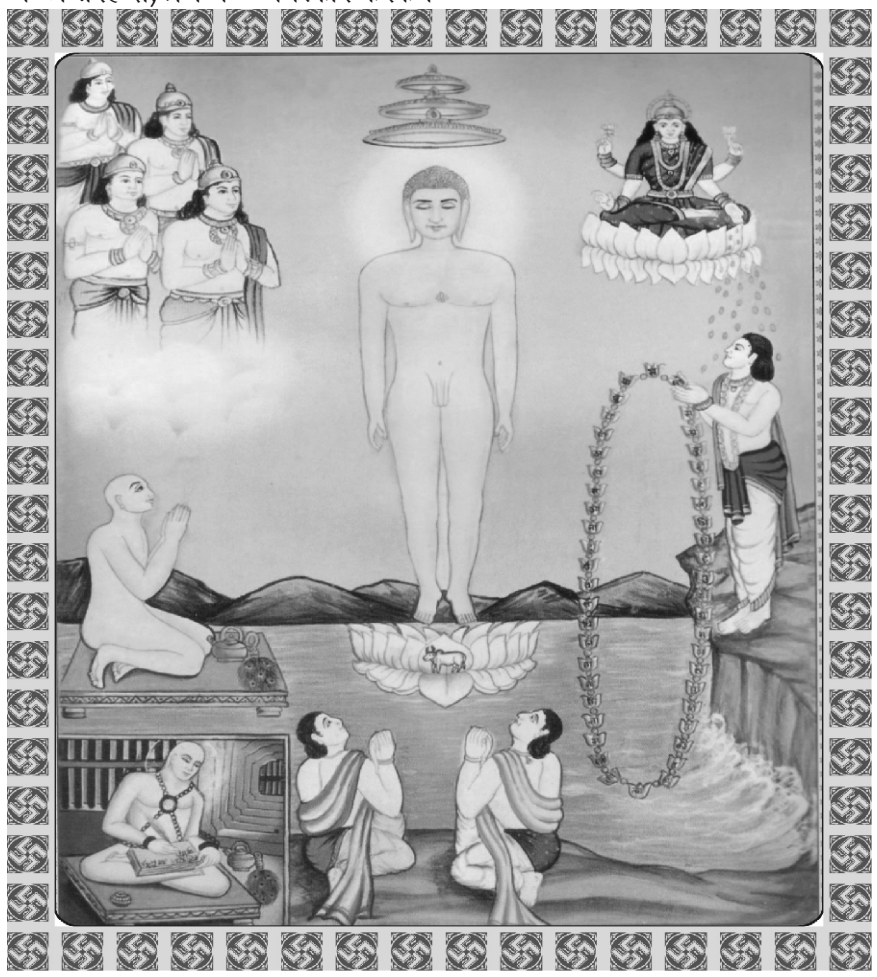
भक्त = भक्ति करनेवाले, अमर = देवता, प्रणत = विशेष रुप से झुके हुए, मौलि = मुकुट, मणि= रत्न, प्रभाणाम् = कांति के, उद्योतकम् = प्रकाश को करने वाले, दलित = नष्ट करने वाले, तमः = अंधकार, वितानम् = विस्तार को, आदौ = युग के प्रारंभ में, भवजले = संसार समुद्र में, पतताम् = गिरते हुए, जनानाम् = व्यक्तियों को, आलम्बनम् = सहारा देने वाले, जिन = जिनेन्द्र देव के, पाद युगं = चरण युगल को, सम्यक् = अच्छी तरह से, प्रणम्य = नमस्कार करके ।